शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
महाराष्ट्र

दूर शिक्षण केंद्र

हिंदी साहित्य का इतिहास

(सन 2000 ई. तक)

बी. ए. भाग–3 हिंदी
सत्र–5 पेपर 9
सत्र–6 पेपर 14

© **कुलसचिव,** शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
प्रथम संस्करण : 2015
बी. ए. भाग 3 (हिंदी : बीजपत्र-9 और 14)
सभी अधिकार विश्वविद्यालय के अधीन। शिवाजी विश्वविद्यालय की अनुमति के बिना किसी भी सामग्री की नकल न करें।

प्रतियाँ : 1,500

■

प्रकाशक :
डॉ. व्ही. एन. शिंदे
प्र. कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

मुद्रक :
श्री. बी. पी. पाटील
अधीक्षक,
शिवाजी विश्वविद्यालय मुद्रणालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

ISBN- 978-81-8486-598-1

★ दूर शिक्षण केंद्र और शिवाजी विश्वविद्यालय की जानकारी निम्नांकित पते पर मिलेगी-
शिवाजी विश्वविद्यालय, विद्यानगर, कोल्हापुर-416 004. (भारत)

★ दूर शिक्षण विभाग-विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के विकसन अनुदान से इस साहित्य की निर्मिति की है।

दूरशिक्षण केंद्र, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

सलाहकार समिति

प्रा. (डॉ.) डी. बी. शिंदे
मा. कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) एम. एम. साळुंखे
मा. कुलगुरू,
यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विश्वविद्यालय, नाशिक

प्रा. (डॉ.) के. एस. रंगाप्पा
मा. कुलगुरू,
म्हैसूर विश्वविद्यालय, म्हैसूर

प्रा. पी. प्रकाश
मा. प्र-कुलगुरू,
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नवी दिल्ली

प्रा. (डॉ.) सीमा येवले
गीत-गोविंद, फ्लॅट नं. २,
११३९ साईक्स एक्स्टेंशन,
कोल्हापुर-४१६००१

डॉ. अनिल गवळी
अधिष्ठाता, कला व ललितकला विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्राचार्य डॉ. जे. एस. पाटील
अधिष्ठाता, सामाजिक शास्त्रे विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्राचार्य डॉ. सी. जे. खिलारे
अधिष्ठाता, विज्ञान विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. आर. जी. फडतरे
अधिष्ठाता, वाणिज्य विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्राचार्य डी. आर. मोरे
संचालक, महाविद्यालय व विद्यापीठ विकास मंडळ,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. व्ही. एन. शिंदे
प्र. कुलसचिव, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

श्री. एम. ए. काकडे
परीक्षा नियंत्रक, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

श्री. एन. व्ही. कोंगळे
वित्त व लेखा अधिकारी, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

कॅप्टन डॉ. एन. पी. सोनजे (सदस्य सचिव)
प्र. संचालक, दूरशिक्षण केंद्र, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

अध्ययन मंडल : हिंदी

डॉ. वसंत दादू सुर्वे
अध्यक्ष, हिंदी अध्ययन मंडल, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर.
आर्टस ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज, आष्टा, ता. वाळवा, जि. सांगली.

- **डॉ.श्रीमती पद्मा पाटील**
  हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
- **डॉ. सुनील बापू बनसोडे**
  डी. पी. भोसले महाविद्यालय, कोरेगांव, जि. सातारा
- **डॉ. गजानन सदाशिव भोसले**
  यशवंतराव चव्हाण आर्टस, कॉमर्स ॲण्ड सायन्स कॉलेज, पाचवड, ता. वाई, जि. सातारा
- **डॉ. रघुनाथ गणपती देसाई**
  श्रीमती मथुबाई गरवारे कन्या महाविद्यालय, सांगली
- **डॉ. रामा कृष्णा नकाते**
  शहाजी राजे महाविद्यालय, खटाव, जि. सातारा.
- **प्राचार्य डॉ. कृष्णा राजाराम पाटील**
  तुकाराम कोलेकर आर्टस ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज, नेसरी, ता. गडहिंग्लज, जि. कोल्हापुर.
- **डॉ. भीमराव ज्ञानू पाटील**
  डॉ. पतंगराव कदम महाविद्यालय, सांगलवाडी, सांगली.

	सत्र 5	सत्र 6
★ **डॉ. सौ. शाहीन एजाज जमादार** मिरज महाविद्यालय, मिरज	**1**	**-**
★ **डॉ. जयश्री सुरेश पैलवान** श्रीमती कस्तुरबाई वालचंद महाविद्यालय, सांगली	**2**	**-**
★ **डॉ. रवींद्र पाटील** राजश्री शाहू कॉलेज, कोल्हापुर	**3**	
★ **डॉ. रमेश लक्ष्मण गोवंडे** श्रीमती जी. के. जी. कन्या महाविद्यालय, जयसिंगपुर	**4**	
★ **डॉ. आर. जी. देसाई** श्रीमती मथुबाई गरवारे कन्या महाविद्यालय, सांगली	**-**	**1**
★ **बी. बी. राठोड** शहाजीराजे महाविद्यालय, खटाव	**-**	**2**
★ **डॉ. विठ्ठल शंकर नाईक** लाल बहादूर शास्त्री कॉलेज, सातारा	**-**	**3**
★ **डॉ. नाजिम इसाक शेख** श्री विजयसिंह यादव कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, पेठ-वडगांव, जि. कोल्हापुर	**-**	**4**

■ **सम्पादक** ■

डॉ. आर. जी. देसाई
श्रीमती मथुबाई गरवारे कन्या महाविद्यालय,
सांगली

डॉ. व्ही. डी. सुर्वे
अध्यक्ष, हिंदी अध्ययन मंडल,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
एवं
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
आर्टस् ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज, आष्टा,
ता. वाळवा, जि. सांगली.

अपनी बात

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर की दूरशिक्षा योजना के अंतर्गत बी. ए. भाग–3 हिंदी विषय के छात्रों के लिए निर्मित अध्ययन सामग्री नियमित रुप से प्रवेश न ले पाने वाले छात्रों की असुविधा को दूर करने के संकल्प का सुफल है। इसमें एक ओर विश्वविद्यालय की सामाजिक संवेदनशीलता दिखाई देती है, तो दूसरी ओर शिक्षा से वंचित छात्रों को अध्ययन सामग्री सुविधा प्रदान करने की प्रतिबद्धता। बी. ए. 1, 2 तक की अध्ययन सामग्री से दूरशिक्षा योजना के छात्र जिस तरह लाभान्वित हुए हैं, उसी तरह बी. ए. 3 छात्र भी प्रस्तुत स्वयं–अध्ययन सामग्री से लाभान्वित होंगे, यह विश्वास है।

दूरशिक्षा के छात्रों का महाविद्यालयों तथा अध्यापकों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से कोई संबंध नहीं आता। उनकी इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए अध्ययन सामग्री को सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही पाठ्यक्रम, प्रश्नपत्र का स्वरुप तथा अंक–वितरण को ध्यान में रखकर अध्ययन–सामग्री को आवश्यकतानुसार विस्तृत तथा सूक्ष्म रुप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हमें आशा ही नहीं, बल्कि विश्वास भी हैं कि प्रस्तुत अध्ययन सामग्री बी. ए. 3 के छात्रों के लिए उपादेय सिद्ध होगी।

प्रस्तुत सामग्री सामूहिक प्रयास का फल है। इकाई लेखकों ने अपनी–अपनी इकाईयों का लेखन समय पर पूरा कर इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। शिवाजी विश्वविद्यालय के मा. कुलगुरू, कुलसचिव, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय विकास मंडल के संचालक, दूरशिक्षा विभाग की संचालक एवं उनके सभी सहयोगी सदस्यों ने समय–समय पर आवश्यक सहयोग दिया। अतः इन सभी के प्रति आभार प्रकट करना हमारा कर्तव्य है।

धन्यवाद।

– संपादक

अनुक्रमणिका

इकाई	पाठ्यविषय	पृष्ठ
	सत्र-5	
1.	आदिकाल	1
2.	भक्तिकाल	25
3.	निर्गुण भक्तिधारा	59
4.	सगुण भक्तिधारा	85
	सत्र-6	
1.	रीतिकाल	101
2.	आधुनिक काल	132
3.	गद्य विधाओं का विकास	154
4.	काव्य की विभिन्न काव्यधाराओं की विशेषताएँ	186

हर इकाई की शुरूआत उद्देश्य से होगी, जिससे दिशा और आगे के विषय सूचित होंगे–

(१) इकाई में क्या दिया गया है।

(२) आपसे क्या अपेक्षित है।

(३) विशेष इकाई के अध्ययन के उपतरांत आपको किन बातों से अवगत होना अपेक्षित है।

स्वयं–अध्ययन के लिए कुछ प्रश्न दिए गए हैं, जिनके अपेक्षित उत्तरों को भी दर्ज किया है। इससे इकाई का अध्ययन सही दिशा से होगा। आपके उत्तर लिखने के पश्चात् ही स्वयं–अध्ययन के अंतर्गत दिए हुए उत्तरों को देखें। आपके द्वारा लिखे गए उत्तर (स्वाध्याय) मूल्यांकन के लिए हमारे पास भेजने की आवश्यकता नहीं है। आपका अध्ययन सही दिशा से हो, इसलिए यह अध्ययन सामग्री (Study Tool) उपयुक्त सिद्ध होगी।

इकाई 1

आदिकाल

अनुक्रम

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय – विवेचन

1.3.1 – आदिकाल का नामकरण और सामाजिक परिस्थितियाँ ।

1.3.2 – आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियाँ ।

1.3.4 – आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएँ :

पृथ्वीराज रासो एवं बीसलदेव रासो का सामान्य परिचय ।

1.4 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

1.6 स्वयं – अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

1. हिन्दी साहित्य के आदिकाल और उसके नामकरण की समस्या से परिचित होंगे ।
2. आदिकालीन सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ को समझ सकेंगे ।
3. आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएँ, पृथ्वीराज रासो एवं बीसलदेव रासो के सामान्य परिचय से परिचित होंगे ।

1.2 प्रस्तावना –

हिन्दी साहित्य के आदिकाल के काल–निर्धारण और नामकरण की समस्या हिन्दी साहित्योतिहास की एक ज्वलंत समस्या है । अभी तक इस समस्या का सही समाधान नही हो पाया है । हिन्दी साहित्य के रचना–काल को हिन्दी साहित्य का आदिकाल कहा है । सं. 1000 के आसपास हिन्दी भाषा तथा अन्य भारतीय आर्यभाषाओं का प्रारंभ हुआ । प्रारंभ में भाषा का स्वरूप स्पष्ट नहीं था । हिन्दी साहित्य के प्रारंभ के संबंध में मतभेद हैं, फिर भी सामान्यत: सं. 1050 से. सं. 1375 तक के कालखंड को 'आदिकाल' कहा जाता है । अनेक विद्वानों ने इस काल को अनेक नामों से पुकारा है । इस काल में सिद्ध काव्यधारा, नाथ काव्यधारा, जैन काव्यधारा, सामन्ती श्रृंगार, वीर काव्यधारा तथा इनसे सम्बन्धित विभिन्न काव्य रूप और रूढियों आदि की महता रही है । फिर भी यह काल विवादास्पद रहा है ।

प्रस्तुत इकाई में हिन्दी साहित्य के इतिहास के आदिकाल वाले अंश पर विस्तार से विचार करते समय आदिकाल का कालविभाजन, नामकरण, आदिकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ, आदिकालीन रासो साहित्य का सामान्य परिस्थितियाँ, आदिकालीन रासो साहित्य का सामान्य परिचय आदि पर विस्तार से चर्चा करेंगे ।

1.3 विषय – विवेचन –

1.3.1 आदिकाल का नामकरण और सामाजिक परिस्थिति ।

आदिकाल का नामकरण और उसकी सामाजिक परिस्थिति इस प्रकार है –

1.3.1.1 आदिकाल का काल –विभाजन और नामकरण

हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रारंभिक लेखकों में एक विदेशी फ्रेंच विद्वान गार्सा–द–तासी है । इन्होंने हिन्दी साहित्य का काल विभाजन और नामकरण का कोई प्रयास नहीं किया । उसके बाद शिवसिंह सेंगर ने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा लेकिन उन्होंने भी काल काल – विभाजन एवं नामकरण की ओर ध्यान नही दिया । हिन्दी साहित्य का सर्वप्रथम कालविभाजन का प्रयास जार्ज ग्रियर्सन ने किया । उनका काल – विभाजन इस तरह का था – जैसे.

1. चारणकाल – 700-1300 ई. ।
2. पन्द्रहवी शती का धार्मिक पुनर्जागरण ।
3. जायसी की प्रेम कविता ।
4. ब्रज का कृष्ण सम्प्रदाय ।
5. मुगल दरबार ।
6. तुलसीदास
7. रीति काव्य ।
8. तुलसीदास के अन्य परवर्ती ।

9. अट्ठारहवीं शताब्दी ।

10. कम्पनी के शासन में हिन्दुस्तान ।

11. विक्टोरिया के शासन में हिन्दुस्तान ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि यह काल विभाजन न होकर साहित्य के इतिहास के भिन्न-भिन्न अध्यायों का नामकरण है । इसलिए इनका कालविभाजन और नामकरण वैज्ञानिक नहीं है ।

जार्ज ग्रियर्सन के बाद मिश्रबन्धुओं ने अपनी पुस्तक 'मिश्र-बन्धुविनोद' में काल विभाजन का प्रयास किया जो इसप्रकार है -

1. आरम्भिक काल - 1. पूर्वारम्भिक काल - 700 से 1343 ई.
   2. उत्तराम्भिक काल - 1300 से 1444 ई.
2. माध्यमिक काल - 1. पूर्व माध्यमिक काल - 1445 से 1560 ई.
   2. प्रौढ माध्यमिक काल - 1561 से 1680 ई.
3. अलंकृत काल - 1. पूर्वालंकृत काल - 1681 से 1790 ई.
   2. उत्तरालंकृत काल - 1791 से 1889 ई.
4. परिवर्तन काल - 1890 से 1925 ई.
5. वर्तमान काल - 1926 से अद्यावधि ।

इनका कालविभाजन एवं नामकरण नि:संदेह ग्रियर्सन की अपेक्षा प्रौढ है किन्तु वैज्ञानिक और तर्कसंगत नहीं है। अत: आगे चलकर इतिहासकारों ने इसे स्वीकार नहीं किया ।

काल विभाजन और नामकरण का सबसे मौलिक प्रयास आ. रामचंद्र शुक्ल ने किया। उन्होंने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में काल-विभाजन और नामकरण को प्रस्तुत किया। उन्होंने प्रत्येक कालखंड को दो-दो नाम दिए हैं। एक मानव मनोविज्ञान पर आधारित है तो दूसरा नाम साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर। आ. शुक्ल का काल-विभाजन और नामकरण इस प्रकार है -

हिन्दी साहित्य का इतिहास

आदिकाल	पूर्व मध्यकाल	आरमध्यकाल	आधुनिक काल
(वीरगाथा काल)	(भक्तिकाल)	(रीतिकाल)	(गद्यकाल)
सं. 1050 से	सं. 1375 से	सं. 1700 से	सं. 1900 से
सं. 1375 तक	सं. 1700 तक	सं. 1900 तक	आज तक

आ. रामचंद्र शुक्लजी का यह का-विभाजन और नामकरण हिन्दी साहित्य में सर्वमान्य है। अनेक इतिहासकारों ने इसे थोडा परिवर्तन करके इसे ही स्वीकार किया है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल ये चार कालखंड सर्वमान्य हैं।

1.3.1.2 आदिकाल का नामकरण :

सामान्यत: साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन कृति, कर्ता, पद्धति और विषय की दृष्टि से कर लिया जाता है। कभी-कभी नामकरण के किसी ठोस आधार के उपलब्ध न होने पर उसकाल के किसी अत्यंत प्रभावशाली साहित्यकार के नाम पर या कभी साहित्य सृजन की प्रमुख शैलियों के आधार पर इसके अतिरिक्त कभी-कभी मानव मनोविज्ञान और तत्कालीन साहित्य की किसी प्रमुख प्रवृत्ति को नामकरण का आधार बना लिया जाता है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकाल के नामकरण की समस्या विवादास्पद है। दसवी से चौदहवीं शताब्दी तक के साहित्य की प्रवृत्तियों का विवेचन करते हुए विद्वान आलोचकों ने इस काल को विविध नामों से पुकारा है। इस युग में विविध प्रवृत्तियों का साहित्य लिखा गया। उस समय हिन्दी भाषा का स्वरूप स्पष्ट और निश्चित नहीं था। अनेक विद्वानों ने इस काल को अलग-अलग नामों से पुकारा है। आज भी आदिकाल के नामकरण की समस्या विवादास्पद बनी हुई है। सामान्यत: सं. 1050 से सं. 1375 तक के कालखंड को 'आदिकाल' कहा जाता है। इस युग के विभिन्न नाम इस प्रकार से हैं -

1. वीरगाथाकाल : आ. रामचंद्र शुक्ल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने इस काव्य को वीरगाथाकाल इस नाम से पुकारा है।

आधार :

आ. रामचंद्र शुक्ल जी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस काव्य को वीरगाथा काव्य कहा है, क्योंकि उक्त काव्य के भीतर दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं - अपभ्रंश की और देशभाषा (बोलचाल) की। अपभ्रंश की पुस्तकों में कई तो जैनों के धर्म-तत्त्व-निरुपण संबंधी जो साहित्य की कोटि में नहीं आती और जिनका उल्लेख केवल यह दिखाने के लिए ही किया गया है कि अपभ्रंश भाषा का व्यवहार कब से हो रहा था। साहित्य की कोटि में आने वाली रचनाओं में कुछ तो भिन्न-भिन्न विषयों पर फुटकल दोहें हैं जिनके अनुसार उस काल की कोई विशेष प्रवृत्ति निर्धारित नहीं की जा सकती। साहित्यिक पुस्तकें केवल चार हैं -

1. विजयपाल रासो
2. हम्मीर रासो
3. कीर्तिलता
4. कीर्तिपताका

देश भाषा की आठ पुस्तकें प्रसिद्ध हैं -

5. खुमान रासो
6. बीसलदेव रासो
7. पृथ्वीराज रासो
8. जयचंद प्रकाश
9. जयमयंक-जस-चंद्रिका
10. परमाल रासो (आल्हा का मूलरूप)
11. खुसरो की पहेलियाँ आदि
12. विद्यापति की पदावली

इन बारह पुस्तकों में से अंतिम दो तथा बीसलदेव रासो को छोड़कर शेष सब ग्रंथ वीरगाथात्मक ही हैं। अत: इसी आधार पर आदिकाल का नाम 'वीरगाथाकाल' ही रखा जा सकता है। शुक्ल जी ने इसी नाम से पुकारा है।

समीक्षा :

हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस नामकरण की चर्चा अधिक रही। शुक्ल जी का यह नामकरण तर्कसंगत नहीं है। उन्होंने जिन 12 ग्रन्थों को आदिकाल के लक्षण निरुपण एवं नामकरण के लिए चुना तथा उन ग्रन्थों में वीरगाथाओं की प्रमुखता दिखलाई, उनमें से अधिकांश ग्रन्थ सान्दिग्ध एवं अप्रामाणिक हैं। कुछ ग्रंथ नोटिस मात्र हैं। इतना जरुर कहा जा सकता है कि, इस काल की सामन्ती रचनाओं में वीरत्व का बड़ा ओजस्वी स्वर सुनाई पड़ता है। इस युग के काव्य में एक साथ अनेक प्रवृत्तियाँ चलती रही। अर्थात शुक्ल जी का यह नामकरण उचित नहीं है। अन्य इतिहासकारों ने भी इस नामकरण को स्वीकार नहीं किया है।

2. सिद्ध-सामंत-युग : राहुल सांकृत्यायन

राहुल सांकृत्यायन ने इस युग को 'सिद्ध-सामंत-युग' के नाम से पुकारा है।

आधार :

राहुल सांकृत्यायन ने प्रस्तुत काल को 'सिद्ध-सामंत-युग' के नाम से अभिहित किया है। उन्होंने उसकी पूर्वापार सीमाएं 8वीं शती से 13वीं शती तक निर्धारित की है। उन्होंने इस युग की साहित्य-सामग्री का विवेचन करके उनमें दो प्रवृत्तियों की प्रमुखता देखकर इस युग का नामकरण 'सिद्ध-सामंत-युग' कहा है। जैसे - सिद्धों की वाणी और सामंतों की स्तुतिपरक रचनाएँ। सिद्धों की वाणी के अंतर्गत बौद्ध, नाथ सिद्धों की तथा जैन साधुओं का धार्मिक साहित्य आता है। सामन्तों की स्तुतिपरक रचनाओं के अंतर्गत चारण जाति वे कवियों की राजस्तुति परक रचनाएँ आती हैं। 'सामन्त' जिस काव्य का प्रधान आश्रयदाता है उसमें उसके झूठे-सच्चे विजयों और कल्पित-अकल्पित-प्रेम प्रसंगों का वर्णन आता है। इस युग में वीर और शृंगार दोनों रसों की प्रधानता दिखाई देती है। साथ ही सामंत शब्द से उस युग की राजनीतिक स्थिति का भी पता चलता है।

समीक्षा :

राहुल जी के नामकरण से महत्त्वपूर्ण जैन और लौकिक रस से अनुप्राणित महत्त्वपूर्ण रचनाओं का कुछ भी आभास नहीं मिलता, जिन पर स्वयं राहुल जी जोर देना चाहते थे। इस नामकरण से उस युग के साहित्य की समूची प्रवृत्तियों का बोध नहीं हो सकता। सन्देशरासक, विद्यापति की पदावली इत्यादि अनेक रचनाएँ जिनकी प्रवृत्तियों का परवर्ती साहित्य में विकास हुआ, उपेक्षित रह जाती हैं। इस नामकारण से उस काल के साहित्य की समूची प्रवृत्तियों का बोध नहीं हो सकता। भाषाशास्त्रीय दृष्टि से यह नामकरण उचित नहीं है। क्योंकि उस काल को उपभ्रंश भाषा का पूर्ण यौवन काल कहा जा सकता है। इस में हिन्दी का कोई निश्चित रूप नहीं मिलता। राहुल जी ने पुरानी हिन्दी और अपभ्रंश को एक ही माना है। अत: यह नामकरण उचित नहीं है।

3. चारणकाल : डॉ. रामकुमार वर्मा

डॉ. रामकुमार वर्मा ने इस काल को चारणकाल कहा है।

आधार :

डॉ. रामकुमार वर्मा ने इस काल की वीरगाथाओं का परिचय देते हुये इस काल को 'चारणकाल' कहा है। क्योंकि इस युग के अधिकांश कवि चारण थे। जो राजाओं के दरबार में आश्रित थे। इन सभी चारण कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की खुलकर स्तुति की है। यह युग सामंतों का युग भी कहा जाता है। इसलिए इस युग को 'चारणकाल' कहा गया।

समीक्षा :

डॉ. रामकुमार वर्मा जी का दिया हुआ नामकरण पूर्ण रूप से तर्कसंगत नहीं है। क्योंकि इसकाल के साहित्य में चारण प्रवृत्ति आंशिक रूप से दिखने को मिलती है। इस युग में एक साथ अनेक प्रवृत्तियाँ चलती रही, इसलिए चारणप्रवृत्ति इस साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति नहीं है। यह देखकर अन्य विद्वानों ने भी इस नामकरण को स्वीकार नहीं किया है। अत: यह नामकरण भी उचित नहीं है।

4. बीजवपनकाल : आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी

आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य के आदिकाल का लक्षण-विवेचन करके इसका नाम 'बीज-वपन-काल' रखा है।

आधार :

इस युग में हिन्दी साहित्य के बीज बोए गये थे। इस युग में हिन्दी साहित्य के सभी प्रकार की प्रवृत्तियों का बीजवपन हुआ था। इन सभी का लक्षण-विवेचन करके इस युग को 'बीजवपनकाल' कहा गया।

समीक्षा :

आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का यह नामकरण पूर्णत: तर्क संगत नहीं है, क्योंकि साहित्यिक प्रवृत्तियों की दृष्टि से इसे उक्त नाम से पुकारना असंगत है। इस काल में प्राय: अपने पूर्ववर्ती साहित्य की सभी काव्य रुढ़ियों और परम्पराओं का सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है। साथ ही साथ कुछ नवीन साहित्यिक प्रवृत्तियों का भी उद्भव हुआ है। जो अपने समुचित विकास रूप में देखने मिलते हैं। जैसे - संदेश रासक, ढोला मारू रा दूहा, बीसलदेव रासो आदि लौकिक प्रेम-कथा-काव्य, नाथ-सिद्धों की बानियाँ, जैन-कवियों के फाग, रास, चर्चही, चरित, पुराण, काव्य, 'पाकृत पैंगलम' के पद्य, कीर्तिलता, कीर्तिपताका, उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण, वर्ण रत्नाकर आदि काव्य-ग्रंथ एक साथ विवेचित हुए। यह भी कहा जा सकता है कि कोई भी साहित्य बीज रूप में नहीं होता। अत: यह नामकरण भी उचित नहीं है।

5. आदिकाल :

सबसे पहले मिश्रबन्धुओं ने अपने 'मिश्रबन्धु विनोद' नामक ग्रंथ में ई.स. 643 से ई.स. 1387 तक के कालखण्ड को आदिकाल के नाम से पुकारा है। बाद में आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने इसे स्वीकार किया है। इसके बाद आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी स्वीकार किया है। आज अधिकांश विद्वान इस नामकरण को ही उचित मानते हैं।

आधार :

आदिकाल यह नामकरण मानव मनोविज्ञान पर आधारित है। मानव मनोविज्ञान किसी भी कालखंड को तीन भागों में विभाजित करता है – आदि, मध्य और अन्त या आधुनिक।

समीक्षा :

अनेक विद्वानों ने इस कालखंड के साहित्य का विवेचन करके इस कालखंड के 'आदिकाल' इस नाम को स्वीकार किया है। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार इस युग का साहित्य अन्तर्विरोधों का साहित्य था। इसलिए किसी एक प्रवृत्ति के आधार पर उस युग का नामकरण नहीं किया जा सकता। आदिकाल ही नामकरण उपयुक्त है। साथ ही विकास क्रम की दृष्टि से इस काव्य को आदिकाल कहना ही समुचित है। इस युग की पृष्ठभूमि व्यापक है जो आदिकाल के नामकरण का बोध कराती है। जिस पर आगे का साहित्य खड़ा है। भाव की दृष्टि से परवर्ती साहित्य की सभी प्रवृत्तियों के बीज इस युग के साहित्य में मिलतें हैं। साथ ही हिन्दी के आदि रूप के दर्शन भी होते हैं। 'आदिकाल' नाम के प्रस्तोताओं और प्रतिपादकों में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्रवृत्ति विद्वान हैं। अत: 'आदिकाल' यह नाम ही योग्य, उचित एवं सर्वमान्य और सर्व संमत है।

1.3.1.2 आदिकाल की सामाजिक परिस्थिति

प्रत्येक युग का साहित्य अपनी युगीन परिस्थितियों की ऊपज होता है। इसका कारण यह है कि वे उसके निर्माण में प्रेरक तत्वों का काम देती हैं। कोई भी साहित्यकार उनसे अप्रभावित नहीं रह सकता। फलस्वरूप वे उसके साहित्य में प्रतिफलित हो उठती हैं। अत: किसी भी काल के साहित्य के वैज्ञानिक अनुशीलन के लिए तद्युगीन परिस्थितियों का ज्ञान आवश्यक है। युगीन पीठिका का निर्माण तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियों से होता है। अत: हिन्दी साहित्य के अनुशीलन के लिए भी उसका ज्ञान होना जरुरी है।

सामाजिक परिस्थिति :

जिस युग में धर्म और राजनीतिक की दीन-हीन दशा हो, उस युग में उच्च सामाजिकता की आशा नहीं की जा सकती। राजनीतिक की दृष्टि से अव्यवस्था तो धर्म के नाम पर अधर्म फैला था। सामान्य जनता युद्धों में पीस रही थी। जनता आर्थिक संकट में थी।

1. जाति–व्यवस्था :

इस युग में जाति व्यवस्था के बंधन कठोर बन गये थे। अब जाति गुण और कर्म के आधार पर न होकर वर्ग के आधार पर मानी जानी लगी थी। एक जाति की अनेक उपजातियाँ होने लगी थी। छुआछूत के नियम कड़े होते गये। ब्राहमण और क्षत्रिय दोनों ही उपजातियों में बँटते चले जा रहे थे। हिन्दू जाति की पाचन शक्ति का प्राय: ऱ्हास हो चुका था। हिन्दुओं को इस बात की इच्छा नहीं होती थी कि जो वस्तु एक बार भ्रष्ट हो गई है उसे शुद्ध करके फिर ले ले। उस समय रुढ़ि ग्रस्त धर्म के समान समाज भी रुढ़ि ग्रस्त हो चुका था। राजपूत जाति का अभ्युदय इस काल की महान घटना है। वे 36 कुलों में बँट गये थे। ब्रह्मणों–क्षत्रियों का प्रभाव वैश्य और शूद्रों पर पड़ना अनिवार्य था, अत: वे भी और उपजातियों में विभाजित हो गए। वैश्यों ने कृषि त्याग कर वाणिज्य को प्रमुख व्यवसाय बना लिया। शूद्रों को समाज में विशेषाधिकार प्राप्त न थे। उनका जीवन पर सेवा के लिए ही था। ऊपर उठने के लिए उनके पास कोई साधन न था।

2. रुढ़िग्रस्त समाज :

आदिकाल के रुढ़िग्रस्त धर्म के समान समाज भी रुढ़िग्रस्त हो चुका था। उस युग में सामान्ती वीरता और वंश–कुलीनता का बोलबाला था। राजपूत जाति वीरता और आत्मोत्सर्ग के लिए प्रसिद्ध थी। राजपूत नारियां भी पीछे नही थी, उस समय जौहर उनके आत्म–बलिदान और शौर्य का प्रतीक था। उस समय स्वंयर प्रथा एक अन्य सामाजिक विशेषता थी। मुस्लिम आक्रमणों की वजह से बालविवाह और पर्दा पद्धति की प्रथा भी प्रचलित हो गई थी। राजा विलासी एवं बहुपत्नीत्व थे। इसी कारण उनके उत्तरअधिकारी भी बहुपत्नीत्व थे। उस युग का समाज नैतिक मूल्यों से भ्रष्ट हो गया था।

3. राजा, सामंत और सामान्य जनता :

आदिकाल का युग राजाओं और सामंतों का युग था। उस युग के राजाओं का जीवन विलासमय था। ऐश्वर्यभिभूत नृपति वर्ग का अधिकांश समय अन्त:पुर में अपनी महिषियों, उपपत्नियों तथा रक्षिताओं के साथ रंगरलियों में बीतता था। राजा बहुपत्नीक थे। स्वयंवर जैसे धार्मिक कृत्यों पर खून की नदियाँ बह जाया करती थी। चारों ओर युद्धों का वातावरण था। सामान्य जनता में मनोबल की कमी थी। हिंदू समाज जन्मगत, स्थानगत, व्यवसायगत, सम्प्रदायगत और वंशगत जातियों एवं उपजातियों में बँट गया था। जिससे परस्पर संगठन एवं सहानुभूति का अवसर उत्पन्न नहीं हो पाता था। हर तरफ युद्धों का वातावरण था।

4. नारी के प्रति दृष्टिकोण :

इस युग में नारी की आवस्था बहुत ही बिकट थी। उसके प्रति समाज में उदात्त दृष्टिकोण नहीं था। नारी को सिर्फ भोग का साधन समझा जाता था। उस युग में बालविवाह, पर्दापद्धत, तथा सती प्रथा का भी बोलबाला था। नारी को कोई सामाजिक महत्त्व नहीं था। उसे सिर्फ भोग का साधन समझा जाता था। सिर्फ नारी की प्राप्ति के लिए अनेक राजाओं में युद्ध भी होते थे।

5. विवाह एवं उत्सव :

उस समय विवाह लगभग सभी करते थे और गृहस्थ आश्रम एक ऐसे मर्यादित आश्रम के रूप में माना जाता था जिसके द्वारा अर्थ और काम की प्राप्ति हो सकती थी। स्मृतियों में गिनाए गए ब्राहम, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, गांधर्व, आसूर, पिशाच और राक्षस ये आठ प्रकार के विवाह सैद्धान्तिक दृष्टि से मान्य थे। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से ब्राम्ह विवाह का अधिक प्रचार था। तो निम्नवर्ण में आसूर विवाह की प्रथा थी। स्वयंवर की प्रथा सिर्फ राजपूतों तक ही सीमित थी। मुस्लिमों के आक्रमण के पश्चात् बालविवाह की प्रथा भी रुढ़ हो गई। उस समय विधवा विवाह का निषेध था।

इस काल में समाज के विभिन्न वर्गों में विविध प्रकार के उत्सवों और वस्त्राभूषणों के प्रति प्रेम प्रचलित था। आखेट, मल्ल-युद्ध, घुड़सवारी, द्यूत-क्रीड़ा, संगीत, नृत्य आदि मनोरंजन के साधन थे और कवियों का विशेष आदर था।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस काव्य में संगठित सामाजिक व्यवस्था की आशा नहीं कि जा सकती थी। धार्मिक अराजकता के बीच सामाजिक जीवन आडम्बरपूर्ण बनता जा रहा था। अधिकांश क्षत्रियों में राष्ट्रीय भावना का ऱ्हास हो गया था । समाज जाति-पाति, गोत्र आदि के झगड़े में पड़कर ऐक्य की भावना भूल गया था । इस सामाजिक अवस्था का चित्र तत्कालीन हिन्दी साहित्य में पूर्ण रूप से चित्रित हुआ है ।

1.3.2. आदिकाल की राजनीतिक परिस्थिति :

आदिकाल की राजनीतिक परिस्थिति इस प्रकार से है -

१) अव्यवस्था और पराजय का युग :

भारतीय इतिहास का यह युग राजनीति की दृष्टि से अव्यवस्था, गृह-कलह और पराजय का युग था। इस काल से भारतीय राजनीतिक जीवन के विश्रृंखल होने का इतिहास प्रारम्भ होता है । ईसा की सातवी आठवी शताब्दी से बारहवी शताब्दी के राजनीतिक घटना चक्र ने हिन्दी साहित्य को भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियों से प्रभावित किया था । एक ओर मुसलमानों के आक्रमण पर आक्रमण हो रहे थे, तो दूसरी ओर देश के देशी राजे आपस में लड़ते रहे थे। गृह-कलह के कारण राजाओं की शक्ति नष्ट हो गई थी । उन्हें परकियों से पराजित होना पड़ा ।

२) केंद्रीय सत्ता का ऱ्हास :

सम्राट हर्षवर्धन (सन् 606 से 643) के निधन के पश्चात मानों एक प्रकार से उत्तरी भारत से केंद्रीय सत्ता का ऱ्हास हो गया और राजसत्ता पूर्ण रूप से डाँवाडोल हो गई । 9 वीं शताब्दी में प्रतिहार मिहिर भोज ने उसे फिर समेटा तो उधर दक्षिण को राष्ट्रकूटों के साम्राज्य ने सम्भाल रखा था । उधर अरब में नवोदित इस्लाम ने अफगाणिस्थान तक अपने पैर पसारने चाहे उस समय अफगाणिस्थान भारत के अंतर्गत ही था । अब मुस्लिमों

ने सिंध को प्रवेशद्वार बनाया और सन् 710 - 11 में सबसे पहले मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्त्व में सिंध पर धावा किया । सिंध का राजा दाहिर और उसके बेटे तिल-तिल भूमि के लिए लड़े लेकिन अंत में उन्हें पराजित होना पड़ा। फिर 739 ई. में तत्कालीन अरब सेनापति ने सिंध से कच्छ, दाक्खिनी मारवाड, उज्जैन और उत्तरी गुजरात को ध्वस्त कर दक्षिण गुजरात में प्रवेश किया। लेकिन चालुक्य सेनापति ने अरब सेना को सिंध तक ही सीमित रखा । उस समय कश्मिर में सम्राट ललितादित्य का शक्तिशाली राज्य था ।

ग्यारहवीं - बारहवीं शताब्दी में दिल्ली में तोमर, अजमेर में चौहान और कन्नौज में गाहडवाण के शक्तिशाली राज्य बने। उस समय बीसलदेव चौहान ने तोमरों से दिल्ली ले ली और हिमालय तक अपने राज्य का विस्तार किया। इस तरह तीनों आपस में लड़ते रहें उन्होने कभी एकत्रित होकर विदेशी आक्रमणों का सामना नहीं किया । अत: एक-एक करके वे पराजित होते गये ।

३) महमूद गजनवी और शहाबुद्दीन गौरी के आक्रमण :

मुसलमानों ने सिंध को प्रवेशद्वार बनाकर उत्तरी भारत पर आक्रमण करके उत्तरी भारत पर अपना कब्जा किया। उस समय देशी राजाओं में मनोबल की कमतरता औरा अपने राजाओं के प्रति उदासीनता होने की वजह से वे विदेशीयों से हरते चले गए। 10 वीं शताब्दी के अंत में गजनी का राज्य महमूद गजनवीं के हाथ में आ गया था । उसने भारत पर अनेक बार आक्रमण किए थे। जिससे उत्तरी भारत पूर्ण रूप से उध्वस्त हो चूका था। उसने अपने राज्य विस्तार के लिए सोमनाथ, कन्नौज और कालिंजर के समृध्द मंदिरों में जमा अपार धनराशि को लूटा था । बाद में गजनी का राज्य शाहबोद्दीन गौरी के हाथ में आया। उसने पृथ्वीराज चौहान पर अनेक बार आक्रमण किए। गौरी को पृथ्वीराज से अनेक बार पराजित होना पड़ा । अंत में कन्नौज के राजा जयचन्द के षड्यंत्र के परिणामस्वरूप पृथ्वीराज मुहम्मद गौरी से पराजित हुआ और मारा गया । फिर कन्नौज और कालिंजर का भी पतन हुआ । और दिल्ली में तुर्की सल्तनत का झंडा फहरने लगा । इस तरह उत्तर भारत में मुस्लिमों की सता का उदय हुआ ।.

५) संकुचित राष्ट्रीयता की भावना :

उस युग में राजा अपने दस पच्चास गांवों को ही अपना राष्ट्र समझते थे। उन्होंने व्यापक रूप में समूचे भारत को अपना राष्ट्र नहीं समझा था । हिन्दुओं में अपना राज्य फैलाने की लालसा लिये अनेक वीर थे किन्तु आक्रमण के समय पड़ोसी राज्य से उदासीन रहते थे । उनमें संकुचित राष्ट्रीयता थी । इसी कारण उन्होंने विदेशी आक्रमणों का एक होकर सामना नहीं किया था । सभी राज्य के राजा आपस में लड़ते रहें और एक एक करके पराजित होते रहें । वैयक्तिक वीरता होते हुए भी उन्हें दूसरों से पराजित होना पड़ा । वे यदि सम्मिलित रूप से विदेशी आक्रमणों का सामना करते तो निश्चित रूप से भारत का मानचित्र आज कुछ और होता ।

उपर्युक्त राजनीतिक परिस्थितियों के सर्वेक्षण के पश्चात यह कहा जा सकता है कि, आदिकाल का युग भारतीय इतिहास का पतन काल है । इस युग में पारस्परिक फूट, कलह, विलासिता के कारण भारतीय शक्ति

ध्वस्त हुई थी । ईस्लाम एक ओर तो भेद भाव जर्जर भारत वर्ष में समानता का मन्त्र लेकर आया और दूसरी ओर कृपाण की शक्ति और समानता के मन्त्र ने भारतीय दलितों में ऊपर उठने का संकल्प उत्पन्न किया। इसी वजह से भी हिन्दू सत्ता धीरे धीरे समाप्त होकर मुसलमान सत्ता का उदय हुआ । इस युग के राजनीतिक परिस्थितियों का आदिकाल के साहित्य पर प्रभाव दिखाई देता है ।

१.३.३ आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएँ :

पृथ्वीराज रासो एवं बीसलदेव रासो का सामान्य परिचय ।

प्रस्तावना :

आदिकाल का संक्रमणकालीन साहित्य विषय वस्तुगत नाना प्रवृत्तियों तथा काव्य रूपगत सम्पदा की विविध पध्दतियों की दृष्टि से वस्तुत: विविधमुखी है। काव्य एवं शिल्पविधान के दृष्टिकोन से इस काल का साहित्य अपने समकालीन संस्कृत साहित्य से निश्चयत: आगे रहा है। राजस्थान के चारण कवियों ने चरित-काव्य लिखे। जिन्हें 'वीरगाथाएँ' अथवा 'रासोंकाव्य' कहा गया । आदिकाल के साहित्य में नाना सम्प्रदायगत धर्म व वैराग्य का साहित्य भी लिखा गया । जैसे जैन साहित्य, नाथसाहित्य एवं बौध्द साहित्य। इस युग में अपभ्रंश भाषाओं में हिन्दी विकसीत हो रही थी। अत: हिन्दी भाषा का स्वरूप स्पष्ट नहीं था। आदिकालीन साहित्य की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं - पृथ्वीराज रासो तथा बीसलदेव रासों । इस इकाई के अंतर्गत इन प्रतिनिधि रचनाओं की विस्तार से चर्चा करेंगे :-

1.3.3.1 पृथ्वीराज रासो :

पृथ्वीराज रासो एक विशालकाय ग्रन्थ है । जिसमें महाकाव्य के सभी लक्षण विद्यमान हैं। पृथ्वरीराज रासो आदिकाल की प्रतिनिधि रचना है। कवि चंदबरदायी को इसका रचयिता माना जाता है। ऐसा प्रसिध्द है कि ये पृथ्वीराज के साथ वि. सं. 1206 में पैदा हुए थे। ये जगाति गोत्र के भट्ट ब्राह्मण थे और इनका जन्म लाहौर में हुआ था। जालन्धरी इनकी इष्टदेवी थी जिनकी कृपा से चन्द अदृश्य काव्य तक का भी निर्माण कर सकते थे। कवि चंदबरदायी पृथ्वीराज चौहान के राजकवि, सामंत और सखा थे। पृथ्वीराज के दरबारी कवि थे। दोनों बचपन से साथ रहते थे। कवि चंदबरदायी ने ही पृथ्वीराज रासो की रचना की है। बाद में कवि चंद और उसकी रचना 'पृथ्वीराज रासो' का अस्तित्व विवादस्पद बन गाया। देखा जाये तो पृथ्वीराज रासो में राष्ट्रीय जीवन पूर्णत: प्रतिबिंबित होता है। इसमें भारतीय सभ्यता और संस्कृति के मूल से परिचय प्राप्त हो जाता है साथ ही उसमें भारतीय जीवन का सार दिखाई देता है। इसलिए कहा जाता है कि, तत्कालीन राष्ट्रीय आदर्शों का प्रतिनिधित्व करने की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' एक श्रेष्ठ महाकाव्य माना जाता है।

'पृथ्वीराज रासो' जितना अधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है उतना ही उसके संबंध में सन्देह भी है। ऐतिहासिक घटनाओं और विवरणों, तिथियों, पाठ आदि की दृष्टि से उसमें अनेक संदिग्ध स्थल हैं । फिर भी काव्य सौंदर्य की दृष्टि से यह अनुपम काव्य है। सभी आलोचकों ने इसके काव्य सौंदर्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है । इस ग्रंथ के 60 से भी अधिक संस्करण प्राप्त हुए हैं। इनमें से चार संस्करण निम्नप्रकार से हैं -

1) बृहत रूपांतर – 16306 छंद ।

2) मध्यम रूपांतर – 7000 छंद ।

3) लघु रूपांतर – 3500 छंद ।

4) लघुत्तम रूपांतर – 1300 छंद ।

पृथ्वीराज रासो का उद्धरण कार्य :

पृथ्वीराज रासों के उद्धरण कार्य में तीन व्यक्तियों का नाम लिया जाता है – १) झल्लर (जल्हन) २) चन्दसिंह ३) अमरसिंह ।

1) झल्लर (जल्हन) :

झल्लर या जल्हन कवि चंदबरदायी का पुत्र था । गजनी जाते समय चन्द अपने पुत्र जल्हन को रासो को पूरा करने का आदेश दे गये थे –

''पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृप काज'' । इस पंक्ति से साबीत होता है कि चंदबरदायी जल्हन को रासो को सम्पूर्ण करने का आदेश दे कर गजनी चले गये थे ।

2) चन्दसिंह :

रासो के लघुरूपांतर में 'चन्दसिंह उद्धरिय हम' यह पाठ उपलब्ध होता है। डॉ. उदयनारायण तिवारी ने अपनी पुस्तक 'वीरकाव्य संग्रह' में चन्दसिंह को महाराजा मानसिंह के छोटे भाई तथा अकबर के सेनापति सूरजसिंह के पुत्र को माना है। इस प्रकार चन्दसिंह मानसिंह का भतीजा था। डॉ. तिवारी के मतानुसार पृथ्वीराज रासो के लघु रूपांतरकार चन्दसिंह थे।

3) अमरसिंह :

अमरसिंह द्वितीय रासो के उद्धर्ता माने जाते हैं । इनका शासन काल सं. 1775 से 1808 माना जाता है। इसके उद्धार कार्य को प्रमाणित करने के लिए निम्न दोहा उपस्थित किया जाता है :–

छन्द प्रबन्ध कवित यति, साटक शाह दुहत्थ ।
लघु गुरू मंडित खंडि यह पिंगल अमर भरत्थ ।।

इस प्रकार पृथ्वीराज रासो के उद्धरण कार्य में तीनों का नाम लिया जाता है ।

'पृथ्वीराज रासो' जितना अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, उतना ही उसके संबं में सन्देह भी है। इसका अध्ययन करने पर ऐतिहासिक घटनाओं और विवरणों, तिथियों, पाठ आदि की दृष्टि से उसमें अनेक संदिग्ध स्थल हैं। पृथ्वीराज रासो कि प्रामाणिकता के संबंध में विद्वानों के चार वर्ग हैं –

1) प्रथम वर्ग के विद्वान 'पृथ्वीराज रासों' को प्रामाणिक रचना मानते हैं ।

2) द्वितीय वर्ग के विद्वान इस रचना को अप्रामाणिक मानते हैं ।

3) तृतीय वर्ग के विद्‌वान इसे अर्ध प्रामाणिक मानते हैं ।

4) चतुर्थ वर्ग के विद्‌वान इसे फुटकर रचना मानते हैं ।

- **पृथ्वीराज रासो की संक्षिप्त कथा –**

पृथ्वीराज रासो आदिकाल का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें 69 सर्ग हैं। उनमें उस समय प्रचलित लगभग सभी छन्दों का प्रयोग हुआ है । जहाँ तक कथा से सम्बंध है 'पृथ्वीराज रासो' में मंगलाचरण के बाद क्षत्रियों की उत्पत्ति, अजमेर के सोमेश्वर का विवाह दिल्ली के अनंगपाल (तोमर) की पुत्री कमला के साथ, पृथ्वीराज का जन्म, अनंगपाल की द्वितीय पुत्री सुन्दरी का विवाह कन्नौज के राठौर विजयपाल के साथ, जयचन्द का जन्म, अनंगपाल का पृथ्वीराज को गोद लेना, जयचन्द को बुरा लगना, राजसूय यज्ञ, पृथ्वीराज द्‌वारा संयोगिताहरण, पृथ्वीराज का भोगविलास में लीन होना, शहाबोद्दीन का आक्रमण, पृथ्वीराज को बन्दी बनाकर गजनी ले जाना, चंद और पृथ्वीराज का एक दूसरे को कटार मार कर मर जाना, इस प्रकार पृथ्वीराज के अनेक युध्दों और विवाहों तथा आखेटों आदि का वर्णन है। ग्रन्थ में वीर रस की प्रधानता के साथ श्रृंगार रस की भी प्रचुरता है ।

- **पृथ्वीराज रासो की काव्य – सौंदर्य –**

'पृथ्वीराज रासों' एक विशालकाय ग्रंथ है, जिसमें महाकाव्य के सभी लक्षण विद्यमान हैं। इसका कथानक भारतीय शूर सामन्तों की वीरता, शौर्य सम्पन्न विजय एवं पराक्रमपूर्ण गौरव गाथा से अनुस्यूत है। इसका नायक हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान क्षमा, दया, गांभीर्य, रूप–सौंदर्य, यौवन, उत्साह, ओज, तेज, स्वाभिमान आदि गुणों से विभूषित उच्चकुलोद्‌भव तथा क्षत्रिय वंश का गौरव है । काव्य–सौंदर्य की दृष्टि से यह रचना उच्च कोटि की रचना है। वस्तुवर्णन, चरित्र–चित्रण, प्रकृति चित्रण, भाव एवं रसवर्णन, अलंकार, छंद योजना, भाषाशैली आदि सभी दृष्टियों से यह अनुपम काव्य है।

1) वस्तुवर्णन –

'पृथ्वीराज रासो' विभिन्न प्रकार के वस्तु वर्णनों से विभूषित है। वस्तुवर्णनों में भिन्नता के साथ साथ सरसता, विविधता और विद्‌ग्धता भी है। नगर, वन, उपवन, सेना, राजदरबार की शान व शौकत का विस्तृत वर्णन अनुपम बन पड़ा है। कवि ने अपने इस वस्तु वर्णनों में से सबसे अधिक तीन वर्णनों को महत्त्व प्रदान किया है – आखेट वर्णन, युद्धवर्णन और विवाह वर्णन।

2) चरित्र–चित्रण –

'पृथ्वीराज रासो' एक विशालकाय महाकाव्य है। इसमें अनेक पात्र आए हैं। उनमें से तीन पात्र प्रमुख हैं– पृथ्वीराज चौहान, कवि चंदबरदायी और संयोगिता । सारे पात्र चारित्रिक विशेषताओं से ओतप्रोत हैं। पृथ्वीराज एक पराक्रमी, उत्साही और दृढ़ योद्‌धा है। उसके चरित्र में राजपुताना वीरता की झलक देखने को मिलती है। वह जहाँ भी जाता है विजय का झंडा फहराता है। चंदबरदायी का व्यक्तित्व पृथ्वीराज से भी अधिक प्रभावशाली साबीत हुआ है। चंद साहसी गंभीर वक्ता, ओजस्वी, दूरदर्शी और कल्पनाशक्ति का कवि है। संयोगिता को अपूर्व अद्‌वितीय सुंदरी के रूप में दिखाया है।

3) प्रकृति–चित्रण –

प्रकृति वर्णन भी कवि ने बड़े विस्तार से किया है। प्रकृति के उद्दीपन रूप में कवि ने षट्–ऋतुओं का वर्णन बड़े मनोयोग के साथ किया है। कवि के इस प्रकृति चित्रण में सांस्कृतिक विशेषता के साथ साथ स्थानगत विशेषताएँ भी विद्यमान हैं। सभी प्रकृति वर्णन भारतीय सुषमा के अलौकिक रूप को प्रस्तुत करते हैं और उत्तरी भारत के नैसर्गिक प्राकृतिक सौंदर्य से मण्डित हैं।

4) भाव एवं रस वर्णन –

'पृथ्वीराज रासों' एक युद्धप्रधान वीरकाव्य है। इसमें वीर और श्रृंगार रस का अपूर्व समन्वय है। जितनी तन्मयता से वीर रस का निर्वाह हुआ है उतनी ही रसमयता से श्रृंगार के चित्र भी उतारे हैं। पृथ्वीराज युद्धवीर और प्रेमवीर है। श्रृंगार वर्णन में पहले पहल वय: सन्धि या नख–शिख का स्थान आता है। इस दृष्टि से राजकुमारी इंदिनी, शशिव्रता, पद्मावती और संयोगिता के वर्णन अत्यधिक मार्मिक बन पड़े हैं। संयोगिता का प्रेम–प्रसंग, सौंदर्य, यौवनकालीन छटा आदि का मनोहर वर्णन मिलता है।

भावाभिव्यंजन में भी कवि की कुशलता दिखाई देती है। प्रथम मिलन में नायिका का भावशबल और भी मनोहर है। पद्मावती की दृष्टि जैसे ही पृथ्वीराज पर पड़ती है, वैसे ही वह उसपर मुग्ध हो जाती है। पर लज्जावश तत्काल ही मुँहपर घूँघट डाल देती है। कवि ने उसकी इन मनोदशा का चित्र बहुत ही सजीव प्रस्तुत किया है। कवि ने इसी कौशल से अन्य सभी रसों की अभिव्यक्ति की है।

5) अलंकार एवं छंदयोजना –

'पृथ्वीराज रासो' में अलंकार एवं छंद योजना पूर्णतया रसानुकूल दिखाई देती है। इसमें परम्परागत सभी अलंकार मिलते हैं। कवि की छन्द योजना अनुपम है। आदिकाल में एक भी ऐसा कवि नहीं जो इस क्षेत्र में चंद के सामने आ सक। उसने उस युग में प्रचलित सभी छन्दों दूहा, कवित, कुंडलिया, भुजंगी, साटक, त्रोटक, अरिहल, मोतियदाम, रसावला, पहद्धरी, भ्रमरावली, नाराय, गाथा, आर्या और अनुष्टुप आदि का प्रयोग किया है। अलंकारों में रूपक, उत्प्रेक्षा, रूपकातिश्योक्ति, उपमा आदि अलंकारों का प्रयोग किया है।

6) भाषा –

'पृथ्वीराज रासो' की भाषा विवादास्पद है। अनेक विद्वानों ने इसकी भाषा पिंगल मानी है। इस समय पिंगल प्राचीन ब्रजभाषा को कहा जाता था। जो राजस्थानी भाषा का मिश्रण थी। रासो में अरबी, फारसी के बहुत सारे शब्दों का प्रयोग हुआ है। जो चन्द के समय किसी भी प्रकार प्रयोग में नहीं लाये जा सकते थे। ऐसा भी कहा जाता है कि उस समय मुसलमानों के आक्रमण आरंभ हो गये थे। अत: लाहौर का निवासी होने के कारण चन्द की भाषा में उन शब्दों का प्रयोग उचित और तर्कसंगत है। रासो में संवाद शैली प्रयुक्त हुई है। संवादों के माध्यम से कथानक का विकास हुआ है। इसमें वर्णनात्मक शैली का बहुत ही प्रभावशाली ढंग से उपयोग हुआ है। चंद की शब्द चयन योजना उत्कृष्ट है। इसलिए कहा जाता है कि, भाषा की दृष्टि से चंदबरदायी षट्–भाषाओं के पंडित थे। इस संबंध में चंद स्वयं कहते हैं–

''उक्ति धर्म विशालस्य राजनीति नवं रसं ।

षट्भाषा पुरानं च कुरानं च कथितं मया ।।''

उक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि 'पृथ्वीराज रासो' काव्य के दोनों पक्षों अर्थात् भाव पक्ष और कलापक्ष का एक सन्तुलित निदर्शन है और ज्ञान का तो वह विशाल आकाश है ही। उसका अपने साहित्य का महत्त्व है। ऐतिहासिक घटनाओं की अप्रामाणिकता का प्रश्न उसके अलोक को मन्द नहीं कर सकता। यह एक उच्च कोटि भी रचना सिद्ध हुई है।

1.3.3.2 बीसलदेव रासो –

बीसलदेव रासो आदिकाल गेय मुक्तक परम्परा की प्रतिनिधि रचना है। आदिकाल के गेय साहित्य में इस ग्रन्थ की चर्चा विशेष रूप से की जाती है। इसलिए यह इस युग की एक विशिष्ट रचना है। विशिष्ट इस अर्थ में कि यह रचना वीरगाथा न होकर एक प्रेमकाव्य है। इसमें विवाह के उपरांत पति–पत्नी के सम्पर्क से प्रेम का विकास दिखाया गया है। यह एक विरह काव्य है। आदिकालीन उपलब्ध साहित्य में यह सबसे अधिक प्रामाणिक रचना है। आदिकाल के अन्य रासो रचना के समान इस ग्रन्थ के रचनाकाल, रचयिता और चरितनायक आदि बातें विवादास्पद हैं।

प्रस्तुत रचना का रचनाकाल का प्रश्न अत्यंत ही विवादास्पद है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने इसका रचनाकाल निम्न पद्य के आधार पर सं. 1212 स्वीकार किया है।

जैसे – बारह सौ बहोत्तरां मझारि, जेठ वदी नवमी बुधवारि ।

नाल्ह रसायण आरंभई शारदा तटी ब्रह्म कुमारि ।।

सं. 1212 में ज्येष्ठ की नवमी बुधवार को इस रचना का प्रणयन आरंभ हुआ । इसके रचनाकाल के सम्बंध में अनेक विद्वानों के अनेक मत होते हुये भी संवत 1212 समोचीत है। बीसलदेव रासों का चरित्र नायक विग्रहराज चतुर्थ है। अजमेर और सांभर के चौहान वंश में विग्रहराज नाम के चार राजा हो गए। उन सभी को बीसलदेव कहा जाता है। इनमें से कौन से विग्रहराज का वर्णन है, यह बात भी विवादास्पद है।

इस ग्रन्थ का रचयिता विग्रहराज चतुर्थ का समकालीन कवि नरपति नाल्ह (1212) है। इसके रचयिता के संदर्भ में भी अनेक विद्वानों के मत मिलते हैं फिर भी अजमेर के नरपति नाल्ह का समय 1212 ही है। इससे साबीत होता है कि बीसलदेव रासो के रचयिता नरपति नाल्ह ही है।

- **बीसलदेव रासो की संक्षिप्त कथा :**

बीसलदेव रासो आदिकाल की विशिष्ट रचना है। यह रचना प्रबंध काव्य न होकर मुक्तक काव्य में है। यह प्रेम काव्य के साथ विरह काव्य है। इसमें चार खंड और 125 छंद हैं । जैसे –

खंड 1 – मालवा के भोज परमार की पुत्री राजमती से सांभर के बीसलदेव का विवाह होना।

खंड 2 – बीसलदेव का राजमती से रूठकर उड़ीसा की ओर प्रस्थान करना तथा वही एक वर्ष रहना।

खंड 3 – राजमती का विरह वर्णन तथा बीसलदेव का उड़ीसा से लौटना ।

खंड 4 – भोज का अपनी पुत्री को अपने घर ले जाना तथा बीसलदेव का वहाँ जाकर राजमती को फिर चितौड़ लाना ।

इस प्रकार पूरी कथा ललित मुक्तकों में वर्णित है। यदि इस कहानी को हटा दिया जाय तो भी इस प्रेम काव्य के मुक्तकों की एकसूत्रता में कोई अंतर नहीं आता। बीसलदेव रासों के आरंभ में विवाह के गीत हैं साथ ही बीसलदेव के परदेस जाने का प्रसंग भी वर्णित है। यह ग्रन्थ विरह के स्वाभाविक चित्रण, संयोग और विप्रलंभ श्रृंगार की सफल उद्‌भावना और साथ ही प्रकृति के रूप चित्रों से परिपूर्ण है। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विविध घटनाओं के वर्णनों के होते हुए भी इस काव्य में इतिवृत्तात्मक नहीं है।

राजमती का विवाह बीसलदेव के साथ बड़ी शान व शौकत से होता है कहा जाता है कि भोज ने बीसलदेव को डालीमार, कुंडार, झंडोअर, गुजरात, सौरठ, साँभर, टोक, तोड, चितौड आदि प्रदेश दहेज में दिए थे। लेकिन यह कवि की अतिरंजित कल्पना का भाग कह सकते हैं। इस रासो में बहुत से ऐसी घटनाएँ हैं जो काल विरूद्ध और इतिहास विरूद्ध हैं जिनका समाधान नहीं हो सकता। बीसलदेव बहुत प्रतापशाली राजा था, और स्वयं संस्कृत का अच्छा कवि भी था। उसने अपना 'हरकेलिविजय' नाटक शिलापट्टों पर खुदवाया था। उसके राज-कवि सोमदेव ने 'ललित विग्रह' नाम का काव्य लिखा था जो राजपूताना म्युजियम में सुरक्षित है। बीसलदेव के और भी बहुत से शिलालेख प्राप्त हैं। उनसे बीसलदेव प्रतापी राजा सिद्ध होता है, उसका कोई भी सबूत नहीं है कि बीसलदेव ने कभी उड़ीसा पर चढ़ाई की थी या उसे जीता था । इस प्रकार अनेक घटनाओं का कवि ने वास्तविक वर्णन न कर कल्पित कहानी का वर्णन किया है। इसलिए इस ग्रंथ की संदिग्धता बढ़ती जाती है । ग्रंथ में बारबार लिखा है कि उसने रासो का गान किया था । जैसे –

गायो हो रास सुनै सब कोई ।

यउइ हरिष गायण कइ गाइ ।।

इससे ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ की रचना गाने के लिए ही हुई होगी ।

- **काव्यसौंदर्य :**

बीसलदेव रासो एक विरह काव्य है। इसमें चार खण्ड हैं तथा सवा सौ छन्द हैं। इसमें छोटी सी प्रेमकथा मुक्तकों में बताई गई है। इसमें अजमेर के राजा बीसलदेव और रानी राजमती के प्रेम, विवाह और पुनर्मिलन की कथा बताई है। इसमें प्रमुख रूप से राजमती के विरह का वर्णन किया है।

1) विरह वर्णन :

बीसलदेव रासो हिन्दी साहित्य का एक उत्कृष्ट विरह काव्य है। कवि न राजमती के विरह का स्वाभाविक चित्रण किया है। साथ ही संयोग और वियोग की सफल उद्‌भावना और साथ ही प्रकृति के रूप चित्रों से परिपूर्ण है। विवाह के उपरांत बीसलदेव राजमती को छोड़कर 12 वर्षों तक उड़ीसा चला जाता है। पति के वियोग में राजमती 12 वर्षों तक तड़पती रहती है। राजमती राजा का राजकीय अभिमान सहन नहीं करती और उसे खरी बात कह देती है। राजा बीसलदेव जलभून जाता है और वह रूठकर उड़ीसा जाने का संकल्प करता है। इस पर राजमती लाख अनुनय विनय करती है। उस समय के रानी के वचन अत्यंत मार्मिक बन पड़े हैं-

हेड़ाऊ का तुण्यि जिंउ ।

हाथ न फेरइ सउसउ बार ।।

अर्थात मैं हार के उस घोडे के समान उपेक्षित हूँ जिस पर घोडेवाला सौ सौ दिन तक हाथ नहीं फेरता। आगे चलकर वह कहती है कि ताजा घोडा यदि उसांसे लेता है तो उसे दागा जाता है, चरता हुआ मृग भी मोहित जा सकता है, किन्तु हे सखि ! अंचल में पिया को बांधा कैसे जा सकता है? पति की नीरसता पर झल्लाकर यहां तक कहती है कि,

राउ नहीं सषि भइस पीडार

राजमती जबान की तेज है तो क्या? आखिर वह भारतीय नारी थी। पति के विरह में उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है। उसे अपने स्त्री जीवन पर रोना आता है। वह विधाता से कहती है कि, तुमने मुझे स्त्री का जन्म क्यों दिया? देने के लिए तो तुम्हारे पास और भी अनेक जन्म थे। तुमने मुझे जंगल का जन्तु क्यों नहीं बनाया। यदि जंगल की काली कोयल भी बनाते तो मैं आम और चम्पा की डाल पर बैठती, अंगूर और बीजोरी के फल खाती। इस प्रकार यहाँ राजमती के द्वारा मध्ययुगीन नारी की आत्मा का करुण क्रन्दन एवं चीत्कार है। आगे वह क्हती है की यदि तुमने मुझे नारी ही ना बनाना था तो राजरानी न बनाकर जाटनी क्यों नहीं बनाया? मैं अपने भरतार के साथ खेत कमाती, अच्छी लोमपटी पहनती, तुंग तुरंग के समान अपना गात स्वामी के गात से भिड़ाती। कितनी बड़ी विवशता है कि किसी राजा की रानी होना। पति के वियोग में राजमती 12 वर्षों तक तड़पती है। उसका यह विरह बारह मासा पद्धति पर चित्रित किया है। प्रकृति के माध्यम से विरह वर्णन प्रस्तुत किया है। इसमें संयोग वर्णन नहीं है। राजमती के रूप में नारी हृदय की व्यथा मार्मिक रूप से व्यक्त हुई है।

2) चरित्र चित्रण :

बीसलदेव रासो का नायक विग्रहराज चतुर्थ है। जिन्हे बीसलदेव कहा जाता था। विग्रह राज का विवाह मालवा के भोज परमार की पुत्री राजमती से होता है। राजमती की खरी बात पर रूठकर वह 12 साल तक उड़ीसा चला जाता है ।

बीसलदेव रासो में एक ही प्रमुख चरित्र है – वह है रानी राजमती का । पूरे ग्रंथ में राजमती का वर्णन सजीव और विलक्षण बन पड़ा है। कवि ने इस ग्रंथ में नारी के चरित्र का गुणगान किया है। यहाँ केंद्रीय पात्र राजमती है। बीसलदेव तो पूरक पात्र के रूप में आता है। कवि ने नारी जीवन के प्रति गहरी सहनुभूति दिखाई है। कवि ने राजमती के माध्यम से नारी जीवन की कोमलता, दीनता और विवशता का परिचय दिया है । राजमती का चरित्र बड़ा ही सजीव तथा विलक्षण बन पड़ा है। उसके चरित्र में एक कुलीन नारी का स्वाभिमान है। राजा बीसलदेव एक दिन राजकीय अभिमान में राजमती से कहता है कि,'मेरे समान दूसरा भूपाल नहीं। राजमती राजा का झूठा अभिमान सहन नहीं कर पाती । वह कहती है,'आप से अनेक श्रेष्ठ राजा इस धरती पर हैं।' उड़ीसा का राजा तुमसे धनी है। जिस प्रकार तुम्हारे राज्य में नमक निकलता है, उसी तरह उसके घर में हीरे की खानों से हीरा निकलता है।'' राजा राजमती का व्यंग्य सहन नहीं कर पाता और रूठकर 12 साल तक उड़ीसा चला जाता है। एक आलोचक ने राजमती के संबंध में कहा है–''मध्ययुग के समूचे हिन्दी साहित्य में जबान की इतनी तेज और मन की इतनी खरी नायिका नहीं दीख पड़ती है।'' राजमती के रूप में नारी जीवन की वेदना और विवशता को प्रस्तुत किया है। राजमती 12 सालों तक पति के विरह में तड़पती रहती है। वह

विधाता से कहती है कि मुझे स्त्री जन्म देने की अपेक्षा सामान्य स्त्री बनाया होता। मैं अपने पति के साथ सुख से रहती। इस तरह राजमती के रूप में नारी जीवन की चिरंतन व्यथा का चित्रण हुआ है।

3) कलापक्ष :

'बीसलदेव रासों' बीसलदेव और राजमती की एक छोटी सी प्रेमकथा है। पूरी कथा मुक्तक काव्य में वर्णित है। इसमें चार खंड और 125 छंद है। इस रचना में आदि से अंत तक एक ही छंद का प्रयोग हुआ है। सम्पूर्ण रचना गेय है। प्रत्येक छंद स्वतंत्र गीत है और केदार राग में गाये जाने के लिए लिखा गया है। यह रचना नृत्यगीत के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है। गीति काव्य के सभी गुण इस रचना में मिलते हैं। पूरी कथा में कही कही स्थानों पर अस्वाभाविकता, नीरसता और भौंड़ापन देखने मिलता है, फिर भी अपनी गेयता और संक्षिप्तता के कारण यह रचना प्रभावशाली बनी है।

4) भाषा :

बीसलदेव रासो की भाषा को उस युग की भाषा का संधिस्थल कह सकते हैं। भाषा में एक ओर अपभ्रंशपन है, तो दूसरी ओर हिंदीपन है। भाषा का यह रूप वस्तुत: उसे सं. 1212 की रचना सिद्ध करता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार इसकी भाषा राजस्थानी है। जैसे 'भाषा की परीक्षा करके देखते हैं तो वह साहित्यिक नहीं, राजस्थानी है।.....' इस ग्रंथ से एक बात का आभास मिलता है। वह यह कि श्लिष्ट भाषा में ब्रज और खड़ी बोली के प्राचीन रूप का ही राजस्थान में व्यवहार होता था। साहित्य की सामान्य भाषा हिन्दी थी। जो पिंगल भाषा कहलाती थी। बीसलदेव रासो में बीच बीच में बराबर इस साहित्यिक भाषा (हिन्दी) को मिलाने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है।''

उसी तरह डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार, यह अपभ्रंश से विकसित हिन्दी का ग्रंथ है। इसकी भाषा आदिकालीन हिन्दी का स्वरूप स्पष्ट करती है ।

इस तरह बीसलदेव रासो आदिकाल का एक श्रेष्ठ काव्य है। आदिकालीन साहित्य की एक प्रामाणिक रचना है। जो आज भी पाठकों को प्रभावित करती है।

1.4) स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न 1 अ) निम्नलिखित वाक्यों में के नीचे दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) सबसे पहले हिन्दी साहित्य का इतिहास ..... ने लिखा ।

1. जार्ज ग्रियर्सन 2. शिवसिंह सेंगर 3. गार्सा द तासी 4. आ. शुक्ल

2) मिश्रबन्धुओं ने अपनी पुस्तक 'मिश्र बन्धुविनोद' में हिन्दी साहित्य के इतिहास को ..... कालखंडों में विभाजित किया ।

1. चार 2. आठ 3. पाँच 4. सात

3) राहुल सांकृत्यायन ने आदिकाल को ..... नाम से पुकार है ।

1. वीरगाथा काल 2. चारणकाल 3. सिद्ध सामंत युग 4. शृंगार काल

4) 'वीरगाथाकाल' यह नामकरण ..... ने किया है।

1. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी 2. रामकुमार वर्मा 3. आ. शुक्ल 4. राहुल सांकृत्यायन

5) आदिकालीन समाज में स्वयंवर की प्रथा सिर्फ ..... जाति तक ही सीमित थी।

1. क्षत्रिय 2. ब्रहमण 3. राजपूत 4. मुस्लिम

6) मुस्लिमों ने ..... को प्रवेशद्वार बनाकर उत्तरी भारत पर आक्रमण किए।

1. दर्रे-खैबर 2. सिंध 3. कच्च 4. पठानकोट

7) सन् 710-11 में सबसे पहले ..... के नेतृत्त्व में सिंध पर धाबा बोल दिया था।

1. मुहम्मद गजनी 2. मुहम्मदबीन कासिम 3. शहाबुद्दीन गोरी 4. बाबर

8) ..... के षड्यंत्र के परिणामस्वरूप पृथ्वीराज चौहान को मुहम्मद गौरी से पराजित होना पडा।

1. राजा दहिर 2. राजा बीसलदेव 3. राजा जयचन्द 4. राजा परमार

9) रासो-काव्यों में ..... का सजीव वर्णन है।

1. शृंगार 2. युद्धों 3. प्रकृति 4. राजनीति

10) पृथ्वीराज रासो के रचयिता ..... है।

1. दलपति विजय 2. आमीर खुसरो 3. चंदबरदायी 4. नरपति नाल्ह

11) संयोगिता ..... रासो की प्रमुख नायिका है।

1. परमार रासो 2. बीसलदेव रासो 3. खुमान रासो 4. पृथ्वीराज रासो

12) पृथ्वीराज रासो में ..... सर्ग हैं।

1. 70 2. 69 3. 79 4. 50

13) चंदबरदायी ने गझनी जाते समय अपने पुत्र ..... को रासो पूरा करने का आदेश दिया था।

1. चन्दसिंह 2. अमरसिंह 3. कर्तारसिंह 4. झल्लर (जल्हन)

14) पृथ्वीराज रासो की भाषा ..... है।

1. अवधी 2. हिन्दी 3. ब्रज 4. पिंगल

15) बीसलदेव रासो ..... काव्य है।

1. शृंगार 2. विरह 3. वीर 4. हस्य

16) बीसलदेव रासो की नायिका ..... है।

1. राजमती 2. पद्मावती 3. मृगावती 4. नागमती

17) आ. शुक्ल जी ने बीसलदेव रासो का रचना काल ..... स्वीकार किया है।

1. सं.1212 2. सं.1214 3. सं. 1211 4. सं. 1216

18) बीसलदेव रासो में चार खंड और ..... छंद हैं।

1. 125 2. 130 3. 100 4. 107

19) राजा बीसलदेव रानी राजमती से रूठ कर ..... चला जाता है।

1. गुजरात 2. लाहौर 3. उडीसा 4. आसाम

20) हिन्दी साहित्य के सं. 1050 से सं. 1375 तक के कालखंड को ..... कहा जाता है।

1. भक्तिकाल 2. रीतिकाल 3. आदिकाल 4. आधुनिक काल

प्रश्न 1 आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए।

1. हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम लेखक कौन हैं ?
2. 'मिश्र बंधु विनोद' यह रचना किस की है ?
3. आ. शुक्ल जी ने आदिकाल का प्रारंभ कहाँ से माना है ?
4. डॉ. रामकुमार वर्मा ने आदिकाल को किस नाम से पुकारा है ?
5. 'बीजवपनकाल' यह नाम किसने दिया है ?
6. किसके निधन के पश्चात् उत्तरी भारत में केंद्रीय सत्ता का ऱ्हास हो गया ?
7. 10 वी शताब्दी के अंत में गजनी का राज्य किसके हाथ में आया ?
8. शक्तिशाली राजा पृथ्वीराज चौहान पर अनेक बार किसने आक्रमण किए ?
9. सोमनाथ का समृद्ध मंदिर किसने लूटा ?
10. मध्यकाल की सबसे जबान की तेज नायिका किसे कहा जाता है ?
11. संयोगिता किस रासो की प्रमुख नायिका है ?
12. 'बीसलदेव रासो' के रचयिता कौन हैं ?
13. 'बीसलदेव रासो' के पद किस राग में गाने के लिए लिखे हैं ?
14. कवि चंदवरदायी किस राजा का दरबारी कवि था ?
15. पृथ्वीराज रासो के नायक कौन है ?
16. 'बीसलदेव रासो' के नायक कौन हैं ?
17. 'बीसलदेव रासो' में कितने छंदों का प्रयोग हुआ है ?

18. उडीसा के राज्य में कौन सी खानें थी ?

19. आदिकाल का कालखंड कहाँ से कहाँ तक माना जाता है ?

20. पृथ्वीराज रासो में प्रमुख रूप से कौन से दो रासों का चित्रण है ?

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

विवादास्पद : जिस पर विवाद किया जा सकता है या झगडा।

पूर्ववर्ती : पहले का, पहले रह चुका हो।

परवर्ती : बाद में का, बाद में हुआ हो।

अपभ्रंश : प्राकृत भाषाओं का परवर्ती स्वरूप।

जौहर : राजपूत नारियाँ पति युद्ध क्षेत्र से पत्नी मोह से वापस न लौटे इसलिए आग के कुंड में अपने आप को समर्पित करती थी।

राजसूय यज्ञ : एक यज्ञ जो सम्राट पद के अधिकारी राजा करते थे।

अनुस्यूत : सिला, गूँथा या पिराया हुआ।

रासो : पुरानी हिंदी का काव्य, जिस में राजा का चरित, प्रेम और युद्धों का वर्णन हो।

पीठिका : आधार, आसन, छोटा पीढा, परिच्छेद, भूमिका।

नृपति वर्ग : राजा का वर्ग।

1.6 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

प्रश्न 1. अ)

1. गार्सा–द–तासी	2. पाँच	3. सिद्ध–सामंत युग	4. आ. शुक्ल
5. राजपूत	6. सिंध	7. मुहम्मदबीन कासिम	8. राजा जयचन्द
9. युद्धों	10. चंदबरदायी	11. पृथ्वीराज रासो	12. 69
13. झल्लर (जल्हन)	14. पिंगल	15. विरह	16. राजमती
17. सं. 1212	18. 125	19. उडीसा	20. आदिकाल

प्रश्न 1. आ)

1. हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम लेखक गार्सा–द–तासी हैं।
2. 'मिश्रबंध विनोद' यह रचना मिश्रबन्धुओं की है।
3. आ. शुक्लजी ने आदिकाल का प्रारंभ सं. 1050 से माना हैं।
4. डॉ. रामकुमार वर्मा ने आदिकाल को 'चारणकाल' इस नाम से पुकारा है।
5. आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने आदिकाल को 'बीजवपनकाल' नाम दिया है।
6. सम्राट हर्षवर्धन के निधन के पश्चात् उत्तरी भारत में केंद्रीय सत्ता का ऱ्हास हो गया।

7. 10 वीं शताब्दी के अंत में गजनी का राज्य मुहम्मद गझनी के हाथ में आया।

8. शक्तिशाली राजा पृथ्वीराज चौहान पर शहाबुद्दीन गौरी ने अनेक बार आक्रमण किए।

9. सोमनाथ का समृद्ध मंदिर महमूद गजनवी ने लूटा।

10. मध्यकाल की सबसे जबान की तेज नायिका राजमती को कहा जाता है।

11. संयोगिता 'पृथ्वीराजरासो' की प्रमुख नायिका है।

12. 'बीसलदेव रासो' के रचयिता नरपति नाल्ह हैं।

13. 'बीसलदेव रासो' के पद केदार राग में गाने के लिए लिखें हैं।

14. कवि चंदबरदायी पृथ्वीराज चौहान राजा का दरबारी कवि था।

15. 'पृथ्वीराज रासो' का नायक पृथ्वीराज चौहान है।

16. बीसलदेव रासो का नायक विग्रहराज चतुर्थ है।

17. 'बीसलदेव रासो' में एक ही छंद का प्रयोग हुआ है।

18. उडीसा के राज्य में हीरे की खानें थी।

19. आदिकाल का कालखंड सं. 1050 से सं. 1375 तक माना जाता है।

20. पृथ्वीराज रासो में प्रस्तुत रूप से वीर और शृंगार रसों का चित्रण है।

1.7 सारांश :

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रारंभिक कालखंड को 'आदिकाल' कहा जाता है।
- हिन्दी साहित्य के इतिहास का सर्वप्रथम लेखक एक फ्रेंच विद्‌वान गार्सा-द-तासी है।
- हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन और नामकरण का मौलिक प्रयास आ. रामचंद्र शुक्ल ने किया। उनका काल-विभाजन और नामकरण सर्वमान्य है।
- सामाजिक दृष्टि से आदिकाल जाति-व्यवस्था के कठोर बंधनों और रूढियों तथा अंधविश्वासों का था।
- राजाओं और सामंतों का जीवन विलासमय और भोगप्रधान था। राजा बहुपत्नीक थे। चारों ओर युद्‌धों का वातावरण था।
- आदिकाल के समाज में नारी के प्रति उदात्त दृष्टिकोन नहीं था। नारी को भोग और विलास की सामग्री समझा जाता था। उसे कोई सामाजिक महत्त्व नहीं था।
- राजनीतिक दृष्टि से आदिकाल का युग अव्यवस्था गृह कलह और पराजय का युग था ।
- मुस्लिम सिंध को प्रवेशद्वार बनाकर भारत पर आक्रमण पर आक्रमण करते रहें, तो दूसरी ओर देश के राजा आपस में लड़ते रहें ।
- उस युग में तीन शक्तिशाली राज्य थे- दिल्ली में तोमर, अजमेर में चौहान और कन्नौज में गाहड़वाण। ये

तीनों आपस में लड़ते रहें। उन्होंने एकत्रित होकर विदेशी आक्रमणों का सामना नहीं किया।

- आदिकाल का युग भारतीय इतिहास का पतनकाल है। हिंदू सत्ता के धीरे धीरे समाप्त होने और मुसलमान सत्ता के उदय होने की गाथा है। यह युग अव्यवस्था गृह कलह और पराजय का युग है।
- आदिकालीन साहित्य की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं – पृथ्वीराज रासो और बीसलदेव रासो ।
- रासो–काव्यों में युद्ध वर्णन, संकुचित राष्ट्रीयता, वीर और शृंगार रस, डिंगल और पिंगल भाषा आदि प्रमुख विशेषताएँ देखने को मिलती हैं।
- 'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता चंदबरदायी हैं। कवि चंद और उनकी रचना पृथ्वीराज रासों दोनों का अस्तित्व विवादास्पद है।
- 'पृथ्वीराज रासो' एक विशालकाय महाकाव्य है। इसमें वीर और शृंगार रस का अपूर्व समन्वय है।
- 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता विवादास्पद होते हुए भी यह एक उच्च कोटि का महाकाव्य है।
- बीसलदेव रासो आदिकाल की एक विशिष्ट रचना है।
- बीसलदेव रासो नरपति नाल्ह की एक लघु रचना है। यह मुक्तक काव्य की रचना है। प्रमुख रूप से रजामती के विरह वर्णन की कहानी है। कवि ने इस की कथा ललित मुक्तकों में बताई है।
- संपूर्ण रचना गेय है। गीतिकाव्य के सभी गुण इस रचना में मिलते हैं।
- इसके चित्रण में अनेक स्थानों पर अस्वाभाविकता है, नीरसता है; फिर भी अपनी गेयता और संक्षिप्तता के कारण यह रचना प्रभावशाली बनी है।
- इसकी भाषा संधिकाल की भाषा है। भाषा में एक ओर अपभ्रंशपन है, तो दूसरी ओर हिंदीपन है। इस तरह बीसलदेव रासो आदिकालीन साहित्य की एक प्रामाणिक रचना है।

1.8 स्वाध्याय :

1) हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन और नामकरण का परिचय दीजिए ।

2) आदिकाल के नामकरण की समस्या पर प्रकाश डालिए ।

3) आदिकालीन सामाजिक परिस्थितियों को स्पष्ट कीजिए ।

4) आदिकालीन राजनीतिक परिस्थितियों को स्पष्ट कीजिए ।

5) पृथ्वीराज रासो के काव्य सौंदर्य पर प्रकाश डालिए ।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :

- अपने देश की प्राचीन हस्तलिखित रचनाओं को प्राप्त करके उसकी सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितयों का अध्ययन कीजिए ।
- पृथ्वीराज रासो तथा बीसलदेव रासो को प्राप्त करके उनका अध्ययन कीजिए ।
- अपने क्षेत्र के प्रसिद्ध कवि तथा लोकगाथाओं का संग्रह कीजिए ।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : डॉ. शिवकुमार शर्मा

2) हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास : राजनाथ शर्मा

3) हिन्दी साहित्य का इतिहास : आ. रामचंद्र शुक्ल

4) हिन्दी साहित्य उद्‌भव और विकास : हजारीप्रसाद द्विवेदी

5) हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

6) हिन्दी साहित्य का आदिकाल : डॉ. ईश्वर दत्त शील

●●●

इकाई 2
भक्तिकाल

अनुक्रम :

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय – विवेचन

2.3.1 भक्तिकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ

2.3.2 भक्तिकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ

2.3.3 भक्तिकालीन कवियों का सामान्य परिचय

2.3.3.1 नामदेव व्यक्तित्त्व एवं साहित्य का परिचय

2.3.3.2 रैदास व्यक्तित्त्व एवं साहित्य का परिचय

2.3.3.3 नंददास व्यक्तित्त्व एवं साहित्य का परिचय

2.3.3.4 मीराँ व्यक्तित्त्व एवं साहित्य का परिचय

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

2.6 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.1 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1) भक्तिकालीन राजनीतिक परिस्थितियों की जानकारी दे सकेंगे।

2) भक्तिकालीन सामाजिक परिस्थिति की जानकारी दे सकेंगे।

3) नामदेव, रैदास, नंददास, मीराँ के व्यक्तित्त्व तथा साहित्य से परिचित होंगे।

2.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के इतिहास के सवंत् 1375 से संवत् 1700 के कालखंड को सामान्यत: भक्तिकाल कहा जाता है। इस काल के नामकरण के संबंध में मतभेद नहीं है। लगभग सभी आलोचकों और इतिहासकारों ने इस युग को 'भक्तिकाल' कहा है। इस युग में भक्ति का एक जन–आंदोलन हुआ। लगभग सभी कवियों ने भक्ति–भावना से युक्त कविता लिखी, इसलिए इस युग को 'भक्तिकाल' कहा गया। किसी भी युग के साहित्य को समझने के लिए तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों का ज्ञान महत्त्वपूर्ण होता है। वस्तुत: भक्ति साहित्य का उद्गम दक्षिण दिशा में ईसा की तीसरी शताब्दी में दिखाई देता है। यही कारण है कि साहित्य के अध्येताओं में निम्नलिखित छंद के भाव को एक स्वर से स्वीकार किया –

''भक्ति द्राविड़ी ऊपजी लाये रामानंद।

प्रकट किया कबीर ने सात द्वीप नौ खंड।''

मध्यकाल में भक्तिभावना ने भारत में एक विशाल जन आंदोलन का रूप धारण किया। स्वामी रामानंद ने इस आंदोलन का नेतृत्त्व किया। भक्ति की धारा दो रूपों में प्रवाहित हुई – निर्गुण और सगुण। निर्गुण धारा के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी एवं प्रेमाश्रयी शाखाएँ आती हैं । सगुण धारा के अंतर्गत रामभक्ति और कृष्णभक्ति शाखाएँ आती हैं। कबीर ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं और जायसी प्रेमाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। प्रस्तुत इकाई में भक्तिकालीन राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियाँ, भक्तिकाल के कवि नामदेव, कवि रैदास, नंददास और मीराबाई के व्यक्तित्त्व एवं रचनाओं का सामान्य परिचय देखेंगे।

2.3 विषय विवेचन :

2.3.1 भक्तिकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ

पूर्व–मध्यकाल का आरंभ दिल्ली के सुल्तान मुहम्मदबिन तुगलक (1325-1351) के राज्यकाल में हुआ। उसने दिल्ली की अपेक्षा देवगिरी को अपनी राजधानी बनाने का यत्न किया। उसका नाम दौलताबाद रखना चाहा। इस प्रयास में दिल्ली–प्रदेश एकदम उजाड़ हो गया। उसने एक बार तांबे के सिक्के चलाये। मिस्र के खलीफा से उसने अपनी राज्यसत्ता के लिए धार्मिक स्वीकृति भी प्राप्त की। हिंदू प्रजा के प्रति वह उदारमना था। उसके उत्तराधिकारी फीरोज तुगलक में धार्मिक सहिष्णुता का अभाव था। परिणामत: सूबेदारों ने विद्रोह कर

दिया और दिल्ली–सल्तनत में बिखराव उत्पन्न हो गया। उसका उत्तराधिकारी 'जोनासाहि' (जूनाशाह) था। परवर्ती सुल्तानों में बिगड़ती हुई स्थिति को कोई संभाल न सका। सुल्तान महमूद शाह की मृत्यु के उपरांत 1412 ई. में तुगलक वंश का अधिपत्य समाप्त हो गया। इसके बाद खिज्र खां ने दिल्ली पर अधिकार कर सैयद–वंश का अधिपत्य स्थापित किया। लोदी वंश के सुल्तान योग्य सिद्ध हुए, जिनमें से कई ने भीषण युद्धों में भाग लिया। सुल्तान इब्राहिम लोदी (1487-1526) को मुगलों का सामना करना पड़ा। लोदी वंश की सत्ता शिथिल पड़ चुकी थी। मालवा आदि स्वतंत्र सुबे बनने लगे थे।

मालवा :

मालवा विक्रम की दसवीं शताब्दी के लगभग प्रसिद्धि प्राप्त का चुका था। यह परमार राजपूतों के अधीन आया था। राजा भोज के समय इसकी ख्याति और अधिक बढ़ गयी। सुल्तान इल्तुतमिश द्वारा 1235 ई. आक्रमण किए गए। महाकाल के मंदिर ध्वस्त हो जाने के बाद यह श्रीहत हो चला। सुल्तान अल्लाउद्दीन खिलजी ने 1310 ई. में इसे अपने शासन में ले लिया। 1401 ई. में. मुहम्मद गोरी के वंशज दिलावर खां ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर धार नगरी को अपनी राजधानी बना लिया। उसके उत्तराधिकारी पुत्र अलप खां ने अपनी राजधानी मांडू में स्थापित की। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका वजीर महमूद खिलजी यहां का स्वामी बना। अपनी योग्यता से उसने अपने कई पड़ोसी राज्यों को पराजित कर दिया। उसके उत्तराधिकारी अपनी दुर्बलता के कारण मालवा की रक्षा करने में असमर्थ रहे। गुजरात के बहादुरशाह ने मालवा को अपने अधीन कर लिया। बाद में मालवा दिल्ली केंद्र के अधीन चला गया और शेरशाह ने शुजात खां को यहाँ का शासक नियुक्त कर दिया। इसी का पुत्र मलिक वायाजीद 'बाज बहादुर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिसकी प्रेमिका रूपमती बतलायी जाती है। 1562 ई. में सम्राट अकबर ने इसे अपने राज्य में मिला लिया।

गुजरात :

अपनी समृद्धि और सोमनाथ मंदिर के लिए गुजरात प्रसिद्ध रहता आया है। महमूद गजनवी ने सम्भवत: इसी से आकृष्ट होकर 1025 ई. में अफगानिस्तान से आकर यहाँ लूटपाट मचा दी थी। बहुत समय तक इसपर किसी का स्थायी अधिपत्य बना न रह सका। 1297 ई. में अल्लाउद्दीन खिलजी द्वारा इसे अपने शासनान्तर्गत लिये जाने पर यहाँ दिल्ली द्वारा नियुक्त शासकों का शासन चलने लगा था। 1401 ई. में सुबेदार जफर खाँ ने तैमुरलंग द्वारा आक्रमण किये जाने पर अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। परंतु यहाँ का वास्तविक शासक पहले–पहल अहमदशाह बना, जिसने अमदाबाद नगरी की स्थापना की। उसका पोता अहमदशाह (महमुद बघरी) बड़ा प्रसिद्ध हुआ। उसने 1507 ई. में तुर्कों की सहायता से पुर्तगालियों के विरुद्ध एक सेना समुद्र के पश्चिमी तट पर भेजी थी। गुजरात के शासकों में बहादुरशाह (1526-1537) भी प्रसिद्ध है, जिसने कई युद्धों में वीरता प्रदर्शित की। कालांतर में अपसी वैमनस्य बहुत बढ़ गया और अन्ततोगत्वा अकबर ने गुजरात को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

जौनपुर :

जौनपुर को फीरोजशाह तुगलक ने अपने चचेरे भाई जूनाशाह के स्मारक – स्वरूप गोमती नदी के किनारे

बसाया था। फीरोजशाह की मृत्यु होने पर ख्वाजाजहाँ वहा का शासक नियुक्त हुआ। महमुद तुगलक ने उसे 'मलिकुश्शर्क' की पदवी प्रदान की। इससे प्रोत्साहन पाकर उसने कई प्रमुख केंद्रों पर आक्रमण कर दिया। अंत में उसने विद्रोह कर अपने को 'अलावक-ए-आजम' कहना आरंभ कर दिया। शम्सुद्दीन इब्राहीम शाह शर्की उससे भी अधिक सफल शासक सिद्ध हुआ। महमुद तुगलक तक ने उससे सहायता की याचना की थी। वह कला और साहित्य का बड़ा अनुरागी था। हुसेन शाह शर्की भी यहाँ का एक शासक हुआ, जिसने दिल्ली सल्तनत के विरुद्ध परास्त होकर बिहार में आश्रय ग्रहण किया और फिर बंगाल जाकर सुल्तान हुसेन शाह की शरण ली। 'मृगावत्ती' के सूफी कवि कुतुबन का वह आश्रयदाता भी रहा। इसके बाद जौनपुर के कई सूफी आश्रयविहीन होकर मालवा से बंगाल तक फैल गये। विद्यापति ने 'कीर्तिलता' में जौनपुर का रोचक वर्णन किया है।

बंगाल :

दिल्ली से दूर होने के कारण कई बार आक्रमण करके भी मुस्लिम आक्रमणकारी बंगाल में टिक न सके थे। समय-समय पर केंद्र के प्रति यहां विद्रोहाग्नि भडकती रहती थी। शासकोंद्वारा अपने को स्वतंत्र घोषित किये जाने की दशा में उनका प्रजा से मिलकर रहना आवश्यक हो जाता है। फलस्वरूप इस प्रदेश में हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य फैलने के अवसर कम ही आ पाते थे। सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में ही कभी भेंट दिये जाने पर भी अपने यहाँ स्वतंत्र सुल्तान जैसा व्यवहार करते थे। अल्लाउद्दीन हुसेन शाह (1493-1519 ई.) अपने शासन-कला में इतना लोकप्रिय हुआ कि भावी अधिपत्य जमाने में उसके वंशजों को कोई कठिनाई नहीं हुई संगठन कर्ता के रूप में वह बहुत सफल रहा। जनता के लिए उसने कई संस्थाएँ स्थापित कीं तथा विद्वानों और धार्मिक पुरुषों को सहायता देनी आरंभ की। 'सत्य पीर' संप्रदाय चलाने का श्रेय उसे प्राप्त हुआ। जिसका उद्देश्य हिंदू-मुस्लिम एकता स्थापित करना था। उसका पुत्र नसरत शाह भी सफल शासक रहा। हुसेनशाही शासकों के बाद बंगाल में कोई टिक न सका। मुगलों पर विजय प्राप्त करने के बाद शेरशाह ने इस प्रदेश पर भी अपना प्रभुत्त्व जमा लिया।

बहमनी राज्य :

मुहमद्द बिन तुगलक के शासन-काल में दक्षिण की विद्रोहाग्नि का एक परिणाम इस्माइल मख के सुल्तान बनने में लक्षित हुआ उसने हसन गंगू के पक्ष में पद त्याग दिया । हसन गंगू ने 'जफर खा' की पदवी ग्रहण कर राज्य की गद्दी संभाली और अब्दुल मुजफ्फर अलाउद्दीन बहमनशाह कहलाकर दौलताबाद का सुल्तान बन बैठा। उसने अपनी राजधानी दौलताबाद से हटाकर 'गुलबर्गा' में स्थापित की। उसके उत्तराधिकारियों में फीरोजशाह सबसे योग्य प्रमाणित हुआ। उसने साहित्य और विद्वानों को संरक्षण देकर कीर्ति-लाभ किया। उसके बाद उसके भाई अहमदशाह ने बीदर नगर की नींव डालकर 'वली' की उपाधि ग्रहण की और तदनंतर अपने पुत्र जाफर खाँ को राज्य का दायित्व सौंप दिया, जो अलाउद्दीन अहमदशाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके बाद हुमायूँ और निजामशाह गद्दीनशीन हुए। 'कदम राव व कदम' प्रेमगाथा के अनुसार अहमदशाह वहाँ 'बहमनवली' हो गये हैं। निजामशाह की अवस्था राज्यारोहण के अवसर पर केवल आठ वर्ष की थी। उसके

अभिभावकों में महमूद गावाँ का नाम भी लिया जाता है। उसकी मृत्यु के बाद उसका भाई मुहम्मदशाह शासक बना और उसने शत्रुओं का दमन कर राज्य को समृद्ध बनाने में योग दिया। कालांतर में उसे षड्यंत्र द्वारा मार डाला गया। 1518 ई. में यह राज्य बिखरकर नष्ट हो गया। पाँच स्वतंत्र मुस्लिम राज्यों की स्थापना हुई। बरार का इमादशाही, बीजापुर का आदिलशाही, अहमदनगर का निजामशाही, गोलकुण्डा का कुतुबशाही और बीदर की वरीद-शाही। अंत में ये सभी मुगल-साम्राज्य में अंतर्भुत हो गये। आदिलशाही और कुतुबशाही सुल्तान साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यों में रुचि लेकर यश के भागी बने।

सूर-वंश :

शेरशाह द्वारा स्थापित सूर-वंश का अपना प्रथक महत्त्व है। शेरशाह का नाम फरीद था। उसके पिता सासाराम (बिहार) के जागीदार थे, किंतु उसकी शिक्षा-दीक्षा जौनपुर में हुई। उसने एक बार शेर मारने के कारण उसे 'शेर खाँ' की पदवी मिल गयी। फिर बाबर के संपर्क में आकर उसने बंगाल जीतने में उसे बड़ी सहायता पहुँचायी। बाबर की मृत्यु के पश्चात गौड़ देश को अधीन कर लिया। पठानों की सहायता से चौसा के पास हुमायूँ को हराया और 'शेरशाह' की उपाधिग्रहण कर ली। कन्नौज के युद्ध में उसने हुमायूँ को फिर से हरा दिया। हुमायूँ को फारस में पनाह लेनी पड़ी। शेरशाह ने शासन-सुधार की व्यवस्था इस रीति से की, कि उसने सम्राट अकबर तक का पथ-प्रदर्शन किया। शेरशाह की मृत्यु 1545 ई. में हुई। उसके बाद उसका पुत्र जलाल-खाँ (सलीमशाह) उसका उत्तराधिकारी बना। उसे कई विद्रोहों का सामना करना पड़ा और 1554 ई. में उसका देहावसान हो गया। हुमायूँ ने बिगडती हुई दशा का लाभ उठाया। भारत पर आक्रमण कर लाहौर को हस्तगत कर लिया। सूर-वंश के अंतिम सुल्तान सिकंदरशाह केसर हिंद में हार जाने पर हुमायूँ बादशाह बन बैठा।

मुगल-वंश :

तैमुर लंग की पांचवीं पीढ़ी में उत्पन्न जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर वास्तव में तुर्क-वंशी था, मुगल नहीं। मातृकुल के नाते वह चंगेज खाँ का सगा-सम्बन्धी हो सकता था, परंतु मुगलों के प्रति उसमें सद्भाव का अभाव-सा था। संयोगवश वह उन सम्राटों का पूर्व-पुरुष बन गया जिन्हें 'मुगल' कहकर स्मरण किया जाता है। उसके पिता फरगाना के एक छोटे-से राज्य के अधिपति थे। उनकी मृत्यु के समय बाबर बारह वर्ष का बालक था। इसी अवस्था में वह उत्तराधिकारी बना। अपने शत्रुओं का वह दृढ़तापूर्वक सामना करता रहा। इसी बीच उसने समरकंद को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। उजबेग अमीरोंद्वारा अपदस्थ किये जाने पर वह भारत की ओर उन्मुख हुआ और उसने काबुल को जीतकर समरकंद को भी फिर अधिकृत करने की कोशिश की परंतु वह असफल रहा। छोटे-मोटे आक्रमणों द्वारा वह भारत की स्थिति का अध्ययन करता रहा। दिलावर खाँ का आमंत्रण पाकर उसने पानीपत युद्ध में विजय प्राप्त कर ली। दूसरे ही वर्ष राणा सांगा को पराजित कर उसने अपनी स्थिति सुदृढ़ बना ली और चंदेरी दुर्ग पर कब्जा कर लिया। पठानों को पराजित कर उसने अपनी विजय-पताका फहरायी। उसने राज्य-व्यवस्था को सुधारने की योजना भी बनानी चाही किंतु शाहजादे हुमायूँ की रुग्णता के कारण उसकी मनोकामना अधूरी रह गयी। बाबर ने 'बाबरनामा' लिखकर अपनी कुशल लेखनी का परिचय दिया है।

बाबर ने हुमायूँ से वचन लिया था कि वह अपने परिवार के प्रति सद्भावनापूर्ण निष्ठा रखेगा, जिसका पालन वह आजीवन करता रहा। गुजरात के सुल्तान बहादुरशहा ने उसे युद्ध में घसीट लिया और बाद में शेरशाह द्वारा कन्नौज की लड़ाई में पराजित होकर वह फारस भाग गया। शेरशाह की मृत्यु के पश्चात् उसने अपने राज्य को पुन: अधिकार में ले लिया। 1566 ई. में पुस्तकालय की सीढ़ियों से उतरते समय अचानक उसके कानों में आजान की आवाज पड़ी। झुकते ही उसके पाँव फिसल गये और वह नीचे गिर पड़ा। यह आघात प्राणान्तक सिद्ध हुआ। हुमायूँ की मृत्यु के सत्रहवें दिन उसके पुत्र जलालुद्दीन अकबर के नाम 'खुतबा' पढ़ दिया गया। हुमायूँ न केवल साहित्यकारों का सम्मान करता था। अपितु स्वयं भी काव्यरचना करता था। राज्य भार ग्रहण करते समय अकबर तेरह वर्ष का बालक था। उसका बचपन बैरम खां के संरक्षण में व्यतीत हुआ। जिसके समक्ष जौनपुर ही नहीं, विद्रोही पठानों तक को झुकना पड़ा। अकबर ने बैरम खां को दायित्व-मुक्त कर दिया। बंगाल, बिहार और गुजरात को दबाकर उसने कश्मीर पर भी अपना झण्डा फहरा दिया। राज्य विस्तार और आंतरिक शांति और सुव्यवस्था के लिए वह सदा ही सचेष्ट रहा। देश को समृद्ध बनाने के साथ वह सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति के लिए भी यत्नशील रहा। उसके प्रमुख दरबारी 'नवरत्न' के रूप में प्रसिद्ध थे। फैजी, अबुलफजल, बीरबल, बदायूंनी, तानसेन, रहीम आदि दरबार में थे। इनके सहयोग से उसके राज्य की ख्याति दूर तक फैली। वह शिक्षित न होकर भी उदार, सहृदय और व्यवहार-कुशल था। उसका राज्य-काल 1605 ई. तक रहा।

अकबर का उत्तराधिकारी जहाँगीर बना। जिसका बचपन का नाम 'सलीम' था। उसने पिता के विरुद्ध विद्रोह करना चाहा था, किंतु सफल न हो सका। 1627 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी। जहाँगीर ने शेर अफगन की हत्या कराके उसकी पत्नी मूहरून्निसा (नूरजहाँ) को अपने हरम में रख लिया। वह नूरजहाँ अपने जामाता शहरयार को राज्य का उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी, किंतु बादशाह के मरने का समाचार पाकर शहजादा शाहजहाँ दक्षिण से राजधानी की ओर चल पड़ा। शासन-सूत्र संभालने के बाद शाहजहां को बुंदेलों का सामना करना पड़ा। उसे खांजहां लोधी को राज-मार्ग से हटाना पड़ा। उसने दक्षिण की कई सल्तनतों को जीतकर अपने अधीन किया। जिसमें उसे औरंगजेब से भरपूर सहायता मिली। कंधार का आधिपत्य स्थापित करने में उसे असफलता मिली। औरंगजेब दाराशिकोह के प्रति द्वेष भाव रखने लगा था। दारा का हिंदुओं के प्रति सद्भाव भी उसे पसंद नहीं था। औरंगजेब ने अपने भाइयों का अंत कर डाला और 1658 ई. में शाहजहाँ को बंदी बना लिया। अपनी प्यारी बेगम मुमताज महल की मृत्यु के बाद शाहजहां ने यमुना किनारे 'ताजमहल' का निर्माण करवाया था। दारा की मृत्यु के कारण वह खिन्न रहने लगा और पुत्री जहांनारा ही उसके स्नेहाकर्षण का केंद्र रही। उसका कला और साहित्य-प्रेम प्रसिद्ध है, साथ ही वह शूरवीर और कार्यकुशल था।

2.3.2 भक्तिकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ :

भारतीय समाज में वर्णों और जातियों का विशिष्ट स्थान है। समय समय पर कितनी ही मानव मंडलियां इस देश में आती रहीं जिनमें अपने धर्म-विश्वासों, रीति-रस्मों और आचार-विचार पद्धतियों के संस्कार थे। कालांतर में उनमें सामंजस्य की भावना और समन्वय की चेतना लक्षित हो गयी। प्राचीन काल में व्रात्य, आर्य, नाग, यक्ष, देव, दैत्य, असुर, किन्नर, गंधर्व, विद्याधर आदि मानव-मण्डलियाँ समय पाकर देव-योनि तक में

समाहित कर ली गयीं। परवर्ती काल में यही प्रक्रिया शक, हूण, यवन, कम्बोज, तुर्क, पारसी, पठान, मंगोल आदि जातियों के साथ घटित हुई। परंतु पैगंबरी धर्म के अनुयायियों में आस्था-विश्वास, आचार-विचार, और जीवनप्रणाली की कुछ ऐसी विशेषताएं थी। जिनसे आपसी मेल-मिलाप में वह तीव्रता न आ सकी। मुसलमानों ने व्यावहारिक सम्बधों के भेद को प्रकट करने के लिए यहाँ के निवासियों को हिंदू कहा। इस शब्द का प्रथम उल्लेख विजयनगर के राजाओं के पंद्रहवीं शताब्दीं वाले शिलालेख में उपलब्ध है। ईरान के आकेमिनियन बादशहों के अभिलेखों में 'इंद' शब्द का प्रयोग अवश्य मिलता है जो 'हिंदु' (सिंधु) का ईरानी रूप जान पड़ता है। इस्लाम भातृ भाव का संदेश लेकर चला था। उसका द्वार कुछ शर्तों पर सबके लिए खुला था परंतु हिंदुओं के यहां धर्म-परिवर्तन की शास्त्रीय व्यवस्था न थी। उनके संस्कार इसके वपरीत पड़ते थे। इस बीच धर्म परिवर्तन के जो उदाहरण मिलते हैं वे धर्म-प्रेरित न होकर स्वार्थ था बलात्कार के परिणाम थे। पूर्व श्रमण-संस्कृति के प्रचार-प्रसार काल में भी ऐसे प्रश्न थे। किंतु उसके उन्मायकों का विरोध कर्मकाण्डादि व्यावहारिक बातों से अधिक था। कर्मवाद और जन्मान्तर वाद में उनकी आस्था लगभग वैसी ही थी। अपनी कुलीनता की रक्षा की चिंता तत्कालीन हिंदुओं को सताने लगी। उसकी रक्षा के निमित्त वे स्मृतियों और टीकाओं का सहारा लेने लगे थे। कभी कभी विधर्मी तथा विजातीय शासकों द्वारा हिंदू प्रजा के प्रति क्रूर दुर्व्यवहार तक हो जाया करते थे। जिससे आतंकित होकर उन्हें अपने को मुस्लिम प्रजा से भिन्न मानने को बाध्य होना पडता था। इस्लाम का भ्रातृभाव-संदेश यहाँ उतना प्रभाषकारी सिद्ध न हो सका। हिंदू समाज में भी वर्णाश्रम धर्म का उचित पालन नहीं हो पाता था। फलस्वरूप जातियों-उपजातियों की संख्या-वृद्धी हो गयी थी और उनके पारस्परिक व्यवहार में आत्मीयता नहीं थी। वर्ण व्यवस्था में आपसी भेद-भाव बना हुआ था। इब्नबतुता के नुसार दास-प्रथा प्रचलित थी। हिंदू कन्याओं को मुसलमान लोग क्रय करके अपने घरों में रख लिया करते थे। अमीर लोग अपने मनोरंजन के लिए कुलीन नारियों का इस्तमाल करते थे। समाज में बहुविवाह या पुनर्विवाह की प्रथाएं प्रचलित थी। विदेशी पर्यटकों ने तत्कालीन सती-प्रथा का भी विवरण दिया है। स्त्रियों को पुरुषों जैसा स्तर तथा सम्मान प्राप्त न था। परदा प्रथा उन दिनों की आवश्यकता बन गयी थी। स्त्री शिक्षा की व्यवस्था थी। कला-साहित्य के निर्माण में फिर भी स्त्रियों का योगदान रहा करता था। छुआछूत के नियम कठोर थे शुद्र जातियों तक में परस्पर भेदभाव बरता जाने लगा था।

भारतीय मुस्लिम समाज की अवस्था हिंदुओं से अधिक भिन्न नहीं थी। धर्मान्तरित मुसलमानों के हिंदू-संस्कार धर्म-परिवर्तन के साथ ही धुल नहीं गये थे। जो स्वार्थवश धर्म-परिवर्तन के लिए बाध्य हुए थे। आक्रमणकारी मुसलमानों के वंशजों में भी कालांन्तर में सद्भाव और सहिष्णुता के भाव उदित होने लगे। उस समय सुल्तान का पद सर्वापरि था और उलेमा तथा उमरा का स्थान बाद में आता था। इनमें द्वितीय वर्ग में ईरान, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान तथा अरब के मूल निवासियों के नाम लिए जा सकते हैं। जिन्हें क्रमश: शेख, मुगल, पठान और सैयद की संज्ञा दी जाने लगी थी। शेख पाण्डित्य और सुसंस्कृति के लिए प्रसिद्ध थे। वे शिया-संप्रदाय की और उन्मुख थे। तुर्किस्तानवाले मुगल सुन्नी संप्रदाय से सम्बद्ध थे। अफगानी पठान अपने शौर्य, साहस, स्वाभिमान और सीधेपन के लिए प्रसिद्ध थे। खेतिहार, मजदूर, व्यापारी और नौकरी-पेशा

मुसलमानों में भी परस्पर भेदभाव था। मुस्लिम महिलाओं की स्थिति हिंदू स्त्रियों से भिन्न न थी। बहुविवाह की प्रथा थी। मुस्लिम समाज अपने मूल रूप में न रह गया था और उसका एक प्रकार से भारतीयकरण हो गया था। इस काल तक भारत में उपस्थित ईसाइयों का समाज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पारसी तथा यहूदी अपनी सीमाओं में ही सीमित रहे।

दैनिक जीवन, रीति-रस्म, रहन-सहन, पर्व-त्यौहार आदि की दृष्टि से तत्कालीन भारतीय समाज सुविधासम्पन्न और असुविधा-ग्रस्त इन दो वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग में राजा-महाराजा, सुल्तान, अमीर, सामंत और सेठ-साहूकार आते थे। जिनमें मनमाने ढंग से वैभव प्रदर्शन की उल्लासपूर्ण प्रवृत्ति पायी जाती थी। द्वितीय वर्ग में किसान, मजदूर, सैनिक, राज्य-कर्मचारी और घरेलू उद्योग -धंदों में लगी सामान्य जनता थी। समाज में सुव्यवस्था लाने के प्रयत्न होते रहते थे। रुसी व्यापारी आफनेसियन निकितिन के अनुसार बहमानी राज्य के सुयोग्य वजीर महमुद गावां (1405-1481 ई.) के समय शासकीय व्यवस्था प्रशंसनीय थी। भूमि की पैदावार प्रचुर थी। सड़के लूटेरों के आतंक से रहित थीं तथा राजाधानी भव्य नगर के रूप में खुशहाल दिखायी देती थी। पर्तुगाली वारवांसा (1500-1516 ई.) के नुसार जहाँ उमरा और बादशाह महलों में निवास करते थे। वहाँ कुछ लोग गलियों में निर्मित मकानों में रहते थे । जिनके सामने थोड़ी खुली जगह भी रहती थी। शेष जनता के भाग्य में झोंपड़ियों में रहना पड़ता था। मुगलों के शासन काल के विषय में 'पेल्सपार्ट' नामक लेखक ने समाज के भीतर तीन वर्ग माने हैं। श्रमिक, नौकर और दुकानदार। इन्हें कोई स्वेच्छापूर्वक कार्य करने का अवकाश नहीं था। दुकानदारों को अपनी चीजें छिपाकर रखनी पड़ती थी। कहीं पर क्रूर कर्मचारियों की दृष्टि न पड़ जाये। तत्कालीन साधु-समाज पर भी काली छाया मंडराने लगी थी। गोस्वामी तुलसीदास-कृत 'कवितावली' की पंक्तियों से तत्कालीन स्थिति का परिचय मिलता हैं।

'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भली,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सो कहां जाई, का करी।।'

2.3.3 भक्तिकालीन कवियों का सामान्य परिचय

2.3.3.1 नामदेव व्यक्तित्त्व एवं साहित्य का परिचय

जीवन परिचय :

नामदेव महाराष्ट्र के ऐसे संत हैं जिनकी ख्याति भारत के कोने-कोने में व्याप्त थी। नामदेव का जन्म शके 1192 प्रथम संवत्सर कार्तिक शुक्ल 11, रविवार के समय हुआ। महाराष्ट्र के परभणी जिले में नरसी बामणी गाँव में एक दर्जी परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम दामाशेटी और माता का नाम गोपाई था। नामदेव की एक बहन भी थी, जिसका नाम आऊबाई था। नामदेव का विवाह उनकी 9 वर्ष की आयु में ही हो गया था।

पत्नी का नाम राजाई था। उन्हे नारा, विठा, गोंदा ये तीन पुत्र थे।

नामदेव के पिता विठ्ठल-भक्त थे। प्रति वर्ष वे पंढरपुर की वारी करते थे। अत: बचपन से ही नामदेव के मन में विठ्ठल-भक्ति संचरित हो गयी थी। नामदेव का मन गृहस्थी में नहीं लगा। वे पंढरपुर में बसकर ही विठ्ठल की सेवा करने लगे। वहीं ज्ञानेश्वर और उनके भाई-बहिनों से भेंट हुई और उनके संसर्ग से उन्होंने विसोबा खेचर से दीक्षा ली।

नामदेव भक्ति-भावना :

नामदेव पंढरपुर के 'विठ्ठल' की प्रतिमा में ही भगवान को देखते थे। वे विठोबा खेचर के संपर्क में आने के बाद उसे सर्वत्र अनुभव करने लगे। प्रेमभक्ति में ज्ञान का समावेश हो गया। भक्ति गीत की रचना की और जनता जनार्दन को समता और प्रभु भक्ति का पाठ पढ़ाया। संत ज्ञानेश्वर के परलोक गमन के साथ इन्होंने पूरे भारत का भ्रमण किया। उत्तर भारत की यात्रा से लौटकर ज्ञानेश्वर ने आळंदी में समाधि ले ली। उस समय नामदेव अपने परम मित्र के समाधिस्थ हो जाने के कारण वे पंजाब की ओर चले गये। 'घुमान' स्थान पर बहुत समय तक कीर्तन भजन से जनता में भक्ति का संचार करते रहे। 'घुमान' में आज भी नामदेव की मंदिर है। यह स्थान 'गुरुदासपुर' जिले में है। 'घुमान' नामक स्थान को 'गुरुद्वारा बाबा नाम देवजी' भी कहा जाता है। नामदेव के अनेक शिष्य रहे हैं। उनके पंजाबी शिष्यों में विष्णु स्वामी, बाहरेदास, जालतोसुनार, लघा खत्री और केशव कलाधारी आदि। नामदेव ने 80 वर्ष की आयु में 1272 ई. में पंढरपुर के विठ्ठल मंदिर के महाद्वार पर समाधि ले ली। उनके शिष्य परिखा भागवत ने एक अभंग प्रस्तुत किया है-

आषाढ़ शुक्ल एकादशी
नामा विनवी विठ्ठलासी।
आज्ञा व्हावी हो मजसी
समाधि विश्रांति लगी।।

वारकरी संप्रदाय और नामदेव :

नामदेव के पूर्वज पंढरपुर के विठोबा भक्त थे। आषाढ़ और कार्तिक की एकादशी को पंढरपुर की वारी किया करते थे। विठ्ठल की प्रतिमा 28 युग से ईंट पर खड़ी हुई हैं। इसे भागवत धर्म कहा जाता हैं। विठ्ठल के विष्णुरूप होने के कारण इसे वैष्णव-पंथी भी कहा जाता है। भागवत धर्म में मूर्तिपूजा का स्थान है। महाराष्ट्र में भक्ति-प्रधान वारकरी धर्म प्रचलित हो गया। उत्तर में रामानंद द्वारा यह प्रचलित हो गया है।

भक्ति द्राविड़ ऊपजी लाये रामानंद
प्रगट किया कबीर ने सप्तदीप नौखंड।

वारकरी संप्रदाय ने भक्ति को आर्य-द्राविड़ तथा वैदिक-अवैदिक विवाद से मुक्त किया। यह विशुद्ध भक्ति संप्रदाय है । नामदेव ने अपने अनुयायियों को 'रामकृष्ण-हरि' के उच्चार का उपदेश दिया। वारकरी संतों ने अपनी भक्ति-भावना अभंगों और राग - रागिनियों के पदों सें व्यक्त की है। उन्होंने परमात्मा प्राप्ति के लिए

चार सोपान बताए हैं। – 1) ज्ञानमार्ग 2) भक्तिमार्ग 3) योगमार्ग 4) कर्मयोग । नामदेव के गुरु खेचर ज्ञानमार्गी थे, उन्होंने अपने भगवान को सर्वत्र देखा था। हिंदी में उनका पद दिखायी देता है।

'इभे विठ्ठल, उभे विठ्ठल, विठ्ठल बिन संसार नहीं।'

उन्होंने पंढरपुर के विठोबा की आराधना की। विठ्ठल की प्रतिभा को सर्वत्र दिखाया। इतना व्यापक दृष्टिकोन नामदेव का ही था।

वारकरी संप्रदाय में भजन और कीर्तन से भगवान का गुणगान बड़े ही उत्साह से होता है। आषाढ़ और कार्तिक की एकादशी को पंढरपुर में उत्साह का वातावरण होता है। वारकरी संप्रदाय के साथ अन्य जनसमुदाय भी भक्ति में लीन होते हैं। गोपी–चंदन का तिलक लगाना, एकादशी का व्रत रखना, हरि–पाठ वाचन इनका नित्य कर्म रहता है। ज्ञानदेव, एकनाथ और तुकाराम की पुण्य तिथियों पर आळंदी, और देहू की यात्रा की जाती है। यह स्थान पवित्र और समाधि स्थल है। वारकरी संतों में संन्यास आवश्यक नहीं है। इन संतों में नामदेव, चोखामेला, परिखा भागवत, गोरा कुम्हार, एकनाथ, तुकाराम आदि अपना गृहस्थ जीवन व्यतीत करते थे। वारकरी संतों में कर्मकांड के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं हैं। वे 'मन चंगा तो कठोंती में गंगा' के सिद्धांत को मानते थे। यह संप्रदाय समस्त भारत में फैला है। पंजाब के गुरुदासपुर जिले के घोमान नामक स्थान पर आज भी वारकरी संप्रदाय के अनुयायी है।

नामदेव की रचनाएँ :

नामदेव ने अपनी कम आयु में जनता में भक्ति–संचार का कार्य किया। मराठी तथा हिंदी वाणियों में अपने कार्य की सिद्धी कर दी। मराठी **'नामदेवाच्या अभंगांची गाथा'** में संकलित अभंग मिलते हैं। भाषा की प्राचीनता और भाव–धारा का सरलता से नामदेव के अभंग में पहचाने जाते हैं। नामा, विष्णुदासनामा, शिम्पि नामा की छाप अभंगों में मिलती हैं। नामा शिम्पी के अभंग सरल है। भक्तिभावना की तरलता और भाषा–रूप प्राचीन है। विष्णुदासनामा में प्रौढ़ शैली दर्शित है। लोक–काव्य शैली में गोंधळ, डाक, मांगुल, वासुदेव, पिंगला, खेलिया में पंढरीराय, विठोबा के प्रति भाव–प्रवण निवेदन मिलता है। 'खेलिया' में कल्पना का चमत्कार, 'हुम्बरी' में समर्पण की भावना, 'विरहिणी' में आत्मा–परमात्मा की मिलनोत्कंठा है। इनके लोककाव्य में लोक–जीवन में प्रचलित उपमान मिलते हैं।

नामदेव की कृतियाँ मराठी और हिंदी दोनों भाषाओं में प्राप्त होती हैं। डॉ. भगीरथ मिश्र तथा राजानारायण मैर्य ने पुणे विद्यापीठ द्वारा 'संत नामदेव की हिंदी पदावली' सन् 1964 में प्रकाशित की हैं।

क) मराठी गाथा की कृतियाँ :

1) 'नामदेवाची आणि त्यांचे कुटुंबाची वा समकालीन साधुचे अभंगाची गाथा'। (शके सं. 1864 में श्री तुकाराम तात्या द्वारा संपादित) इस में पृष्ठ 645 से 670 तक –

- 'हिंदुस्तानी भाषित अभंग' के अंतर्गत 106 हिंदी पद संकलित हैं ।

- प्रथम आठ पद के पश्चात् 'नानक साहेबाच्या ग्रंथातील हिंदुस्तानी पदें' शीर्षक के अंतर्गत पद संकलित हैं।
- द्वितीय प्रति 'नामदेव की गाथा' है। इसमें 102 हिंदी पद दिये हैं। इसका संपादक कर्ता ह.भ.प.श्री. विष्णु नरसिंह जोग है।
- तृतीय प्रति 'श्री नामदेव महाराज यांच्या अभंगाची गाथा' श्री. त्र्यंबक हरि आपटे द्वारा संकलित हैं। इनमें 102 पद संकलित हैं।
- चतुर्थ प्रति 'नामदेव रायांची सार्थ गाथा' है । इसमें श्री 'गुरुग्रंथसाहब' में संकलित 61 पद दिये हैं।

ख) गुरुग्रंथसाहब परंपरा की कृतियाँ :

'गुरुग्रंथसाहब' में 61 पद मिलते हैं।

- 'पंजाबातील नामदेव' में इसी परंपरा की तीसरी प्रति है। इसके लेखक श्रीशंकर पुरुषोत्तम जोशी है। इसमें भी 61 पद हैं।
- 'शिखांच्या आदि ग्रंथातील नामदेव' यह मराठी ग्रंथ है। इसके संपादक श्री आ. का. प्रियोलकर है। इसमें भी 61 पद हैं, इसका मराठी और अंग्रेजी में भाषांतर हुआ है।

ग) अन्य स्थानों से प्राप्त कृतियाँ :

- परशुराम चतुर्वेदी, वियोगी हरि, विनय मोहन शर्मा आदि ने नामदेव के पद संग्रहित किए हैं ।
- सेंतुल लाइब्रेरी पटियाला की हस्तलिखित पोथियों में नामदेव की वाणी संग्रहित है।
- शिवदयाल की पोथी में 128 पद और 4 साखियाँ हैं ।
- नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की हस्तलिखित में 123 पद और 8 साखियाँ हैं।
- दादूदयाल की वाणी में 50 पद संकलित हैं।
- घोमान (घुमान) की प्रति में 157 पद हैं।

नामदेव के हिंदी पदों में हठयोग की साधना का अधिक प्रभाव है। उत्तर भारत में विदेशी शासकों और विधर्मी लोगों के कारण जन-मन अत्यधिक क्षुब्ध था। हिंदुओं के मंदिरों में जाकर जनता के मन में परमात्मा के प्रति अनास्था जाग्रत की थी। ऐसी स्थिति में संतों को 'पाहन पुजै हरि मिलै' की भावना को जनता के मन से हटाना जरुरी था। निर्गुण ब्रहम की उपासना का प्रचार करना उचित समझा और जनता में परमात्मा हम सबके हृदय में है कि भावना विकसित की।

दार्शनिक पक्ष

1) ज्ञान :

नामदेव वारकरी संप्रदाय के प्रमुख संत थे। विसोबा खेचर ने जब नामदेव को भगवान की व्यापकता की अनुभूति करा दी तब वे विठ्ठल को सर्वत्र देखने लगे। यह भावना अद्वैत शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त के अनुरूप है। शंकराचार्य ने कहा है, सम्यक ज्ञान परमशोधक अग्नि है। ब्रहम और जीव अभिन्न हैं। तत्विक दृष्टि से जगत को भ्रम अथवा माया माना है। हिंदी पदों में अद्वैत का प्रधान है–

'समें घट राम बोलें रामा बोलें राम बिना को बोलेरे।
एकल माटी कंजर चीटींभाजन हैं बहु नानारे।
अस्थापर जंगम कीट पतंगम घटि रामसमानारे।
एकल चिंता राखु अनंता अडर तसहु सब आसारे।
प्रणवें नामा भाए निहकामा को ठाकुर कोदासारे।।'

नामदेव पर नाथ–मत का प्रभाव पड़ा है। मराठी अभंगों में सगुण भाव ही प्रधान है। निर्गुण भाव में ज्ञान की प्रधानता रहती है। सगुण भाव में राग–तत्त्व होने के कारण भक्ति सरस होती है।

2) माया :

नामदेव ने शंकराचार्य के नुसार संसार को मायाजाल कहकर संबोधित किया है–

''रे मन पंछीयान परसि पिंजरे संसार मायाजाल रे।
एक दिन में तीन फेरा तोहि सदा झंपें काल रे।
धन जोबन रूप देखि करि गरयौ कहा संसार रे।
कुम्भ काँचों नीर भरियों बिनु सन्ता नहिं पार रे।।''

3) भक्ति :

नामदेव के पदों में निर्गुण–सगुण दोनों के भक्तिपद मिलते हैं। मराठी अभंग भक्ति रस से पूर्ण है। नामदेव को सख्य भक्ति अत्यंत प्रिय है। नामदेव मुक्ति की कामना नहीं करते, जन्म–जन्म अपने विठ्ठल का ही नामस्मरण करते हैं। अपने राम के प्रति नामदेव की मिलन उत्कंठा दिखायी देती है –

नामदेव भक्त की मनोदशा का चित्रण करते समय कहते हैं – बछडे से दूर रहनेवाली गाय और पानी से दूर रहनेवाली मछली की तरह विठ्ठल से दूर रहनेवाले भक्त की दशा होती है। नामदेव प्रेम की व्याकुलता स्पष्ट करते हुए कहते हैं –

''मोहि लागत तालाबोली, बछरे बिनु गाइ अकेली।
पाणीयां बिनु मीन तलफें। ऐसे राम नामा बिनु बापुरे।''

''जैसे दिखें हेत परनारी
ऐसे नामें प्रीति मुरारी।''

परकिया में प्रीति की विव्हलता दिखायी देती है। संप्रदायी संत कवियों ने राधा और गोपियों की कृष्ण के प्रति जो प्रीति दर्शायी है, वह इसमें आती है।

नामदेव ने कांता-भाव से अपने राम को रिझाने का प्रयास किया है।

''मैं बोरी मेरी नाम राम मतारु।
रचि रचि ताकउ करउ सिंगारु''

नामदेव ने समस्त विश्व में राम, हरि, केशव, बीठुला, माधव, गोविंद आदि को एक माना है। उन्होंने 'जल तरंग न्याय' के नुसार निर्गुण-सगुण भेद को मिटाया है।

4) उपासना :

उपासना परमात्मा के पास जाने से ही मिलती है। नाम-स्मरण, चिंतन, ज्ञान के द्वारा ही यह साधित होता है। नामदेव नाथ-पंथ में शिष्यता ग्रहण करने से पूर्व सगुणोपासक थे। विठोबा की धूप, दीप, नैवेद्य आदि से उपासना करते थे। नाथ-पंथ में दीक्षित होने पर उनकी उपासना शुद्ध मानसिक भाव से होने लगी। वे अपने ही अंदर व्याप्त ब्रहम के दर्शन करने लगे। हठयोग की साधना में लीन रहने लगे। योग - साधना में 'सुन्न साधना' का महत्त्व है। गौरव शतक में कहा है।

''षटचक्रं षोडसाधारं त्रिलक्ष व्योमपंचक्रम।
स्वदेहे येन जानन्तिकथं सिद्धयन्ति योगिनः।।''

यद्यपि नामदेव ने योग-साधना से पावन-ज्योति के दर्शन किये हैं। उन्होंने नामस्मरण का मार्ग बताया है। सतत नामस्मरण करन से मन एकतानता अनुभव करता है। यही भाव समाधि है। योगी कुंडलिनी - योग के द्वारा यह साधता है। नामदेव जनमानस के लिए कहते हैं -

''हरि नांव हीरा हरि नांव हीरा, हरिनांव लेत मिटें सब पीरा।
राम सो धन ताको कहा अब थोरो, अठसिधि नविनिधि करत निहोरो।
पंडित होइ तों वेद बखानें, मूरति नामदेव राम हो जानें।''

नामदेव ने नाम-स्मरण रूपी सहज योग का महत्त्व अपने पदों प्रतिपादित किया है।

नामदेव ने हिंदी पदों में निर्गुण भाव की प्रधानता रखी है। वे भगवान का नाम - स्मरण करते समय नृत्य का सहारा लेते हैं। नृत्य पाँव से नहीं होता, मन से होता है। यही उनकी धारणा है।

नाच रे मन राम के आगे।
ज्ञान विचारिजोग वैरागे।।

नाचीं ब्रहमा नाचें इन्द।
सहस कला नाचें रवि चन्द।। 1।।
राम के आगे संकर नाचें।
काल विकाल अकालदिं नाचें ।। 2।।
नारद नाचें दोइ कर जोडि।
सुर नाचें तैंतीसु कोटि ।। 3।।
भगत नामदेव मनहिं नचाऊँ।
मन के नचाये परम पद पाऊँ ।। 4।।

5) रहस्यात्मक प्रवृत्ति :

रहस्यवादी कवि परमात्मा को चर-अचर में भी पाते हैं। नामदेव इस पर कहते हैं -

'जित देखै तित रामा ही रामा'

नामदेव का रहस्यवाद सर्वात्मवाद कहा जा सकता है। इसमें जड़-चेतन और समस्त ब्रहमांड में एक ही परम तत्त्व दिखायी देता है।

सामाजिक सुधार :

नामदेव वारकरी पंथ के थे। अपनी भक्ति मार्ग का सहारा लेते हुए समाज में फैले ऊँच-नीच का भेदभाव कम करने का प्रयास उन्होंने किया है । जाति भेद मिटाने के लिए उन्होंने भजन-कीर्तन का प्रचार किया। 'भेदभाव भेद भ्रम है, अमंगल है' इस भावना को समाज में फैलाने की उनकी कोशिश है। निम्न जाति में होनेवाली हीनता की भावना दूर करने का प्रयत्न उन्होंने किया। हरि-कीर्तन में सभी जाति के लोग उसमें सम्मिलित होते थे। यही नामदेव ने लोगों के मन में परस्पर प्रेम भरने का प्रयास किया। नामदेव ने भगवान के नामों का समान भाव से स्मरण कराया उन्होंने अपने सभी पदों में विठ्ठल, राम, हरि, गोपाल, केशव, कृष्ण सभी का एकरूप से प्रेमभाव से स्मरण किया है । समाज में पाखंडियों से दूर रहने का उपदेश दिया। वे कहते हैं -

'पाखंडी भगति राम नहीं रीझें।'

उन्होंने लोगों को सचेत करते हुए उत्तर भारत में निर्गुण भावना का प्रचार किया। पूजा, माला, बाह्य आडंबरों का निषेध एवं प्रतिमा पूजन का खंडन किया। कर्मकाण्ड, अंधश्रद्धा, लोकभ्रम आदि समाज में फैली गलत प्रवृत्तियों का विरोध किया। तप, तीर्थ, अग्निसेवन, अश्वमेध-यज्ञ, दान आदि का भी विरोध किया। नामदेव की समाज-सेवा तीन आयामों पर आधारित है। जाति-पाँति का निषेध, हरि-कीर्तन के माध्यम से सामाजिक एकता साध्य करने का प्रयत्न, बाह्यंडम्बर का निषेध एवं हृदय-शुद्धता का आग्रह है।

नामदेव की भाषाशैली :

भावपक्ष :

नामदेव के हिंदी पदों में भक्तिरस की प्रधानता है। श्रृंगार के साथ कांताभाव से राम की कामना की है। मराठी अभंगों और पदों में शास्त्रोक्त सभी रसों का प्रयोग किया है।

कलापक्ष :

नामदेव ने मराठी अभंगों और पदों में 'आरती', 'अभंग' आदि छंदों का प्रयोग किया है। नामदेव के हिंदी पदों में संगीत की विभिन्न राग-रागिनियों का प्रयोग उपलब्ध होता है। आसावरी, तिलंग, गुजरी, कानडा, पानासरी, प्रभाती, भैरवी, मल्हार, रामकली, सारंग, बिलाबल, तोडी, मार, सोरटी, भालीगौडा आदि राग-रागिनियाँ हैं।

भाषा :

नामदेव के हिंदी पद 'गुरुग्रंथसाहब' और मराठी के पद 'नामदेव ची गाथा' तथा अन्य मराठी संग्रहों में संकलित हैं। उनके पदों में भाषा में संस्कृत वर्णमाला के सभी स्वर और व्यंजन विद्यमान हैं । नामदेव की भाषा में कृत्रिमता नहीं मिलती । जिस प्रांत में जिन व्यक्तियों के संपर्क में वे आये, उनके शब्दों को ग्रहण किया। खडीबोली, ब्रज, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी, पंजाबी का समावेश किया है। मातृभाषा की झलक स्वाभाविकता से दिखायी देती है। जनता की भाषा का रूप आ गया है। इनकी भाषा में खडीबोली के उस रूप का आभास मिलता है।

2.3.3.2 रैदास व्यक्तित्त्व एवं साहित्य का परिचय :

जन्म :

मध्ययुगीन साधकों में 'रैदास' अथवा 'रविदास' का विशिष्ट स्थान है। संत रैदास समाज में निम्न, उपेक्षित, हीन मानी जाने वाली चर्मकार जाति से थे। रैदास का जन्म रविवार, माघ पूर्णिमा संवत् 1433 काशी में हुआ। इनके पिता रघु और माता का नाम घुरबिनिया बनारस के निकट मांडूर नामक गाँव में रहते थे। पश्तैनी चर्मकार का कार्य कर आजीविका कमाते थे।

'नीचे से प्रभु आच क्यों है।
रैदास चमारा।।'

रविदास बड़े हुए तो इनका मन कार्य-व्यापार की अपेक्षा साधु-संगति में अधिक रमता था । पिता ने तंग आकर इन्हें घर से अलग कर दिया। अत: रविदास घर के पिछवाड़े झोंपड़ी डालकर पत्नी सहित रहने लगे। उनके आध्यात्मिक संस्कार माता-पिता एवं सामाजिक परिवेश के द्वारा ही गहन और पुष्ट हुए थे।

व्यक्तित्त्व :

रैदास स्वामी रामानंद के शिष्य मंडली के महत्त्वपूर्ण सदस्य थे। प्रारंभ में ही रैदास बहुत परोपकारी तथा

दयालू थे और दूसरों की सहायता करना उनका स्वभाव बन गया था। रैदास अनपढ़ थे किंतु संत साहित्य के ग्रंथों और 'गुरु ग्रंथ साहब' में इनके पद पाए जाते हैं।

रैदास वचन बद्धता में माहिर थे। एक बार गंगास्नान के लिए आग्रह किया। तो उन्होंने कहा ''गंगा स्नान के लिए मैं आवश्य चलता किंतु एक व्यक्ति को आज ही जूतें बनवाकर देने का मैंने वचन दे रखा है। मैं जूते नहीं दे सका तो वचन भंग होगा मन यहाँ लगा रहेगा तो पुण्य कैसे मिलेगा? मन सही है तो इसी कटौती के जल से ही गंगा स्नान का पुण्य प्राप्त हो सकता है। कहा जाता है की, इस प्रसंग के बाद ही कहावत प्रचलित हो गयी की, 'मन चंगा तो कटौती में गंगा।'

शिक्षा :

रैदास ने ऊँच-नीच की भावना तथा ईश्वर-भक्ति के नाम पर किए जाने वाले विवाद को सारहीन तथा निरर्थक बताया। और सबको परस्पर मिल जुलकर प्रेम पूर्वक रहने का उपदेश दिया। वे स्वयं मधुर तथा भक्तिपूर्ण भजनों की रचना करते थे। उनका विश्वास था की, राम, कृष्ण, करीम, राघव आदि सब एक ही परमेश्वर के विविध नाम हैं। वेद, कुराण, पुराण आदि ग्रंथों में एक ही परमेश्वर का गुणगान किया गया है।

''कुराण, करीम, राम, हरि, राघव, जबलग एकन पेखा।
वेद, कतेब, कुरान, पुरातन, सहज एक नहिं देखा।''

उनका विश्वास था की ईश्वर की भक्ति के लिए सदाचार, परहित-भावना तथा सद्व्यवहार का पालन करना अत्यावश्य है। अभिमान त्यागकर दूसरों के साथ व्यवहार करने और विनम्रता तथा शिष्टता के गुणों का विकास करने पर उन्होंने बहुत बल दिया। अपने भजन में उन्होंने कहा है

''कह रैदास तेरी भगति दूरि है, भागबड़े सोपावें।
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलकर अवेंद चुनि खावें।''

उनके विचारों का आशय यही है कि ईश्वर की भक्ति बड़े भाग्य से प्राप्त होती है। अभिमान शून्य रहकर काम करनेवाला व्यक्ति जीवन में सफल रहता है। जैसे की विशालकाय हाथी शक्कर के कणों को चुनने में असमर्थ रहता है, जबकि लघु शरीर की ''पिपीलिका इन कणों को सहृलता पूर्वक चुन लेती है।'' इसी प्रकार अभिमान तथा बहुवचन का भाव त्यागकर विनम्रतापूर्वक आचरण करनेवाला मनुष्य ही ईश्वर का भक्त हो सकता है।

सत्संग :

रैदास की बचपन से ही सस्तंग के प्रति तीव्र अभिरुचि थी। वे रामजानकी की मूर्ति बनावाकर पूजन करते थे। वे परम संतोषी और उदार व्यक्ति थे। वे अपने बनाए हुए जूतें साधुसंतों में बाँट दिया करते। इनकी विरक्ति के संबंध में एक प्रसंग मिलता है की, एक बार किसी महात्मा ने उन्हें 'पारस' पत्थर दिया। जिसका उपयोग उसने बताया। पहले तो संत रैदास ने ही उसका देना ही अस्वीकार कर दिया। किंतु बार-बार आग्रह करने पर उन्होंने ग्रहण कर लिया और अपने छप्पर में खोंस देने के लिए कहा तेरह दिन के बाद लौटकर उक्त साधु ने जब 'पारस' पत्थर के बारे

में पूछा तो संत रैदास का उत्तर था कि, जहाँ रखा होगा वहीं से उठालों। सचमुच 'पारस' पत्थर वहीं पड़ा मिला।

सत्य :

संत रैदास ने सत्य को अनुपम कहा वह सर्वत्र एक रस है जिस प्रकार जल में तरंगे हैं उसी प्रकार सारा विश्व उसमें लक्षित होता है। वह नित्य, निराकार तथा सबके भीतर विद्यमान है। सत्य का अनुभव करने के लिए साधक को संसार के प्रति अनासक्त होना पड़ेगा। संत रैदास के अनुसार प्रेम मूलक भक्ति के लिए अहंकार की निवृत्ति आवश्यक है। भक्ति और अहंकार एक साथ संभव नहीं है। जब तक साधक अपने साध्य के चरणों में अपना स्वर्वस्व अर्पण नहीं करता तब तक उसे लक्ष्य की सिद्धि नहीं हो सकती।

साधना :

संत रैदास, मध्ययुगीन इतिहास के संक्रमण काल में हुए थे। ब्राहमणों की पाशाविक मनोवृत्ति से दलित और उपेक्षित पशुवत जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य थे। यह सब रैदास की मानसिकता को उद्वेलित करता था। उनकी समन्वय वादी चेतना इसीका परिणाम है। उनकी स्वानुभूति मयी चेतना ने भारतीय समाज में जाग्रति का संचार किया और उनके मौलिक चिंतन ने शोषित और उपेक्षित शुद्रों में आत्मविश्वास का संचार किया। परिणामत: वह ब्राह्मणवाद की प्रभुता के सामने साहसपूर्वक अपने अस्तित्व की घोषणा करने में सक्षम हो गये। संत रैदास ने मानवता की सेवा में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। संत रैदास के मन में इस्लाम के लिए भी आस्था का समान भाव था। कबीर की वाणी में जहाँ आक्रोश की अभिव्यक्ति है, वहीं दूसरी ओर संत रैदास की रचनात्मक दृष्टि दोनों धर्मों को समान भाव से मानवता के मंच पर लाती है। संत रैदास वस्तुत: मानव धर्म के संस्थापक थे।

धर्म :

वर्णाश्रम धर्म को समूल नष्ट करने का संकल्प, कुल और जाति की श्रेष्ठता की मिथ्या सिद्धि संत रैदास द्वारा अपनाये गये समन्वयवादी मानवधर्म का ही एक अंग है। जिसे उन्होंने मानवतावादी समाज के रूप में संकल्पित किया था।

'जन्म जात मत पूछिये, का जात अस पात
रविदास पुत संभ प्रण के कोउ नहि जातकुजाता'

भक्ति :

उपनिषदों से लेकर महर्षि नारद और शाण्डिल्य तक ने भक्ति तत्त्व की अनेक प्रकार से व्याख्या की है। रैदास ने भक्ति में रागात्मिक वृत्ति को ही महत्त्व दिया है। नाम मार्ग और प्रेम भक्ति उनकी अष्टांग साधना पद्धति उनकी स्वतंत्र व स्वच्छंद चेतना का प्रवाह है। यह साधना पूर्णत: मौलिक है।

समाज पर प्रभाव :

रैदास की वाणी भक्ति की सच्ची भावना, समाज के व्यापक हित की कामना, मानव प्रेम से ओत-

प्रोत होती थी। इसीलिए उनकी शिक्षाओं का श्रोताओं के मन पर गहरा प्रभाव पड़ता था। उनके भजनों तथा उपदेशों से लोगों को ऐसी शिक्षा प्राप्त होती थी जिससे उनकी शंकाओं का संतोषजनक समाधान होता था और लोग स्वत: उनके अनुयायी बन जाते थे। उनकी वाणी का इतना व्यापक प्रभाव पडा की, समाज के सभी वर्गों के लोग उनके प्रति श्रद्धालु बन गए। काहा जाता है कि, मीराँबाई उनकी भक्ति-भावना से बहुत प्रभावित हुअी और उनकी शिष्या बन गई थी।

''वर्णाश्र अभिमान तजि, पद रज बंद हिजासुकि।
संदेह-ग्रंथि खंडन-निपण, बाणि विपुल रैदास कि।''

रचनाएँ :

रैदास अनपढ़ कहे जाते हैं । संत मत के विभिन्न संग्रहों में उनकी रचनाएँ संकलित मिलती हैं । राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों के रूप में भी उनकी रचनाएँ मिलती हैं। रैदास की रचनाओं का एक संग्रह 'बेलवेडिर' प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त इनके पद 'गुरु ग्रंथ साहिब' में भी संकलित मिलते हैं। दोनों प्रकार के पदों की भाषा में बहुत अंतर है। तथापि प्राचीनता के कारण 'गुरु ग्रंथ साहब' में संग्रहित पदों को प्रामाणिक मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। रैदास के कुछ पदों पर अरबी और फारसी का प्रभाव परिलक्षित होता है। रैदास के अनपढ़ और विदेशी भाषाओं से अनभिज्ञ होने के कारण ऐसे पदों की प्रमाणिकता में संदेह होने लगता है। अत: रैदास के पदों पर अरबी, फारसी के प्रभाव का अधिक संभाव्य कारण उनका लोक प्रचलित होना ही प्रतित होता है।

रैदास मूलत: संत थे। फलत: कबीर की भाँति उनके लिए भी निर्गुण ब्रहम अनुभूति जिज्ञासा का विषय है। कभी वे उसकी सत्ता और स्वरूप की अभिव्यक्ति में अपनी असमर्थता स्वीकार करते हैं। तो अन्यत्र उसे सुनिश्चित रूप देने के लिए उन्होंने ईश्वर के समस्त रूपों में ऐक्य और अभिन्नता के दर्शन भी किए हैं। मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा आदि बाह्य विधानों का विरोध कर उन्होंने आंतरिक साधना पर बल दिया है । अपने भाव और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए सरल व्यावहारिक ब्रजभाषा को अपनाया है। जिस में अवधी, राजस्थानी, खडीबोली और उर्दू, फारसी के शब्दों का भी मिश्रण है। उपमा तथा रूपक अलंकार कवि को विशेष प्रिय रहे हैं। उनकी काव्यशैली के निम्न उदा. प्रसिद्ध है

''अब कैसे छुटें राम, नाम रट लागो
प्रभुजी तुम चंदन हम पानी, जाकें अंग अंग बस समानि
प्रभुजी तुम वन हम बनबोरा, जैसे चितवन चंद चितेरा
प्रभुजी तुम दीपक हम बाति, जाकि ज्योति दिन राति
प्रभुजी तुम मोती हम धागा, जैसे सोने मिलत सुहागा
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा, ऐसे भक्ति को रैदासा।''

महत्त्व :

आज भी रैदास के उपदेश समाज के कल्याण तथा उत्थान के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि विचारों की श्रेष्ठता, समाज हित की भावना से प्रेरित कार्य तथा सद्व्यवहार जैसे गुण ही मनुष्य को महान बनाने में सहायक होते हैं। इन्हीं गुणों के कारण संत रैदास को अपने समय के समाज में अत्यधिक सम्मान मिला और इसी कारण आज भी लोग इन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं। संत कवि रैदास उन महान संतों में अग्रणी थे जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इनकी रचनाओं की विशेषता लोकवाणी का अद्भुत प्रयोग रहा। जिससे जनमानस पर इनका अमिट प्रभाव पडता है।

मधुर एवं सहज संत रैदास की वाणी ज्ञानाश्रयी होते हुए भी ज्ञानाश्रयी एवं प्रेमाश्रयी शाखाओं के मध्य सेतु की तरह है। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी रैदास उच्च कोटि के विरक्त संत थे। उन्होंने समता और सदाचार पर बहुत बल दिया। वे खंडन-मंडन में विश्वास नहीं करते थे। सत्य को शुद्ध रूप में प्रस्तुत करना ही उनका ध्येय था। रैदास का प्रभाव आज भी भारत में दूर-दूर तक फैला हुआ है। इस मत के अनुयायी रैदासीयाँ, रविदासी कहलाते हैं।

रैदास की विचारधारा और सिद्धान्त को संत मत की परंपरा के अनुरूप ही हैं। उनका सत्यपूर्ण ज्ञान में विश्वास था। उन्होंने भक्ति के लिए परम वैराग्य अनिवार्य माना। परम तत्त्व सत्य है, जो अर्निवचनीय है। यह परमतत्त्व एक रस है। तथा जड़ और चेतन में समान रूप से स्थित है वो अक्षर और अविनाश्वर है और जिवात्मा के रूप में प्रत्येक जीव में उपस्थित है। संत रैदास की साधना पद्धति का क्रमिक विवेचन नहीं मिलता है। जहाँ तहाँ प्रसंगवश संकेतों के रूप में प्राप्त होता है। विवेचकों ने रैदास की साधना, में 'अष्टांग' योग आदि को खोज निकाला है। संत रैदास अपने समय के प्रसिद्ध महात्मा थे। कबीर ने रविदास को संत कहकर उनका महत्त्व स्वीकार किया है । इसके अतिरिक्त नाभादास, प्रियादास, मीरा आदि ने रैदास का सम्मान के साथ स्मरण किया है। संत रैदास ने पंथ भी चलाया जो रैदासी पंथ के नाम से प्रसिद्ध है। इस मत के अनुयायी पंजाब, गुजरात, उत्तरप्रदेश आदि में पाए जाते हैं।

2.3.3.3 नंददास : व्यक्तित्त्व एवं साहित्य का परिचय

जीवन परिचय :

पुष्टि संप्रदाय में प्रवेश के अनन्तर नंददास गोकुल और श्रीकृष्ण लीला स्थलियों में रहते थे। नंददास का जन्म सम्वत् 1560 वि. में रामपुर में हुआ। यह ग्राम ब्रज मथुरा से पूर्व दिशा में है। नंददास ने अपने ग्राम रामपुर में पुष्टि संप्रदाय में दीक्षा ग्रहण कर ली। 'भक्तमाल' में नंददास को 'सकल सुकुल' कहा गया है। वे उच्च कुल के ब्राह्मण थे। नंददास के संपूर्ण काव्य में श्रीकृष्ण ही उनके इष्टदेव थे। गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी ने नंददास को पुष्टि संप्रदाय में दीक्षित किया था। नंददास के पिता का नाम जीवाराम था। नंददास की पत्नी का नाम कमला था, उनके पुत्र का नाम कृष्णदास था।

नंददास संस्कृत के ज्ञानी थे। उन्हें काव्य रचना के लिए सूरदास से प्रेरणाएँ मिलती रहीं। उन्होंने लौकिक

बातों का त्याग कर दिया। वे कीर्तन सेवा करने लगे तथा शीघ्र ही अष्टछाप के प्रमुख भक्तों में उनकी गणना होने लगी। वे रसिक स्वभाव के भक्त थे, सौंदर्य प्रिय थे। कृष्ण की प्रेमभक्ति के आनंद में निमग्न रहते थे। उनके काव्य में इन्हीं गुणों की अभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं। इस प्रकार कृष्ण-भक्ति को आत्मसात किया। संवत् 1641 में मानसी गंगा पर उनके जीवन की समाप्ति हुई।

कृतियाँ :

नंददास की कृतियों में प्रत्येक भाव सरणि का क्रमबद्ध परिचय देकर उसके प्रमुख आधार को स्वतंत्र रूप से प्रकाश में लाना जरुरी है। नन्ददास द्वारा रचित पन्द्रह ग्रंथों से उनकी विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं - अनेकार्थ मंजरी, मानमंजरी, रूपमंजरी विरहमंजरी, प्रेम बारहखडी, श्यामसगाई, सुदमाचरित, रूक्मिणी मंगल, भँवरगीत, रासपंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी, दशमस्कन्धभाषा, गोवर्धनलीला आदि।

अनेकार्थ मंजरी :

कवि ईश्वर की वंदना और उसका महत्त्वगान करता है। इसका उद्देश्य शब्दों के अर्थ लिखना है। 117 दोहों में 113 शब्दों के अनेकार्थ लिखे हैं। 'गों' शब्द से आरंभ तथा 'स्नेह' शब्द से ग्रंथ का अंत किया है। यह पर्यायवाची कोश है।

अमरकोश के आधार पर शब्दों के अनेक अर्थ दिए हैं । इन अनेक अर्थों के साथ अनेकार्थ भाषा के शब्दार्थों का अवलोकन किया है। अमरकोश के साथ साथ, शाश्वत कृत 'अनेकार्थ समुच्चय' का भी आधार उल्लेखनीय है। अनेकार्थ समुच्चय में 'गोत्र' शब्द के अर्थ इस प्रकार दिए हैं। 'नाम गोत्रं कुलं गोत्रं गोत्रस्य धरणीधर'

जबकि अमर कोश में लिखा है : 'गोत्रन्तु नाम्निच'

'अनेकार्थ समुच्चय' में लिखा है : 'गोत्र नाम को कहत कवि, गोत्र सेल सुनियंत।

गोत्र बंधु सो धन्य जहं विद्यायुत गिनियंत।।'

इससे स्पष्ट होता है कि शब्दार्थों को लिखने के लिए नंददास ने अमर कोश के साथ-साथ अनेकार्थ समुच्चय' का भी आश्रय लिया है।

कवि ने दोहे की प्रथम पंक्ति में शब्द के विभिन्न अर्थ दिए हैं । द्वितीय पंक्ति में शेष अर्थ दिए हैं। अनेकार्थ मंजरी की रचना किसी एक ग्रंथ के आधार पर नहीं की है। गृहीत शब्द के अर्थ को लिखने का प्रयास किया है। कवि ने छंद के आग्रह अथवा अपनी स्वतंत्र प्रवृत्ति के नुसार किसी शब्द के सभी ज्ञात अर्थों को स्थान दिया है। शब्द कोश ज्ञान और हरि-भक्ति की धाराओं के संगम में, संस्कृत न जानने वाले व्यक्तियों को अवगाहन कराने का प्रयोजन है।

श्यामसगाई :

श्याम सगाई रोला-दोहा से युक्त मिश्रित छंदों में लिखी एक छोटी सी रचना है। इसमें राधा और कृष्ण की सगाई का वर्णन है। राधा का तन शिथिल हो गया और सुधि आने पर वह 'श्याम' ही रटने लगी। सखियाँ

राधा को घर ले आई। कीर्ति से कहलाया कि उसे साँप ने काटा है। राधा को साँप द्वारा डस जाने और श्रीकृष्ण द्वारा उसके विष हरण का प्रसंग सूर सागर में मिलता है। श्याम सगाई और सूर सागर के उक्त विष हरण प्रसंगों में समानता मिलती है।

'इक दिन राधे कुँवरि श्याम घर खेलनि आई'।
'खेलन के मिस कुँवरि राधिका नंद महरि के आई'।

इसी प्रकार दोनों में समानता से ही उल्लेख मिलता है। नंददास कथा की सम्बद्धता की योजना करने में पटु हैं। कथा के प्रसंग जितने स्वाभाविक और साधारण है, उतनी ही सरल और अकृत्रिम भाषा-शैली को अपनाया है। पुष्टि संप्रदाय में राधा को स्वकीया माना है। 'श्याम सगाई' की रचना भी इसी भावना के परिणामस्वरूप हुई है।

नाममाला :

नाममाला कोश ग्रंथ है। इसमें संस्कृत न जानने वालों के लिए अमर कोश के आधार पर ग्रंथ रचना की है। दोंहों में एक-एक शब्द के अनेक पर्याय दिए है। शब्द के अनेक पर्याय दिए है। शब्द के पर्याय अंतिम दोहे या दूसरी पंक्ति में दिए हैं।

'अहंकार मद दर्प मुनि गर्व स्मय अभिमान।
मान राधिका कुंवरि को सबको करु कव्वान।।'

'मेघ', 'धनुष' और 'प्रत्यंचा' शब्द ऐसे हैं जिनके केवल नाम ही दिए हैं। उनका कथा से कोई संबंध नहीं है। कवि ने शब्दों के नाम-प्रकाशन के साथ-साथ ग्रंथ में राधा के मान की कथा भी दी है। सूरसागर में भी राधा के मान का वर्णन मिलता है। एक 'मान-लीला' तथा 'दंपति-विहार' के रूप में दूसरा 'मध्यम मान' के रूप में और तीसरा 'बड़ी मान - लीला' के रूप में मिलता है। इनमें से 'मध्यम मान' और नंददास कृत नाममाला में उल्लेखित मान की कथा में अनेक समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

नाममाला की कथा कलात्मक एवं सजीव है। वस्तुत: शब्दों के पर्याय-प्रकाशन जैसे शुष्क पथ पर कवि ने लालित्य और रमणीयता की जिस धारा को प्रवाहित किया। वह नंददास की कुशलता और कवित्व शक्ति की द्योतक है। ज्ञान और कला की उसकी समन्वयात्मक प्रवृत्ति की भी प्रतीक है।

रसमंजरी :

कवि ने रसमंजरी की रचना संस्कृत में की है। इसमें श्रीकृष्ण की वंदना की गई है। संसार में जो कुछ भी रूप, प्रेम और आनंद रस है वह श्रीकृष्ण का ही है। रसमंजरी में नायक-नायिका भेद का वर्णन किया है। वह उक्त भेद का वर्णन 'रसमंजरी' के नुसार करता है। नायक-नायिका भेद 'रसमंजरी' नाम की रचना केवल एक ही उपलब्ध होती है।

कवि ने प्रेम-तत्त्व जानने के लिए नायक-नायिका भेद लिखा है । प्रेम से तात्पर्य श्रीकृष्ण-प्रेम से है। इस में परम प्रेम से भरा हुआ नख शिख वर्णन है। नायिकाओं के आलंबन, विभाव और भेदोपभेदों का वर्णन मिलता है। कवि का भक्त हृदय भी प्रत्येक वर्णन में झाँकता हुआ दृष्टिगोचर होता है। रसमंजरी को पढ़ने के उपरान्त भक्त के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति प्रीति की वृद्धि दिखायी देती है।

'इहि विधि यह रसमंजरी, कही जयामति नंद।
बढ़त पढ़त अति, योप, चित, रसमय सुख को कंद।।'

ग्रंथ के आरंभ में ही नंदकुमार क़ा परिचय मिलता है। अंत में इसी रासमय नंदकुमार से प्रसुत, सुखानुभूति की अवस्था तक उसे पहुँचाने का प्रयत्न किया है।

इस प्रकार भक्ति और रीति भावनाओं का इस ग्रंथ में सराहनीय समन्वय होता है। लोकानुरक्त व्यक्तियों के लिए जितनी ही मनोरंजन की सामग्री निहित है। भक्तजनों के लिए ईश्वर प्रेमानुभुतिप्रद ज्ञात होती है।

रूपमंजरी :

रूपमंजरी नंददास की स्वतंत्र रचना है। कवि ने एक कथा के माध्यम से अपने सिद्धान्तों का प्रकाशन किया है। रूपमंजरी ग्रंथ में श्रीकृष्ण ही परमात्मा तत्त्व है। रूप प्रेम का मार्ग ही उनके निकट पहुँचने का मार्ग है। रूपमंजरी का मार्ग पथिक है और इन्दुमती मार्गदर्शक है। ईश्वर श्रीकृष्ण को प्राप्त करना लक्ष्य है। सांसारिक आर्कषण रूप लौकिक पति ही सबसे बड़ी बाधा है। उसे प्राप्त करने के लिए उपपति रस की योजना की गई है। और इन्दुमती गुरु। रूपमंजरी का चित्त भगवान की ओर आकर्षित होता है। प्रेमिका का चित्त उपपति के प्रति आकर्षित होता है। कलियुग में भगवान के प्रत्यक्ष दर्शन तो नहीं हो सकते हैं । उनके साथ प्रेम द्वारा भावात्मक संकेत प्राप्त किया जा सकता है। भगवान रूपी फल की प्राप्ति तभी हो सकती है जब वह स्वयं आने की कृपा करें। रूपमंजरी को लौकिक विषयों का परित्याग किया है। लौकिक श्रृंगार वर्णनों के मूल में अलौकिक भावधारा को बड़ी पटुता से प्रवाहित किया है। इन्दुमती रूपमंजरी के लिए दो बार श्रीकृष्ण को करुण स्वरों में संबोधित करती है। यहीं पर गुरु-कृपा, सत्संगति तथा भगवानुग्रह तीनों कृपा धाराओं की त्रिवेणी है। भक्त रूप रूपमंजरी को जब चाहे अवगाहन करने का अवसर प्राप्त होता है।

विरह मंजरी :

विरह मंजरी में कवि ने एक गोपी के श्रीकृष्ण-विरह का वर्णन किया है। इसके लिए उसने देशान्तर विरहाअंतर्गत बारहमासा विरह वर्णन का आश्रय लिया है। गोपी का विरह वास्तविक विरह नहीं था प्रत्युत भावात्मक था। भगवतदर्शन हेतु भक्त के हृदय में विशुद्ध प्रेम होना आवश्यक है और विशुद्ध प्रेम-प्राप्तर्थ विरहावस्था ही प्रधान साधन है। इस साधन में विद्वलता इतनी बढ़ जाती है कि भक्त को प्रभु के अतिरिक्त अन्य किसी की सुधि ही नहीं रह जाती है। अत: भक्त के लिए विरह वास्तविक ही है। इस प्रकार नंददास ने अपने सिद्धात तत्त्व का प्रतिपादन किया है।

रुक्मिणी मंगल :

रचना के आरंभ में वंदना के उपरांत कवि ग्रंथ के माहात्म्य की ओर संकेत करते हैं। रुक्मिणी, शिशुपाल से विवाह किये जाने की बात सुनते ही अत्यंत दु:खी होती है। गोपियों की भाँति लोक-लाज का त्याग करके माता, पिता, भाई-बंधु आदि सम्बन्धियों की परवाह किये बिना जिस प्रकार श्रीकृष्ण प्राप्त हों, वह उपाय किया जाए। वह श्रीकृष्ण के लिए एक पत्र लिखती है और एक ब्राह्मण के हाथ उस पत्र को श्रीकृष्ण के पास भेजती है। किंतु 'रुक्मिणी मंगल' में, रुक्मिणी की इच्छा के विरुद्ध विवाह की सूचना के प्रसंग का लाभ उठाया है। कवि ने मूल आधार, भागवत के दशमस्कन्ध से लेते हुए भी ग्रंथ में कवि-सुलभ के सहारे अनेक मौलिकताओं का समावेश किया है। कवि ने भागवत के अनेक प्रसंगों को अपने मंगल में स्थान नहीं दिया है। एक तो श्रीकृष्ण के महत्त्व और शील के प्रतिकूल होते हैं। दूसरे कवि के माधुर्य भाव के निर्वाह में बाधक होते हैं।

रास पंचाध्यायी :

रासपंचाध्यायी में पाँच अध्यायों में रास-कथा वर्णित है। भागवत में दशमस्कन्ध के 28 से 33 तक के अध्यायों में रासलीला वर्णित है । गोपियों के साथ श्रीकृष्ण द्वारा रचित रास का वर्णन रास पंचाध्यायी में मिलता है। गोपियों द्वारा यमुना जल श्रीकृष्ण पर उलीच-उलीच कर जल की बौछार करने का उल्लेख है।

'मंजुल अंजुलि भरि भरि पिय कों तिय जल मेलत।
जनु अलि सो अरविंद -बृन्द मकरंदि खेलत।।'

कवि ने रास का वर्णन भागवत के आधार पर लिखा है। अपनी स्वतंत्र कल्पना के योग से नवीन रूप देने का प्रयत्न किया है। रासवर्णन में अनेक छंद मिलते हैं।

रास में भाग लेने वाले श्रीकृष्ण परब्रहम हैं। गोपियाँ भी सब स्त्रियों से न्यारी हैं और बिना अधिकारी हुए इनका अनुभव नहीं होता है। गोपियों की भाँति विषयासक्ति से मुक्त है। जिनकी भागवत धर्म में आस्था है।

सिद्धान्त पंचाध्यायी :

दशमस्कंध भागवत के आधार से सिद्धान्त पंचाध्यायी भिन्न है। श्रीकृष्ण, रास और गोपियों के आध्यात्मिक स्वरूप को प्रकट करते हैं। भागवत का ग्रहण करते हुए कवि ने श्रीकृष्ण के ईश्वरतत्त्व, उसकी माया, उसका प्रभाव, सांसारिक जीव, प्रेमी भगवद् भक्तों से संबंधित अधिकांश उल्लेख भागवत् के रास प्रसंग है। इसमें कथा की सम्बद्धात्मकता का नितांत अभाव है। सिद्धान्त पंचाध्यायी में रास और उसके प्रवर्तक श्रीकृष्ण तथा गोपियों की अलौकिकता प्रकट करने का प्रयास है। पंचाध्यायी श्रृंगार कथा नहीं है। सिद्धान्त पंचाध्यायी की रचना रास-पंचाध्यायी के आध्यात्मिक पक्ष को प्रकट करने के लिए की गई है। इसमें श्रीकृष्ण जीव नहीं, ईश्वर है और गोपियाँ भक्त हैं। श्रीकृष्ण प्रेम द्वारा ही प्राप्य है। गोपियों ने उन्हें प्रेम से प्राप्त करने के मार्ग का प्रतिपादन किया है। सभी गोपियों को गुरु माना है। रास अलौकिक रस है, जिसको देखकर शंकर, नारद, सारद, सनक

सनंदन आदि मुग्ध होते हैं ।

भंवर गीत :

भंवर गीत कवि की अंतिम रचना है। लोकप्रियता की दृष्टि से इसका नाम सर्वप्रथम आता है। उद्धव गोपियों को अपने ब्रजागमन का कारण बताते हैं। भँवर गीत में कवि ने उपालम्भों के द्वारा निर्गुण पर सगुण, कर्म, ज्ञान और योग पर प्रेममयी भक्ति की श्रेष्ठता दर्शायी है। इस गीत की रचना जहाँ एक ओर दशमस्कन्ध के आधार पर गई है, वहीं दूसरी ओर सूर के भ्रमर गीत से कवि को प्रेरणा मिली है। कवि ने प्रेम लक्षणा भक्ति के समर्थन के साथ-साथ अपनी स्वतंत्र सूझ और नवीन उद्‌भावना शक्ति का परिचय दिया है।

हिंदी साहित्य को नवीन दिशा की ओर ले जाने का प्रयास कवि की कृतियों में मिलता हैं।

नंददास की भक्ति :

नंददास की प्रत्येक कृति श्रीकृष्ण प्रेम से ओत-प्रोत है। भगवान श्रीकृष्ण के प्रति प्रीति ही 'भक्ति' है।

रूपमार्ग और नाद मार्ग :

दोनों मार्ग अत्यंत सूक्ष्म है। इन पर अग्रसर होने के लिए लोकाश्रय से पूर्णत: अनासक्ति, पूर्ण आत्म-समर्पण और भगवान की कृपा का होना आवश्यक है। यहाँ भगवान के रूप या उनके मुरली नाद द्वारा आकर्षित भक्त का हृदय तीव्र विरहावस्था से है। तन्मयावस्था और तदाकार की स्थिति में भगवान के निकट का अनुभव प्राप्त करता है।

नवधा भक्ति (साधन पक्ष) :

भगवद् भक्ति की प्राप्ति के लिए नंददास ने जिस साधन समूह को अपनाया है, उसमें भक्ति के नौ साधनों का समावेश हैं। श्रवण, कीर्तन, रमरण, पाद सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन।

श्रवण, कीर्तन और स्मरण :

इन तीनों साधनों का संबंध नाम से है। रास पंचाध्यायी और रास लीला को कवि ने 'श्रवण कीर्तन सार सुमिरन को है पुनि' कह कर साधनों की ओर संकेत दिया है। 'भँवरगीत में गोपियाँ श्याम नाम के श्रवण द्वारा प्रेम से परिपूर्ण हो जाती है। अनेकार्थ भाषा में हरि नाम स्मरण का अनेक स्थलों में उल्लेख मिलता है। श्याम सगाई में एक लम्बे पद के रूप में कीर्तन की भावना सन्निहीत है । हरि नाम स्मरण के अतिरिक्त गुरु विठ्ठलनाथ जी के नाम-स्मरण की ओर भी कवि की आसक्ति प्रकट होती है।

पाद सेवन, अर्चन और वंदन :

अनेकार्थ भाषा में नंददास गिरिधर के 'निज चरणों' के प्रति स्नेह की कामना से भक्ति के पाद सेवन का रूप साधन की प्रतीति कराते हैं। रूपमंजरी में 'मन के हाथनि नाथ के पुनिपुनि पकरति पाय' इस कथन से प्रकट होता है। रासपंचाध्यायी में भगवद् पक्ष, कवि ने गुरु विठ्ठलनाथ जी की भक्ति के साधन के रूप में पाद

सेवन का उल्लेख किया है।

वंदना का सहारा नंददास ने अपनी लगभग कृतियों में किया है । अनेकार्थ भाषा में 'नमो नमो ता देव' कहा है। नाममाला में श्रीकृष्ण और गुरु दोनों की वंदना की है। रासमंजरी में नंदकुमार श्रीकृष्ण की वंदना का उल्लेख है। रूपमंजरी में परम ज्योति रूप में ईश्वर की और रास पंचाध्यायी में शुकदेव की वंदना की गई है। सिद्धान्त पंचाध्यायी में श्रीकृष्ण की वंदना का उल्लेख मिलता है।

दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन :

दास्य और सख्य का उल्लेख प्रेमा भक्ति के भेदों के अंतर्गत भी होता है। रूपमंजरी ग्रंथ में इन्दुमती की साधना दास्य रूप में ही हुई है। रुक्मिणी मंगल में रुक्मिणी का यह कथन 'कि हौं भई परिचारि नाथ तुम भये हमारे' रासपंचाध्यायी में गोपियाँ दास्य, सख्य और आत्म निवेदन तीनों का सहारा लेती हैं। दास्य और आत्म निवेदन का इसी प्रकार का भाव भँवरगीत में प्रकट होता है। नंददास की भक्ति साधन है। साधन परस्पर सम्बद्ध ज्ञात होते हैं।

दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भक्ति :

नंददास ने भगवद्तत्त्व को विविध भावों से अनुभव किया है। नंददास ने भावान्तर्गत जो कुछ भी वर्णन किया है। वह संयोग और वियोग दो पक्ष का ही है। वियोग पक्ष का कोई भी सरोकार नहीं है। माधुर्य भाव की भक्ति ही भक्ति की ऐसी विधा है जिस पर नंददास की वृत्ति सर्वाधिक है।

स्वकीया और परकीया भक्ति :

नंददास की माधुर्य भाव की भक्ति में पतिपत्नी रूप प्रेम का ही प्राधान्य है। इसमें दो रूप हैं, 1. स्वकीया 2. परकीया। नंददास के काव्य में राधा स्वकीया है। श्याम सगाई में राधा कृष्ण के अभिन्नत्व और युगल भाव का समावेश नाममाला में हुआ है। राधा प्रेम का पूर्ण प्रस्फुटन विरहमंजरी में प्रत्यक्ष विरह के उदा. में मिलता है।

परकीया भाव का समावेश सर्वप्रथम रसमंजरी में मिलता है। श्रीकृष्ण के आसक्ति की ओर संकेत किया है। भक्ति का स्वरूप प्रेमाभक्ति का है। जिसको उसने 'प्रेमभक्ति' के नाम से अभिहित किया है। अत: नंददास की भक्ति परकीया भाव प्रधान है।

कवि की उक्त 'प्रेमभक्ति' पुष्टमार्गी प्रेम लक्षणा भक्ति पर आधारित है। जिसका उसने पूर्ण मनोयोग से समर्थन किया है। वस्तुत: नंददास का उदय प्रेम-भक्ति का ही साकार रूप जान पड़ता है। यही भक्त कवि की सफलता है।

2.3.3.4 मीरा व्यक्तित्त्व एवं साहित्य का परिचय

कृष्ण भक्ति-काव्य में मीरा का स्थान सर्वोपरि रहा है। इनके काव्य में विलक्षणता है, जो मन को लुभावती है। मीरा का काव्य जन-समाज में अत्यंत लोकप्रिय रहा है।

मीरा का जीवन वृत्त :

मीरा का जन्म कुकड़ी में श्रावण सुदी 1, शुक्रवार सं. 1561 वि. में हुआ। मीरा की माता का नाम 'कुसुम कुँवर' था। वे राँकनी की राजपुतिनी थी। उनके पिता जोधपुर के प्रसिद्ध संस्थापक के पुत्र थे। रावदूदाजी के चौथे पुत्र 'रत्नसिंह' की पुत्री थी। रावदूदाजी की जीवन-पद्धति का गहरा प्रभाव मीरा के शिशु मन पर पड़ा था। वे अत्यंत वीर और स्वाभिमानी थे, मन के बहुत उदार थे। उनका धार्मिक दृष्टिकोण समन्वयवादी और पूर्वग्रहों से मुक्त था। उन्होंने बड़ी श्रद्धापूर्वक मेड़ता में चतुर्भुजाजी का मंदिर बनवाया था। मीरा रावद्दाजी के साथ बैठकर भगवत् चर्चा में रस लिया करती थी। समाज ने मीरा के आध्यात्मिक संस्कारों का निर्माण किया था। यही वातावरण उनकी संगीत और काव्यप्रतिभा के स्फुरण के लिए भी अनुकूल था।

विवाह :

विवाह के समय मीरा बारह वर्ष की थीं। मेवाड़ के गहलोंत सीसोदिया - वंश में हुआ था। राणा सांगा के द्वितीय पुत्र भोजराज उनके पति थे। मीरां का विवाह सफल नहीं हुआ। मीरां का वह 'पति देह घरे मात्र को भर्त्ता' था। वास्तव में वह तो अपना वर 'बालपन का मीत' गिरधारी लाल को ही मान चुकीं थीं। पति के जीवन काल में उसपर अत्याचार हुए। उस काल में मीरां की मनोदशा और अवस्था क्या थी, इसका ज्ञान होता है।

''विष का प्याला राणाजी भेज्याँ,दीजो मेड़त गी के हाथ।
कर चरणामृत पी गई, म्हाँरा सबलधरणी का साथ।।''

मीराँबाई की रचनाएँ

मीराँबाई की प्राथमिक शिक्षा मेड़ते में पूर्ण हुई थी। मेवाड़ का राजवंश उन दिनों संगीत एवं साहित्यादि के प्रेमी विद्वान प्रसिद्ध महाराणा कुम्भा के कारण, पूरा विख्यात हो चुका था। मीराबाई को ससुराल में भी अपनी योग्यता के विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्राप्त होता गया।

❊ नरसीजी को माहेरो :

'नरसीजी को माहेरो' वा 'नरसीजी का माहेरा' वा 'मायरा' भी कहते हैं। यह चौपाई-दोहों में लिखा गया एक ग्रंथ है। जिसका विषय-वर्णन मीराँ की किसी मिथुला नामक सखी को संबोधित करके किया गया है। ग्रंथ का विषय प्रसिद्ध भक्त नरसी मेहता के माहेरा वा 'भात भरने' की कथा का वर्णन है। माहेरा राजस्थान और गुजरात की एक लोकप्रिय प्रथा है। लड़की या बहन के घर, जब उसकी संतान का विवाह होता है, तब पिता के भाई पहरावनी ले जाते हैं, उसी का नाम 'माहेरा' है। नरसी का माहेरा उनकी पुत्री नानाबाई के यहाँ हुआ था। बोलचाल की राजस्थानी भाषा में इसी विषय पर और भी प्रसिद्ध ग्रंथ है।

❊ गीत गोविंद की टीका :

महाराणा कुम्भा द्वारा रचित प्रसिद्ध 'रसिकप्रिया टीका' को ही मीराँ की रचना 'गीत गोविंद की टीका' समझ लिया है।

❊ राग गोविंद :

इस ग्रंथ में मीराँ ने इस नाम से 'कविता का एक ग्रंथ' रचा था।

❊ सोरठ के पद :

मिश्रबंधुओं ने इसकी चर्चा की है। इसमें मीरा के अतिरिक्त नामदेव और कबीर के भी राग सोरठ के पद संग्रहीत हैं।

❊ मीराँबाई का मलार :

'राग अब तक प्रचलित है, और बहुत प्रसिद्ध है। यह कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है।

❊ गर्बा गीत :

'गर्बा' गीत रासमण्डली के गीत की भाँति रचित माना है। मीराँबाई के ऐसे गीतों को 'मीराँनी गरवी' कहा जाता है।

❊ फुटकर पद :

मीराँबाई की रचनाओं में सबसे अधिक निश्चित पदों का ही पता चलता है। इनकी संख्या दौ सौ की समझी जाती थी। पदों में कुछ की भाषा गुजराती है। इन फुटकर पदों के अंतर्गत मीराँबाई निर्मित समझी जानेवाली रचनाएँ पूर्णत: लोकगीत-सी बन गयी है।

मीराँबाई की पदावली :

पदावली का विषय :

मीराँबाई की पदावली में उनके आंतरिक भाव का चित्रण मिलता है। इसी कारण सारी पदावली में मीराँबाई की व्यक्तित्त्व की छाप स्पष्ट मिलती है। मीराँबाई के सिद्धान्त जगत् के प्रति विरक्तिमय और कृष्ण के प्रति अनुरक्तिमय दीख पड़ते हैं। इन दोनों प्रकार की भावनाओं के प्रभाव उनकी रचनाओं पर सर्वत्र लक्षित है। भगवान ही एकमात्र नित्यवस्तु है और पुनर्जन्म तथा कर्मबंधन को प्रसन्न होकर वे ही काट सकते हैं। मीराँबाई की दृष्टि में उनके इष्टदेव के निर्गुण एवं सगुण रूपों में कोई भेद नहीं है। मीराँबाई को उस 'प्रियतम' के वास्तविक रूप का आध्यात्मिक रहस्य अवश्य ज्ञात है। किंतु उनके प्रेम की तीव्र भावना उसे अमूर्त मानकर अपनाने नहीं देती। उनके स्त्रियोचित हृदय में निराकार के लिए स्वभावत: कोई स्थान नहीं है। वे उसके प्रतीक स्वरूप भगवान श्री कृष्णचंद्र की विश्वविमोदिनी मूर्ति को सदा अपने सामने रखती है। सौंदर्य का आभास उन्हें सर्वत्र दीख पड़ता है। जिस वस्तु को तत्त्वज्ञानी लोग तत्त्व, अव्यय, ज्ञान, ब्रहम एवं परमात्मा नाम से अभिहित करते हैं । उसी को भगवान कहा जाता है। इनका इष्टदेव इसी प्रकार निर्गुण होता हुआ भी सगुण भगवान है।

रहस्यवाद :

मीराँबाई द्वारा अपनाई गई साधना इसी कारण, रहस्यमयी भावनाओं से भी ओतप्रोत है। अनेक पदों में रहस्यवाद की झलक दिखायी पड़ जाती है। कर्मानुसार प्राप्त मानस शरीर का आवरण धारण किए हुए जीवात्म रूप से अपना जीवनयापन कर रहीं थीं। किसी समय इन्हें इस दैनिक व्यवहार के अंतर्गत ही परमात्मा के साथ अपने तादात्म्य कर उसके साथ एक रूप हो गयी। वे उक्त काल्पनिक आवरण की भावना का परित्याग कर उसके साथ एक रूप हो गयी।

माधुर्यभाव :

मीराँबाई की पदावली में, इसी कारण सर्वत्र भक्तिरस की धारा का प्रभाव लक्षित होता है। जिसे 'माधुर्य भाव' अथवा 'मधुर रस' कहा जाता है। मधुर रस भक्ति की अन्य धाराओं जैसे शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य से भिन्न है। 'शांत' के अनुसार भक्त, भगवान के सगुण रूप का अनुभव कर उनका स्वरूप-चिंतन किया करता है। 'दास्य' के नुसार उनके ऐश्वर्य-चिंतन में मग्न रह कर उनका गौरव-गान करता रहता है। इसी प्रकार 'सख्य' के अनुसार वह भगवान को किशोरावस्था का सखा, मान उससे न्यूनाधिक अनियंत्रित प्रेम करने लगता है। 'वात्सल्य' के नुसार उसके बालरूप पर ही अधिक मुग्ध होकर उनकी बाललीला का रसास्वाद किया करता है। 'मधुर-रस' के नुसार भक्त उनको अपने पति या सर्वस्व रूप में देखता है। इसी कारण, उनके साथ उनका संबंध अत्यंत घनिष्ठता का हो जाता है। 'आर्ति' वा गूढ़ प्रेम एक युवती के हृदय में, किसी युवक को देखकर जाग उठता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। भक्त लोग श्री भगवान कृष्ण को स्थिर चित के साथ, पत्नी-भाव से ही नित्य भजा करते हैं। स्त्री-पुरुष की ऐसी ही आसक्ति के संबंध में श्रृंगाररस का भी प्रार्दुभाव होता है। मधुररस के भी भाव, विभाव, अनुभावादि प्राय: उसी प्रकार के होते हैं जैसे श्रृंगाररस के। ब्रज की गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम पराकाष्ठा को पहुँच गया था।

साधना का रूप :

मीराँबाई का आदर्श ब्रज की उक्त गोपियाँ थी और उनका आदर्श प्रेम भी उक्त 'गोपी-भाव' था। वह श्री गिरधारीलाल को स्वकीया की भाँति अपना पति समझती हुई दीख पड़ती है। वे अपने प्रियतम को सदा पिया 'पिव', 'धणी', 'सेंयाँ', 'भरतार', 'भवनपति', 'साजन' अथवा 'वर' तक कहकर सम्बोधित करती हैं। एकाध पदों से उनके 'सौतियाडाह' जैसे भाव का भी कुछ संकेत मिलता है। वास्तव में 'प्रेम दिवानी' मात्र होने पर भी लोग उन्हें 'कुलनासी' आदि कहने से भी नहीं चुकते हैं और 'हँसी' तक उड़ाने में प्रवृत्त ही जाते हैं, मीराँबाई को ऐसी 'बदनामी' सदा 'मीठी' ही लगा करती है और वे लाख 'बुरी-भली' कही जानेपर भी अपनी ही धुन में ही 'मस्त डोलती' फिरती रह जाती है।

विवरण :

मीरा स्वयं स्त्री है और अपने इष्टदेव श्री गिरधरलाल को पति रूप में स्वीकार भी कर चुकी है। उन्हें

अपने किसी अवस्था विशेष में रखने का प्रयत्न नहीं करना है। वे माधुर्य भाव की सभी स्त्री-सुलभ बातें ही अनुभव कर लेती तथा उन्हें तदनुकूल शब्दावली में स्वाभाविक रूप से, व्यक्त कर देती हैं। उनका प्रेम श्री गिरधरलाल के अनुपम सौंदर्य का अनुभव करके आरंभ होता है। प्रेमाशक्ति बढ़ती है और नयी-नयी अभिलाषाएँ उनके हृदय में क्रमश: घर करने लग जाती है। इस प्रकार के भावों का रंग अधिकाधिक प्रगाढ़ ही बनता जाता है। एक साधारण-सा रूप-राग आगे पूर्व राग में परिणत हो जाता है। प्रेमानुभाव की यह पहली दशा है। प्राय: आरंभ से ही आध्यात्मिक भी होने के कारण यह साथ ही विरह दीख पड़ता है। इसकी जड़ ग़हराई तक पहुँच चुकी है। दूसरी दशा में यह, अनुभूति, अज्ञान-जनित असावधानता के कारण स्पष्ट विरहानुभाव बनकर आती है। देश, काल वा परिस्थिति द्वारा उत्पन्न भिन्न-भिन्न यातनाओं में प्रकट होकर, उनकी अन्तरात्मा को स्वर्णवत् तपाकर और भी विशुद्ध कर देती है। अंतिम दशा में पहुँचकर यह उक्त भाव की पूर्णता को तब प्राप्त होता है, जब आत्मसमर्पण पूर्वक अभीष्ट मिलन का अनुभव उन्हें सर्वतोभावेन होने लग जाता है।

मर्यादित रूप :

मीराँबाई पर उक्त माधुर्यभाव, परमभाव, गोपीभाव, निराउच्छृंखल आवेश-प्रदर्शन नहीं था। वह वास्तव में ज्ञान मूलक एवं मर्यादित भी था, जैसा कि हम उनके 'पंचरंगचोला' के आवरण में 'झिरमिट' खेलने आदि के प्रयोगों द्वारा पहले ही देख चुके हैं। उनके आदर्श 'सोलह सिणगार', 'धैर्य', 'समा', 'साथ', 'सुमति', 'औदार्य', 'संतोष', 'चित्र की उज्ज्वलता' आदि हो गये। जो एक सदाचारी नैतिक जीवन के लिए परमावश्यक गुण है। मीराँबाई की प्रेम-साधना में देश, काल एवं परिस्थितियों के नुसार उक्त ब्रज सुन्दरियों के गोपी भाव से बहुत कुछ अंतर तो था। वह अपने मौलिक सिद्धांतों एवं उच्च नैतिक आदर्शों के कारण उन तांत्रिक साधनाओं से भी नितांत भिन्न थी। जिनके भ्रष्ट परिणामों से व्यथित हृदय होकर उससे लोग भ्रमवश साहित्य में अश्लीलता एवं समाज में कामुकता के प्रचार का भय कर सकते हैं।

भाववश की प्रधानता :

मीराँबाई कवयित्री से पहले एक भक्त के रूप में ही प्रकट होती जान पड़ती हैं। उनका सारा जीवन, कतिपय निश्चित एवं अंतर्निविष्ट भावनाओं से परिपूर्ण रहा और उनकी रचनाओं पर उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं की गहरी छाप सर्वत्र पड़ती रही। उनके भाव उनके तल्लीन हृदयस्थल से सदास्वत: प्रसूत से निकल पड़ते रहें।

मीराँबाई के पुर्वानुराग में मधुर आकर्षण स्नेहसिक्त लगाव, अपूर्व, उलझन एवं दृढ़निश्चय के भाव हैं। उनके हृदय में श्रीगिरधरलाल के प्रति जो मधुर रति है वही, उनके अनेक पदों में प्रदर्शित विभाव, अनुभावादिं द्वारा क्रमश: परिपुष्ट होकर मधुरस का रूप ग्रहण करती हुई दीख पड़ती है। आलंबन सर्वत्र वहीं श्री गिरधरलाल है, जो गिरधर नागर, नंदवंदन, मदनमोहन, गोविंद, हरि, कान्हा, रमैया, जोगिया, सहयाँ आदि नामों द्वारा भी सम्बोधित किये गये हैं। वे सौंदर्य के निधान एवं मूर्तिमान श्रृंगार हैं।

विरहगर्भित प्रेम :

मीराँबाई ने अपने विरह का वर्णन भी बड़े सुंदर ढ़ंग से किया है। इनके पदों में विरह का एक अलग महत्त्व है। वह उक्त पुर्वानुराग में ही किसी-न-किसी प्रकार से दीख पड़ने लगता है। मीराँबाई का प्रेम, लौकिक रूप में व्यक्त होता हुआ भी, परमात्मा से सम्बद्ध होने के कारण अलौकिक आध्यात्मिक एवं विरह-गर्भित भी था। मीराँबाई और उनके इष्टदेव या प्रियतम में जीवात्मा और परमात्मा की मौलिक एकता के कारण कोई अंतर नहीं।

मीराँबाई ने अवद्य साधनोंवाली रागानुराग भक्ति का मार्ग अपनाया, जो स्त्रियों के लिए अमान्य मानी जाती थी। 'परभाव' का निर्वाह करती हुई उन्मुक्त विचरती नहीं। वह समाज द्वारा लाछित भी हुई किंतु उन्होंने अपना आत्ममुक्तता का मार्ग नहीं छोड़ा। यही कारण है कि मीराँ का पूर्व और पश्चात् कोई संप्रदाय नहीं। फिर भी समाज के निम्न वर्ग में अत्यंत सम्मान भाव हैं। विशेषकर नारी समाज में, क्योंकि इन्हें मीराँ में आत्मबिंब देखने को मिलता है। जो मुक्ति के लिए, मुक्तात्मा के लिए प्रेरक और प्रेरणादायी है।

2.4 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

प्रश्न - 1 अ) निम्नलिखीत वाक्यों के नीचे दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. संत नामदेव का जन्म ..... परिवार में हुआ।

   क) जुलाहा ख) दर्जी ग) चमार घ) नाई

2. नामदेव की माता का नाम ..... था।

   क) गोपाई ख) तुकाई ग) गोमाई घ) नीमाई

3. रैदास का जन्म ..... में हुआ था।

   क) प्रयाग ख) काशी ग) मथुरा घ) अयोध्या

4. 'श्याम-सगाई' यह रचना ..... की है।

   क) नंददास ख) तुलसीदास ग) सूरदास घ) रैदास

5. मीराबाई का जन्म ..... गाँव में हुआ था।

   क) मीराबाई ख) काशी ग) कुडकी घ) वृंदावन

6. नामदेव ..... संप्रदाय के प्रमुख संत थे।

   क) नाथ ख) सिद्ध ग) वारकरी घ) पुष्टि संप्रदाय

7. रैदास के गुरु का नाम ..... था।

   क) स्वामी रामानंद ख) वल्लभाचार्य ग) तुलसीदास घ) रामकृष्ण

8. मीरा के पदों का प्रमुख विषय ..... था।

क) रामभक्ति ख) शैवभक्ति ग) वैष्णवभक्ति घ) कृष्णभक्ति

9. ..... अष्टछाप के प्रमुख भक्तों में थे।

क) कबीर ख) जायसी ग) नंददास घ) मीराँ

10. नामदेव ने ..... से दीक्षा ली।

क) गोस्वामी विठ्ठलनाथ ख) स्वामी रामानंद

ग) सय्यद अशरफ घ) विसोबा खेचर

11. रैदास की माता का नाम ..... था।

क) निमा ख) आऊबाई ग) घुरबिनिया घ) रत्नावली

12. मीरा की भक्तिभावना ..... की है।

क) सख्य भाव ख) माधुर्य भाव ग) दास्य भाव घ) प्रेम भाव

13. संत रैदास ..... धर्म के संस्थापक थे।

क) मानव धर्म ख) दैवी धर्म ग) कर्मकांड धर्म घ) सनातन

14. मीरा के कुछ पद ..... भाषा में है।

क) ब्रज ख) अवधी ग) सधुक्कड़ी घ) संस्कृत

15. रैदास के पद ..... में संकलित हैं।

क) गुरु ग्रंथ साहब ख) रासपंचाध्यायी

ग) मीरा पदावली घ) कबीरवाणी

प्रश्न : 1.आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए।

1. नामदेव का जन्मस्थान कौन सा है ?
2. नामदेव के पिता दामाशेटी किसके भक्त थे ?
3. नामदेव कौनसे पंथ के थे ?
4. नंददास का जन्मस्थान कौनसा है ?

5. मीराबाई के पिता का नाम क्या है ?

6. भंवरगीत कौनसे कवि की अंतिम रचना है ?

7. रैदास के माता-पिता कहाँ रहते थे ?

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

वारकरी सम्प्रदाय : महाराष्ट्र के विठ्ठल भक्तों का सम्प्रदाय
सत्संग : साधुओं की संगति
विख्यात : प्रसिद्ध
सहिष्णुता : उदारता
निराकार : आकार विहीन
पारस : लोहे को सोना बनालेवाला पत्थर
वर्णाश्रम धर्म : वर्णाश्रम व्यवस्था को माननेवाला धर्म
पाशविक : पशु के समान
अष्टछाप : पुष्टिमार्ग के प्रमुख आठ कृष्णभक्त कवि

2.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1. अ)

1. दर्जी	2. गोपाई	3. काशी
4. नंददास	5. कुड़की	6. वारकरी
7. स्वामी रामानंद	8. कृष्णभक्ति	9. नंददास
10. विसोबा खेचर	11. घुरबिनिया	12. माधुर्य भाव
13. मानव धर्म	14. ब्रज	15. गुरुग्रंथ साहब

प्रश्न 1. आ)

1. नामदेव का जन्मस्थान नरसी बामणी है।
2. नामदेव के पिता दामाशेटी विठ्ठल भक्त थे।
3. नामदेव वारकरी पंथ के थे।
4. नंददास का जन्मस्थान रामपुर है।
5. मीराबाई के पिता का नाम रत्नसिंह है।

6. भंवरगीत नंददास कवि की अंतिम रचना है।

7. रैदास के माता पिता मांडूर गाँव में रहते थे।

2.7 सारांश

1. भक्तिकालीन राजनितीक परिस्थिति से यह ज्ञात होता है कि सत्ता प्राप्ति के लिए अपनों से ही लड़ने का काम लोगों ने किया। हिंदू तथा मुसलमानों में अंतर निर्माण हुआ।

2. भक्तिकालीन सामाजिक परिस्थिति में तत्कालीन लोगों के जीवन और संस्कृति का परिचय मिलता है।

3. संत नामदेव, जिनकी ख्याति भारत के कोने-कोने में व्याप्त है। इन्होंने पंढरपुर के विठ्ठल मंदिर के महाद्वार पर समाधि ले ली। इनकी कृतियाँ मराठी और हिंदी दोनों भाषाओं में प्राप्त होती है।

4. मध्ययुगीन साधकों में रैदास का विशिष्ट स्थान है। रैदास ने ऊँच-नीच की भावना तथा ईश्वर भक्ति के नाम पर किए जानेवाले विवाद को सारहीन तथा निरर्थक बताया और सबको परस्पर मिलजुलकर प्रेम पूर्वक रहने का संदेश दिया।

5. नंददास का व्यक्तित्त्व एवं साहित्य हिंदी में अनुपम है। 'भंवर गीत' लोकप्रियता की दृष्टि से सर्वप्रथम आता है।

6. मीरा के पदों में प्रमुख रूप से कृष्ण प्रेम व्यक्त हुआ है। इसे माधुर्य-भाव की भक्ति भी कहा जाता है।

2.8 स्वाध्याय

1. भक्तिकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का परिचय दीजिए।

2. नामदेव का सामान्य परिचय दीजिए।

3. रैदास का सामान्य परिचय दीजिए।

4. नंददास व्यक्तित्त्व एवं रचनाओं का परिचय दीजिए।

5. मीराबाई का सामान्य परिचय दीजिए।

2.9 क्षेत्रीय कार्य

1. मीराबाई की रचना 'मीरा की पदावली' को प्राप्त करके अध्ययन कीजिए।

2. नामदेव, रैदास, नंददास आदि के प्रसिद्ध पदों का संग्रह कीजिए।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1. हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : डॉ. शिवकुमार शर्मा
2. हिंदी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेंद्र
3. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
4. हिंदी साहित्य की भूमिका : डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी
5. भारतीय संत परंपरा : बलदेव वंशी
6. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : नंददुलारे वाजपेयी

●●●

इकाई 3

निर्गुण भक्तिधारा

निर्गुण भक्तिधारा की सामान्य विशेषताएँ एवं प्रमुख कवि

अनुक्रम

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय-विवेचन

3.3.1 निर्गुण भक्तिधारा की सामान्य विशेषताएँ ।

3.3.2 कबीर : व्यक्तित्व और कृतित्व ।

3.3.3 जायसी : व्यक्तित्व और कृतित्व ।

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न ।

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ ।

3.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर ।

3.7 सारांश

3.8 स्वाध्याय

3.9 क्षेत्रीय कार्य

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप,

1. भक्तिकालीन विभिन्न धाराओं से परिचित होंगे ।

2. ज्ञानाश्रयी शाखा से परिचित होंगे ।

3. प्रेमाश्रयी शाखा से परिचित होंगे ।

4. निर्गुण भक्तिधारा की सामान्य विशेषताओं को समझा सकेंगे ।

5. संत कबीर : व्यक्तित्व तथा साहित्य से परिचित होंगे ।

6. जायसी : व्यक्तित्व तथा साहित्य के परिचित होंगे ।

3.2 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास के संवत 1375 से संवत् 1700 तक के कालखंड को सामान्यतः भक्तिकाल कहा जाता है । इस कालखंड में सगुण एवं निर्गुण भक्तिधारा का निरंतर विकास हुआ । भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में निर्गुण भक्तिधारा को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । निर्गुण के अंतर्गत **संत** तथा **सूफियों** का काव्य सम्मिलित है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने नामदेव एवं कबीर द्वारा प्रवर्तित भक्तिधारा को **'निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा'** की संज्ञा से अभिहित किया है । डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'निर्गुण भक्ति साहित्य' तथा रामकुमार वर्मा ने 'संत काव्य परंपरा' का नाम दिया है । इस धारा के कवियों ने ज्ञान तत्त्व को सर्वाधिक महत्त्व दिया है । इसमें ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप का वर्णन किया है । निर्गुण भक्तिधारा के प्रमुख दो अंग हैं –

निर्गुण भक्तिधारा

(अ) ज्ञानाश्रयी शाखा	(ब) प्रेमाश्रयी शाखा
(संत कबीर)	(जायसी)

(अ) ज्ञानाश्रयी शाखा :

इस शाखा के अंतर्गत संत काव्य परंपरा सम्मिलित है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'निर्गुण भक्तिसाहित्य' कहा है । ईश्वर को निर्गुण निराकार रूप में स्वीकार करनेवाले ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों के लिए संत शब्द का प्रयोग किया जाता है । संत कबीर निर्गुण काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं । संत नामदेव तथा संत कबीर के अलावा रैदास, धर्मादास, धन्ना, सिंगा, दलूदास, जयदेव, गुरूनानक, मलकूदास, दादूदयाल, जनगोपाल, मोहनदास, दरियासाहब, सुंदरसाहब आदि अनेक नाम संत काव्य परंपरा के अंतर्गत लिए जाते हैं ।

(ब) प्रेमाश्रयी शाखा :

हिंदी साहित्य के अंतर्गत जायसी आदि सूफी परंपरा के कवियों द्वारा प्रवर्तित भक्तिधारा को **'प्रेमाश्रयी'** शाखा कहा जाता है । हिंदी साहित्य में इसे सूफी मत अथवा सूफी काव्य के नाम से भी जाना जाता है

। यह धारा मूलतः ईरान की है । मुसलमान शासन काल में ईरान के कुछ सूफी कवि भारत आए । ईरान में इस्लाम धर्म के एक अंग के रूप में सूफी मत का उदय एवं विकास हुआ था । ये कवि ऱ्हदय से उदार एवं कोमल ऱ्हदय के होते हैं। आचार्य शुक्ल ने 'मृगावती' के रचयिता 'कुतबन' को सूफी काव्य का प्रवर्तक माना है । हिंदी साहित्य में इसका विकास प्रेमकाव्य के रूप में हुआ है । डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'मुल्ला दाऊद की 'चंदायन' को सूफी काव्य का प्रथम ग्रंथ माना है । सूफी कवियों की केंद्रीय संवेदना 'प्रेम' है इसे डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने 'रोमांसिक कथाकाव्य परंपरा' कहा है ।

सूफी मत के अनेक संप्रदाय हैं। उनमें भिन्नता है । कुछ बातों में समानता भी है । सूफी कवियों ने ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप को स्वीकार किया है । वे ईश्वर प्राप्ति का एक मार्ग प्रेम को मानते हैं । सूफी कवियों ने ईश्वर की कल्पना स्त्री के रूप में और परमात्मा की कल्पना पुरुष के रूप में की है । गत को सत्य माना है । यशप्राप्ति के लिए गुरू को महत्त्व दिया है । 'पद्मावत' के रचियता मलिक मुहम्मद जायसी सूफी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि है । 'पद्मावत' सूफी काव्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है । इनके अतिरिक्त कुतबन, मौलाना दाऊद, मंझन, उसमान, नुरमुमहम्मद आदि प्रमुख सूफी कवियों ने सूफी काव्यधारा को आगे बढाया है ।

3.3 विषय–विवेचन

निर्गुण भक्तिधारा की सामान्य विशेषताएँ –

प्रास्ताविक

हिंदी साहित्य में निर्गुणधारा के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखाएँ आती हैं । संत कबीर तथा उनके अनुयायी कवियों के साहित्य को ज्ञानाश्रयी शाखा कहा जाता है । जायसी तथा अन्य सूफी कवियों ने जो साहित्य लिखा उसे प्रेमाश्रयी शाखा कहा जाता है । इन दोनों शाखा के कवियों ने बहुदेववाद तथा अवतारवाद का विरोध किया है । संत कवियों ने निर्गुण ईश्वर के लिए 'राम' शब्द का प्रयोग किया है । निर्गुण काव्यधारा की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1) **निर्गुण ईश्वर में विश्वास** : निर्गुण भक्तिधारा के सभी संत कवि निर्गुण निराकार ईश्वर में विश्वास रखते हैं । इन्होंने ईश्वर के सगुण रूप का खंडन किया है । कबीर का कहना है –

राम नाम तिहुं लोक बखाना ।
रामना का मरम है आना ।।

सभी वर्णों और समूची जातियों के लिए निर्गुण एकमात्र ज्ञान गम्य है । वह अविगत है । वेद, पुराण वहाँ तक पहुँच नहीं सकती ।

निर्गुण राम जपहु रे भाई,
अविगत की गति लखी न जाई ।''

निर्गुण रूपी भगवान सृष्टि के कन-कन में विद्यमान है । जैसे कस्तूरी मृग की नाभि में रहती है और वह व्यर्थ ही उसे वन में ढूँढने के लिए भटकता फिरता है । उसी प्रकार निर्गुण रूपी राम सृष्टि के कन-कन में समाया है, उसे बाहर ढूँढने की आवश्यकता नहीं है ।

2. **अवतारवाद तथा बहुदेववाद का विरोध :**

निर्गुण संत कवियों ने अवतारवाद तथा बहुदेववाद का कडा विरोध किया है । इसका सबसे बडा कारण यह था कि शंकर के अद्वैतवाद का प्रभाव लोगों पर शेष था, और राजनीतिक आवश्यकता भी थी । तत्कालीन मुस्लिम शासक एकेश्वरवादी थे । हिंदू मुस्लिम दोनों के जातीय संघर्ष को खत्म करके उनमें एकता स्थापित करने का प्रयास निर्गुण संत कवियों ने किया । इन्होंने बहुदेववाद का का विरोध किया ।

''यह सिर नवे न राम कूँ, नाही गिरियों टूट ।
आन देन नहिं परिसियों, यह तन जायो छूट ।।''

संतों का विश्वास है कि अवतार जन्म-मरण के बंधन में ग्रस्त है । वे भी परम ब्रह्म की भक्ति के बिना मुक्ति नहीं कर सकते । सभी संत कवियों ने ब्रह्मा, विष्णू, महेश की निंदा की है । उन्हें मायाग्रस्त कहा है । उनका भी निर्माता परम ब्रह्म है -

''अक्षय पुरुष इक पेड़ है, निरंजन बाकी डार ।
त्रिदेवा शाखा भये पात भया संसार ।।'' - कबीर

3. **गुरू का महत्त्व :**

निर्गुण कवि गुरु को भगवान से भी अधिक महत्त्व देते हैं । इनका मानना है कि राम की कृपा भी तभी होती है, जब गुरू की कृपा होती है । निर्गुण निराकार रूपी ब्रह्मा की प्राप्ति गुरू द्वारा दिखलाए मार्ग से ही प्राप्त होती है । गुरु के संदर्भ में संत कबीर कहते हैं -

''गुरु गोविंद दोऊ खडे काके लागू पाई ।
बलिहारी गुरु अपने जिन गोविंद दियो बताई ।।

अतः निर्गुण संत कवि सगुण भक्त कवियों की अपेक्षा गुरु को अधिक महत्त्व देते हैं ।

4. जाति-पाति का खंडन

निर्गुण संत कवि जाति-पाँति और वर्ग-भेद की कडी आलोचना करते हैं । इनके अनुसार सभी मनुष्य प्रकृति से निर्मित प्राणी मात्र है । परंतु इसी मनुष्य ने अपने आप की जाति-पाँति, विभिन्न धर्मों में बाँट लिया । आपस में ऊँच-नीचता के नाम पर संघर्ष करते रहें । निर्गुण कवि इस जाति, धर्मों के संघर्ष को मिटाकर एक सारभौम मानव-धर्म की प्रतिष्ठापना करना चाहते थे । उनके अनुसार निर्गुण रूपी राम पर सभी का समान अधिकार है ।

जाति-पाँति पूछे नहिं कोई,
हरि को भजे सो हरि का होई ।।

सभी निर्गुण संत कवि निम्न जाति से संबंध रखते थे । संत कबीर जुलाहे थे, रैदास चमार थे । इसके अलावा भक्तिआंदोलन ने भी जाति भेद एवं वर्ण भेद को तुच्छ ठहराया था । इसके साथ ही संतों को हिंदू-मुसलमानों में एकता स्थापित करनी थी । इसलिए निर्गुण संत कवियों की वाणी में अत्यंत प्रखरता और कटुता दिखाई देती है । संत कबीर इन दोनों का खंडन करते हुए कहते हैं,

''अरे इन दोउन राह न पाई ।
हिन्दुअन की हिन्दुआई देखी, तुकरन की तुरकाई ।।

''तू ब्राह्मण हों काशी का जुलाहा चीन्ह न मोर गियाना ।
तू जो बामन बामनी जाया और राह क्यों नहीं आया ।।''

5. रूढियों और सामाजिक आडंबरों का विरोध

सभी संत निर्गण कवियों ने सामाजिक आडंबरों का कड़ा विरोध किया है । कबीर ने रूढियों, मिथ्या आडंबरों तथा अंधविश्वासों की कटु आलोचना की है । ये कवि सिद्ध एवं नाथ पंथियों से प्रभावित थे । इन्होंने मूर्ति पूजा, धर्म के नाम पर हो रही हिंसा, तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज, आदि विविध बाह्याडंबरों जाति-पाति आदि बातों का डटकर विरोध किया है । इन कवियों ने वैष्णव संप्रदाय की छोडकर शेष सभी संप्रदायों की कटु आलोचना की है । भगवान के नाम पर निर्दोष प्राणियो की बलि चढ़ानेवाले अंधविश्वासी प्रवृत्ति के लोगों पर प्रहार करते हैं,

''बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल ।
जे जन बकरी खात है, तिन को कौन हवाल ।।''

''कांकर पत्थर जोरि के, मज्जिद लय बनाय ।
ता चढि-मुल्ला बांग दे, बहिरा हुआ खुदाय ।।''

यहाँ संत कवियों ने मुसलमानों के मस्जिद और मुल्ला पर प्रहार किया है । इसके आगे जाकर भगवान के नाम पर पत्थरों की पूजा करनेवाले हिंदू समुदाय का भी समाचार लिया है,

''पत्थर पूजै हरि मिलै तो मैं पूँजू पहार ।
ताते व चक्की भली पीस खाय संसार ।।''

संत कबीर ने निर्भिक और नीडरता से हिंदू और मुसलमानों में फैली विषमता सामाजिक आडंबरों का कड़ा विरोध किया है । परिणाम के चलते तत्कालीन मुसलमान शासक सिकंदर लोधी ने भी कबीर को अनेक यातनाएँ दी थी। कबीर के इसी स्वभाव के कारण उन्हें हिंदू और मुसलमानों का सामना करना पडा

। हिंदू पंडित और मुसलमानों के मौलवी कबीर को अपना शत्रु मानते थे ।

6. रहस्यवाद

संत संप्रदाय में रहस्यवाद की प्रवृत्ति विठ्ठल संप्रदाय से आयी है । निर्गुण संत काव्य में अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है, जिसे रहस्यवाद कहा गया है । साधना के क्षेत्र में जो ब्रह्म है, साहित्य के क्षेत्र में वह रहस्यवाद है । संतों का रहस्यवाद एक ओर तो शंकर के अद्वैतवाद से प्रभावित है,

''जल में कुंभ-कुंभ में जल है भीतर बाहर पानी ।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कहो गयानी ।।'

कहीं पर इनके रहस्यवाद पर योग का भी स्पष्ट प्रभाव है, इंगला, पिंगला और सहस्रदल कमल आदि प्रतिकों का प्रयोग है । इसमें विशुद्ध भावात्मक रहस्यवाद मिलता है । इसमें प्रणयानुभूति की निश्चय अभिव्यक्ति हुई है,

''आह न सकी तुझ पै, सकू न तुझ बलाइ ।
जियरा यौं ही लेहुगे, विरह तपाइ तपाशा ।।''

अतः रहस्यवाद में आत्मा और परमात्मा के प्रेम संबंधों का वर्णन है । निर्गुण भक्ति में जब माधुर्य भाव का समावेश होता है, तब रहस्यवाद का उदय होता है । साधना के क्षेत्र में जो ब्रह्म है, साहित्य के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है । निर्गुण काव्य में साधनात्मक, भावात्मक, रहस्यवाद व्यक्त हुआ है । प्रेमाश्रयी शाखा के सूफी काव्यधारा में साधनात्मक रहस्यवाद का चित्रण हुआ है ।

7. भजन तथा नामस्मरण

निर्गुण संत कवि कहते हैं, निर्गुण रूपी राम का नामस्मरण मन ही मन होना चाहिए वह प्रकट नहीं होना चाहिए। इन निर्गुण संत कवियों ने ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रेम और नामस्मरण को परमआवश्यक माना है । कबीर कहते हैं पोथी पढ़ने से कोई पंडित नहीं होता ढ़ाई अक्षर प्रेम के जो जानता है वही सही अर्थों में पंडित कहलाता है । वेद-शास्त्र आदि का ज्ञान निरर्थक है,

''पोथी पढि-पढि जग मुआ, पंडित भया न कोइ ।
ढाई आखर प्रेम के, पढे सी पंडित होई ।।''

8. विरह वर्णन

निर्गुण संत काव्य में विरह वर्णन का सुंदर चित्रण हुआ है । इसमें श्रृंगार तथा शांत रस का अधिक चित्रण हुआ है । इसमें श्रृंगार के संयोग और वियोग पक्ष का मिलाप है । संयोग और वियोग पक्ष का अत्यंत कलात्मक वर्णन हुआ है । उपदेशात्मक उक्तियों में शांत रस का चित्रण हुआ है । उपदेशों में कहीं-कहीं कठोर शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, परंतु इसके पीछे लोकसंग्रह की भावना निहित है । निर्गुण काव्य में

भी सूर जैसा रस और मीरा जैसी विरह की तीव्रता पायी जाती है,

''विरहिन ऊभी पंथ सिर पंथी बूझै थाइ ।
एक शब्द कहि पीव का कबरे मिलेंगे आइ ।।''

''आइ न सकी तुझ पै, सकूं न तुझ बुलाई ।
जियरा यों ही लेहुगे विरह तपाइ-तपाई ।''

संयोग पक्ष के अंतर्गत रूपाकर्षण-जन्मानुराग, प्रिय मिलनातुरता, हर्षोल्लास, प्रथम समागम-भीता, नवोढा की लज्जा, रस रंग में एकात्कता, स्वाधीनपतिका का सहज दर्प, मिलनोत्कंठा, प्रिय-प्रतिक्षा, झूला-झूलना आदि का यथार्थ वर्णन हुआ है । निर्गुण काव्य के वियोग पक्ष में प्रिय को विदेश जाने से रोकना, विरह की दशाओं का वर्णन, पंच्छियों के माध्यम से प्रिय तक संदेश पहुँचाना आदि बातों का चित्रण मिलता है । निर्गुण संतों का श्रृंगार रस और विरह वर्णन लौकिक हो अथवा अलौकिक वह घर-गृहस्थियों के लिए आनंददायक है । संत कवियों का श्रृंगार एवं विरह, व्यक्तित्व धर्म और दर्शन के समान कुछ विलक्षण तथा निराला है । इसमें वासना नहीं है ।

अतः काव्य में संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग पक्ष अधिक प्रभावशाली बन पडा है । निर्गुण संत कवियों ने प्रेम में विरह को अधिक महत्त्व दिया है । विरह की अनुभूति के बिन ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती । प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख हस्ताक्षर जायसी ने 'पद्मावत' में विरह का मार्मिक वर्णन किया है ।

9) लोकसंग्रह की भावना

निर्गुण काव्यधारा के अधिकत्तर कवि पारिवारिक जीवन जीनेवाले थे । इसी कारण उनकी काव्य एवं वाणी में जीवनगत अनुभव की सर्वांगीणता दिखाई देती है । निर्गुण संतों के काव्य में वैयक्तिता की अपेक्षा सामाजिकता अधिक दिखाई देती है । संतों ने समाज को दृष्टि में रखकर आत्म-शुद्धि को अधिक महत्त्व दिया है । नाथ संप्रदाय की साधना व्यक्तिगत और पद्धति शास्त्रीय थी वहीं दूसरी ओर निर्गुण संत कवियों की साधना सामाजिक और पद्धति स्वतंत्र थी । निर्गुण कवि एक ओर भक्ति आंदोलन के उन्नायक है, वहीं दूसरी ओर एक युगद्रष्टा समाजसुधारक भी है । आलोचकों ने कबीर को अपने युग का गांधी कहा है । निर्गुण संत कवियों ने समाज और राजनीति के प्रति आँखें मूँद नहीं रखे थे । निर्गुण संत काव्य में उस समय का समाज प्रतिबिंबित हुआ है । कर्मण्यता इनकी वानी का दूधारी तलवार है ।

10) नारी के प्रति दृष्टिकोन :

निर्गुण कवियों ने नारी को माया का प्रतिक माना है । उनके अनुसार कनक और कामिनी ये दोनों अत्यंत घटियाँ हैं । संत कबीर नारी के संदर्भ में कहते हैं,

''नारी की झाँई परत अंधा होत भुजंग ।
कबिरा तिनकी कौन गति नित नारी के संग ।।''

कबीर ने नारी के कामिनी रूप को माया माना है और इसे निंदनीय कहा है । सभी संत, निर्गुण कवि जीवन में सत्य पक्ष के ग्रहण के पक्षपाती थे और असत्य से उन्हें घृणा थी । वे दुर्जन और स्वार्थी लोगों की कडी निंदा करते थे ।

11) माया और शैतान

निर्गुण कवियों ने अज्ञान अविद्या, मोह आदि को माया कहा है । वे हर किसी को माया से सावधान रहने की सलाह देते हैं, क्योंकि निर्गुण रूपी ईश्वर की प्राप्ति में माया संकट बनकर खडी हो जाती है । माया महाठगिनी है । वह अपनी मधुर वाणी से सभी को जाल में फँसाती है । सूफी कवियों ने अपने काव्य में शैतान का वर्णन किया है । उनके अनुसार साधक के साधना मार्ग में बाधा डालनेवाला शैतान है ।

12) हिंदू और मुसलमानों में एकता :

संत कवि समाज सुधारक थे । इन कवियों ने काव्य के माध्यम से हिंदू तथा मुसलमानों में एकता स्थापित करने का सफल प्रयास किया है । इन्होने हिंदू और मुसलमानों मे फैली विषमता, जाति-पाति, ऊँच-नीचता आदि बातों का खंडन कर हिंदूओं के पंडित और मुसलमानों के मौलवी पर कडा प्रहार किया है । एक ही ईश्वर का संदेश दिया है । दोनों धर्मों में एकता स्थापित करने का प्रयास किया है । सूफी कवि मूलतः स्वभाव से कोमल ऱ्हदय के थे । अतः एकता स्थापित करने में उन्हें अधिक सफलता मिली है ।

13) भाषा एवं शैली

निर्गुण काव्य में मुख्यतः गेय मुक्तक शैली का प्रयोग हुआ है । गीति-काव्य के सभी तत्त्व-भावात्मकता, संगीतात्मकता, सूक्ष्मता, वैयक्तिकता और भाषा की कोमलता इनकी वाणी में मिलते हैं । उपदेशात्मक पदों में गीति-माधुर्य के स्थान पर बौद्धिकता आ गयी है । इनके अतिरिक्त इन्होंने साखी, चौपाई की शैली का भी प्रयोग किया है । जादातर निर्गुण कवि अशिक्षित थे, उन्होंने बोलचाल की भाषा को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया । वे अपने मत का प्रचार-प्रसार करने के लिए इधर-उधर भ्रमण करते रहते थे । निर्गुण संत कवियों की भाषा खिचडी या साधुक्कडी थी । इसमें अवधी, ब्रज, खडी बोली, पूर्वी हिंदी, फारसी, अरबी, राजस्थानी, पंजाबी आदी भाषाओं का मिश्रण दिखाई देता है । इनकी भाषा में बहुत से पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग भी मिलता है जो कि इन्होंने अपने पूर्ववर्ती संप्रदायों से लिए हैं । उदा. शून्य, अनहद, निर्गुण, सगुण, आदि । नाथ संप्रदाय के इंगला और पिंगला आदि शब्दों का भी इन्होंने प्रयोग किया है ।

निर्गुण कवियों की भाषा आडंबरविरहित है । इन्होंने इसे कहीं भी अलंकारिकता से लादने का प्रयास नहीं किया है किंतु अनुभूति की तीव्रता के कारण उसमें काव्योचित सभी गुण आये हैं ।

निर्गुण काव्य सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है । निर्गुण काव्य की निर्मिति जिस युग में हुई वह युग अज्ञान, अशिक्षा और अनैतिकता का युग था । इन्हीं बातों के खिलाफ आवाज उठाने का काम संत कवियों ने किया है । संतों की उपदेशमयी वाणी ने उसमें एक दृढ़ नैतिकता की प्रतिष्ठा की । निर्गुण कवियों ने धर्म का ऐसा स्वाभाविक, निश्चल, व्यावहारिक तथा विश्वासमय रूप जन-भाषा में उपस्थित किया जो कि विश्व धर्म बन गया । वह अब भी जन-जीवन में पुनः जागरण का पावन संदेश दे रहा है ।

काव्य की दृष्टि से भी संत साहित्य ने अपनी अलग पहचान बनायी है । अपनी अनुभूतियों को सहज स्वाभाविक भाषा में अभिव्यक्त करके उन्होंने काव्य के सच्चे स्वरूप का उद्‌घाटन किया । निर्गुण कवियों के बारे में डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त लिखते हैं, ''सच्चे कवि की वाणी में अभिव्यक्ति के साधन स्वतः प्रस्फुटित हो जाते हैं, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण इन कवियों का साहित्य है । भाषा कैसी ही हो भाव चाहिए मित की उक्ति संतकाव्य पर पूर्णतः चरितार्थ होती है ।'' निर्गुण कवियों की वाणी में जो उपदेश है वे केवल दर्शन का विषय न होकर जीवन रस से ओत प्रोत है । निर्गुण संत कवियों ने साहित्य को सत्य, सौंदर्य और शिव से संपन्न किया है ।

3.3.2 कबीर : व्यक्तित्व और कृतितव

जीवनवृत्त : मध्ययुगीन अन्य भक्त एवं संत कवियों के समान कबीर का जीवनवृत्त अंधकारमय है । उनके जन्म, मृत्यु, निवास-स्थान वंश एवं यथार्थ नाम आदि सभी बातों के संदर्भ में स्पष्ट रूप से कहा नहीं जा सकता । परंतु संत कबीर सिकंदर लोधी के समकालीन थे । अनेक देश विदेश के इतिहासकारों ने इतिहास ग्रंथों में इसकी पुष्टी की है । कबीरदास के साहित्य में नामदेव और जयदेव का भी उल्लेख मिलता है, इससे स्पष्ट होता है कि कबीर जयदेव और नामदेव के बाद के कवि हैं । नामदेव का समय तेरहवीं शताब्दी का अंतिम चरण माना गया है । संत पीपा ने कबीर उल्लेख किया है । अतः हम यहाँ कह सकते है कि कबीर नामदेव के बाद के और पीपा के पहले के कवि हैं । संत पीपा का जन्म सं. 1482 माना गया है । 'कबीर चरित्रबोध' में सं. 1455 वि. ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार को कबीर की जन्म तिथि स्वीकार की गई है,

''चौदह सौ पचपन साल गए चद्रावार एक ठाठ ठए ।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी प्रगट भए ।।

डॉ. हजारीप्रसाद द्‌विवेदी, डॉ. माता प्रसाद गुप्त तथा हिंदी के अधिकतर विद्‌वानों ने संवत 1455 जेष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार को कबीर का जन्म माना है । यही तिथि अधिक उपयुक्त एवं तर्कसंगत है ।

गुरू :

स्वामी रामानंद कबीर के गुरू थे । कबीर का कहना है ''काशी में हम प्रगट भये, रामानंद चेताये

।'' कुछ विद्वान शेख तकी को कबीर के गुरू मानते हैं परंतु वह तर्क संगत नहीं है । कबीर ने शेख तकी के प्रति कहीं भी श्रद्धा प्रकट नहीं की है । अतः स्वामी रामानंद ही कबीर के गुरू थे ।

माता–पिता

कबीर के जन्म के संबंध में अनेक किवदंतिया प्रचलित हैं । अधिकतर विद्वानों का मानना है कि कबीर का जन्म एक विधवा ब्राह्मणी की कोख से हुआ । लोकलाज वश विधवा ने नवजात शिशु को काशी के लहरतारा नामक तालाब के निकट फेंक दिया था, जिसका पालन–पोषण निःसंतान जुलाहा दम्पति नीरू और नीमा ने किया । इस बात का समर्थन कबीर ने अपने आप को जुलाह कहकर किया है । कबीर के जन्म और माता–पिता क संबंध में अनेक विद्वानों के मतों को देखने के बाद स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि उनका जन्म सं. 1455 में काशी में हुआ और मृत्यु 1575 में मगहर में हुई ।

पत्नी

कबीर गृहस्थी थे । इनकी पत्नी का नाम लोई था । डॉ. रामकुमार ने इनकी अन्य एक पत्नी मानी है जिसका नाम धनिया या रमजानिया था ।

पुत्र और पुत्री

कमाल और कमाली कबीर के पुत्र और पुत्री थे । कबीर की कई उक्तियों से पता चलता है कि इनका पारिवारिक जीवन सुखी नहीं था । कुछ विद्वानों ने इनके निहाल और निहाली दो और पुत्र तथा पुत्री भी माने हैं ।

व्यक्तित्व

संत कबीर उदार, निर्भीक, स्वतंत्रताप्रेमी, स्वाभिमानी, सत्यवादी, अहिंसा, सत्य और प्रेम के समर्थक जाति–पाति बाह्याडंबरों के विरोधी तथा क्रांतिकारी भावना से ओतप्रोत थे । वे मस्तमौला, लापरवाह एक फक्कड फकीर थे । उनमें विद्रोह की भावना कुट–कुट कर भरी हुई थी । उनमें अदम्य साहस एवं अखंड आत्मविश्वास था । वे प्रतिभावान विलक्षण व्यक्तित्व से संपन्न थे । अनेक दबावों के बावजूद भी वे कभी सिकंदर लोधी के सामने झुके नहीं । हिंदू और मुसलमानों के रोष ने उन्हें तनिक भी विचलित नहीं किया । वे योगियों के प्रभाव से आहत नहीं हुए और नाही सूफी उन्हें अपने संप्रदाय में मिला सके । उन्होंने हमेशा समाज विरोधी बातों का डटकर मुकाबला किया । उन्होंने अंत तक अपनी अटपटी वाणी से उत्तरी भारत का नेतृत्व किया । वे सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक व्यवस्था पर प्रहार करते रहें । कबीर के व्यक्तित्व के संदर्भ में डॉ. हजारीप्रसाद का मंतव्य दृष्टव्य है, ''वे सिर से पैर तक मस्त मौला, स्वभाव से फक्कड, आदत से अक्खड, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग के दुरूस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय थे । युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर पैदा हुए थे और युग प्रवर्तक की दृढता उनमें वर्तमान थी, इसलिए युग प्रवर्तन कर सके ।''

कृतित्व

'बीजक' कबीर की प्रामाणिक रचना मानी गयी है । इसमें कबीर के उपदेशों का शिष्यों द्वारा संकलन है । 'बीजक' के तीन भाग किए गए हैं - साखी, शब्द, रमैनी । कई विद्वानों ने कबीर के ग्रंथों की संख्या 57 से 61 मानी है । अनुराग सार, उग्र गीता, निर्भय ज्ञान, शब्दावली और रेखतों आदि पुस्तकों को कबीर द्वारा रचित माना गया है, परंतु इसके संबंध में प्रामाणिक रूप से कुछ कहना कठिन है ।

साहित्य-समीक्षा

संत कबीर निराकारवादी हैं । कबीर का राम सृष्टि के कन-कन में समाया हुआ है । उसे बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं है । उनका कहना है ''दिरदै सरोवर है अविनासी ।'' कबीर का राम दशरथ पुत्र राम न होकर परम ब्रह्मा का प्रतीक है । कबीर राम को पुकारने की आवश्यकता निश्चित रूप से महसूस करते हैं, इसलिए उन्हें कोई ना कोई नाम देना ही पडता है । कबीर कहते हैं,

''दशरथ सुत तिहू लोक बखाना ।
राम नाम का मरम है आना ।।

कबीर का ऐकेश्वरवाद मुस्लिम एकेश्वरवाद से बिल्कुल भिन्न है । कबीर का निर्गुण ईश्वर व्यापक है । वह समस्त संसार में समाया हुआ है । वह केवल शास्त्रों और पुराणों के अध्ययन एवं ज्ञान से नहीं जाना जाता है बल्कि प्रेमपूर्ण भक्ति से प्राप्त किया जा सकता है । कबीर की भक्ति अनन्य भाव से परिपूर्ण है । जिसमें कर्मकांड, बाह्याडंबरों आदि को बिल्कुल स्थान नहीं है । भक्ति के मार्ग मे माया कनक और कामिनी के रूप में व्यवधान डालती है, अतः कबीर ने इसकी कटु आलोचना की है । कबीर के भक्तिमार्ग में ऊँच-नीच, ब्रह्मण, शूद्र और स्पृश्यास्पृश्य आदि को कोई स्थान नहीं है।' वे कहते हैं,

''जाति पांति पूछै नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई ।

कबीर ने भक्ति और प्रेम के सहारे ब्रह्मा से तादात्म्य करना चाहा है । परमात्मा को पति और आत्मा को पत्नी रूप में कल्पना करके प्रेम का एक महान भारतीय आदर्श रूप उपस्थित किया है। कबीर ने इंद्रिय-साधना और मन साधना पर बल दिया है । कबीर हिंदू और मुसलमानों की साधना की जटिल क्रियाओं, आडंबरों, अंधविश्वासों का विरोध करते हैं । कबीर में वैष्णवों का प्रपत्तिवाद है, जैनों की अहिंसा और बौद्धो की बुद्धिवादिता है । कबीर को किसी भी प्रकार का भाषा शास्त्रीय ज्ञान नहीं था । उन्हें जो भी बात जिस संप्रदाय की अच्छी लगी उसे लिया । उन्हें एक सामान्य भक्तिमार्ग की स्थापना करनी थी और उसके लिए यही माध्यम उपयुक्त था । वे साधना क्षेत्र में महान युग-गुरू और साहित्यिक क्षेत्र में युगद्रष्टा है । संप्रदाय चाहे जो भी उसकी अनुमति की उसे कोई आवश्यकता नहीं थी ।

रहस्यवाद

कबीर हिंदी साहित्य के आदि रहस्यवादी कवि हैं । इस क्षेत्र में उनका अत्यंत उच्च स्थान है । हिंदी आलोचकों ने रहस्यवाद को दो भागों में विभाजित किया है, (क) भावात्मक रहस्यवाद (ख) साधनात्मक रहस्यवाद। कबीर में रहस्यवाद के इन दोनों रूपों का दर्शन होता है कबीर के भावात्मक रहस्यवाद को अनेक अवस्थाओं में विभक्त कर दिया गया है ।

प्रथमावस्था में परमात्मा की आत्मा दिव्य ज्योति के दर्शन से आकर्षित हो जाती है । कबीर अपने प्रियतम के अलौकिक सौंदर्य पर विमुग्ध है । उनके लिए ईश्वर गूँगे के गुड़ के समान है । वे कहते हैं,

''कहत कबीर पुकार के अद्‌भुत कहिये ताहि ।''

द्‌वितीय अवस्था में परमात्मा से मिलने की आतुरता प्रकट की जाती है । इस अवस्था में विरह-मिलन, आशा-निराशा, अभिलाषा, वेदना का अत्यंत सजीव वर्णन हुआ है । कबीर ने मिलन की आतुरता का जिस कलात्मकता और विरह वेदना का जिस मार्मिकता से वर्णन किया है, वह हिंदी साहित्य अद्‌वितीय है । कबीर कहते हैं,

''आँखडिया झाँई पड़ी, पंथ निहारि-निहारि ।
जीभदियाँ छाला पड्या राम पुकरि-पुकारि ।।

''सुखिया सब संसार है खावै और सोवै
दुखिया दास कबीर है, जागै अरू रोवै ।।

तृतीय अवस्था आत्मा और परमात्मा के ऐक्य की है । इस संबंध में कबीर का वर्णन अत्यंत सजीव एवं ऱ्हदयस्पर्शी बन पडा है ।

''लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल ।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल ।।''

कबीर के प्रितम मिलन की आतुरता संसार के किसी भी प्रेम व्यापार से अधिक तीखी है । रात्रि की समाप्ति के पश्चात चकवी के लिए चकवे से मिल सकना संभव है, परंतु कबीर के लिए दिन-रैन दोनों एक समान है,

''चकवि बिछुरी रैन की आई मिली परभाति ।
जो जन बिछुरे राम से ते दिन मिलै न राति ।।''

कबीर में गंभीर रहस्यमय अनुभूतियों, विरह-व्याकुलता, आत्म-समर्पण की उत्कंठा, प्रेमपूर्ण भक्ति, आंतरिक प्रेम की निष्ठा, परमात्मा मिलन की उत्कट अभिलाषा आदि बाते सम्मिलित हैं ।''

कबीर में साधनात्मक रहस्यवाद भी देखा जाता है इनके साहित्य में इंगला, पिंगला, सुषुम्ना, षटदल, त्रिकुटी, सूर्य, चंद्र आदि हठयोग के पारिभाषिक शब्द मिलते हैं ।

कबीर के रहस्यवाद पर शंकर के अद्वैतवाद का प्रभाव था ।

''जल मे कुंभ कुंभ में जल है भीतर बाहर पानी ।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना यह तत कहौ गयानी ।।''

शंकर के समान कबीर ने भी आत्मा और परमात्मा के मिलन में माया को अवरोधक तत्त्व माना है । कहीं-कहीं शंकर के समान संसार को मिथ्या भी माना है । कबीर भावना की अनुभूति से युक्त उत्कृष्ट रहस्यवादी कवि हैं।

सामाजिक पक्ष

संत कबीर भक्त, कवि, सुधारक और युगद्रष्टा भी है । उन्होंने तमाम सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों, रूढियों, सांप्रदायिक कट्टरताओं, कर्मकांडों, आडंबरों आदि पर प्रहार किया है । उन्होंने हिंदू-मुसलमानों के धार्मिक और सामाजिक बाह्याचारों का खंडन किया है । एक और हिंदुओं की मूर्तिपूजा, उपवास, नाम, जाप, तीर्थयात्रा आदि बातों पर प्रहार किया है । वहीं दूसरी ओर मुसलमानों के नमाज, रोजा, हज आदि बातों का भी कडा विरोध किया है । संत कबीर के कालखंड में हिंदू और मुस्लिम जातियों में परस्पर वैमनस्य चरम सीमा पर पहुँच गया था । दक्षिण के अलवार भक्तों का भक्ति का आंदोलन रामानंद के नेतृत्व में उत्तर भारत में पहुँच चुका था । इस आंदोलन में ऊँच-नीच का कोई भेदभाव नहीं था । भक्ति में सभी जाति धर्मों के लोगों को समान अधिकार था । कबीर ने रामानंद को अपना गुरू मानकर इस मत का अनुसरण किया । हिंदुओं में फैली अंधविश्वास पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं,

''पत्थर पुजै हरि मिलै सौ मैं पूँजू पहार ।
तातै चक्की भलि पीस खाये संसार ।''

कबीर मंदिर और तीर्थस्थानों को निरर्थक बताते हैं । वे मस्जिद और हज्ज तथा नमाज की निरर्थकता सिद्ध करते हैं ।

कबीर के समय देश में धर्म की और एक धारा प्रवाहित हो रही थी, वह थी सूफी साधना की धारा । सूफी लोग मुसलमान उल्माओं की तरह कट्टर और संकीर्ण मतवादी न थे और न इन्हे मुस्लिम धर्म के कर्मकांड पर विश्वास था । उनसे परिचित कबीर ने जनता के लिए एक सामान्य मार्ग का निर्देश किया । कबीर के अनुसार भक्ति में ज्ञान महत्त्वपूर्ण है । पोथी पढ़ने से कोई पंडित नहीं होता । ढाई अक्षर प्रेम के जो जानता है वही सही अर्थों में पंडित होता है -

''पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोई ।
ढाई आखर प्रेम के, पढै सो पंडित होई ।।

कबीर ने जातिगत, वंशगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत और शास्त्रगत रूढियों और परंपरा के मायाजाल को बुरी तरह से छिन्न-भिन्न किया है । एक ओर वे पंडितों को खरी-खोटी सुनाते हैं तो वहीं दूसरी ओर मुल्ला की कटु आलोचना करते हैं । एक ओर मंदिर तथा तीर्थस्थानों को निरर्थक बताते हैं तो दूसरी और मस्जिद हज्ज-नमाज आदि पर प्रहार करते हैं । वे कहते हैं,

''अरे इन दाउन राह न पाई'
हिंन्दुन की हिन्दुआई देखी तुरकन की तुरकाई ।।''

वर्णाश्रम व्यवस्था पर व्यंग्य प्रहार करते हुए कबीर कहते हैं, ''तुम किस प्रकार ब्राह्मन हो और हम किस प्रकार शूद्र, हम किस प्रकार घृणित रक्त है और तुम किस प्रकार पवित्र दूध ।'' बनारस के ठग संतों का भंडा फोडने में भी कबीर हिचकिचाते नहीं हैं, ''साढ़े तीन गज की धोती पहने हुए, तिहरे तागे लपेटे हुए, गले जयमाला डाले हुए और हाथ में माला लिए हुए इन अभागों को हरि का संत नहीं कहना चाहिए ये लोग तो बनारस के ठग हैं । राज्य की न्याय व्यवस्था पर प्रहार करते हुए कबीर कहते हैं, ''काजी तुमसे ठीक तरह बोलते नहीं बना, हम तो दीन बेचारे ईश्वर के सेवक हैं, और तुम्हारे मन को राजसी बाते ही भाती है । लेकिन इतना समझ लो कि ईश्वर, धर्म के स्वामी ने कभी अत्याचार करने की अज्ञा नहीं दी ।'' कबीर ने युगानुरूप मानवीय आदर्शों की स्थापना की। कबीर का जीवन और काव्य भारत की सामंती व्यवस्था की रूढ़ियों, पाखंडों और मिथ्याचार के प्रति लडाई है । कबीर ने अनेक वर्षों से चली आर रही संकुचित वृत्ति पर प्रहार करते हुए प्रत्येक व्यक्ति का उदार बना दिया है ।

कलापक्ष

कबीर अशिक्षित थे । उनकी वाणी को अनुयायों (शिष्यों) ने पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया है । वे काव्यशास्त्र, छंदशास्त्र, भाषाशास्त्र आदि से बिल्कुल अंजान थे । उनके काव्य का कलापक्ष अव्यवस्थित और कमजोर है । अनुभूति की सच्चाई पर उनका काव्य खरा उतरता है । कबीर के काव्य के संदर्भ में डॉ. रामकुमार वर्मा का मत इस प्रकार है, ''उनकी काव्यानुभूति इतनी उत्कट थी, कि वे सफलता से महाकवि कहे जा सकते हैं।'' उन्होंने बिना किसी लाग लपेट, आडंबर और कृत्रिमता के जन-जीवन संबंधी अनुभूतियों को सरल और सीधे ढंग से अभिव्यक्त किया है । कबीर के काव्य में यथेष्ठ सरसता, द्रवणशीलता और मार्मिकता है । जहाँ उन्होंने विरहिणी आत्मा के स्पंदन, हास और रूदन, मिलन और बिछडन के चित्र प्रस्तुत किए हैं । यहाँ पर उनके संत, साधक, कवि, भक्त, सुधारक और नेता समस्त रूप एक हो गए हैं । कबीर की सौंदर्यपूर्ण काव्य पंक्तियाँ प्रस्तुत है,

''नैनों अंदर आव तू नैंन झाँपि तोही लेऊँ ।
ना मैं देखू और को ना तोहि देखन देऊँ ।।''

''सपुने में साई मिले, सोबत लिया जगाय ।
आँख न खोलूँ डरपता मति सपना हो जाय ।''

भाषा

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को 'वाणी के डिक्टेटर' कहा है । कबीर के भाषा के संदर्भ में लिखते हैं, ''भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था । वे वाणी के डिक्टेटर थे । जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा दिया, बन गया तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर । भाषा कुछ लाचार सी कबीर के सामने नजर आती है ।'' कबीर स्वभाव से घुम्मक्कड थे । परिणामतः उनकी भाषा में ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी आदि विविध बोलियों का मिश्रण है । इसलिए इनकी भाषा को 'खिचडी या सधुक्कडी' कहा गया है ।

शैली

कबीर अपनी शैली के स्वयं निर्माता है । उनका समस्त काव्य साहित्य मुक्तक शैली में है । उनके व्यक्तित्व का मस्त मौलापन, अक्खडपन और मोजीपन उनकी शैली में अवतरित हो गया है । अतः कबीर की शैली मुक्तक शैली है । इस शैली में अभिव्यक्ति के सभी गुण विद्यमान है । उन्होने मुक्तक शैली के माध्यम से समाज में फैली विषमता, जाति-पाँति, सामाजिक आडंबर, धर्मांधता आदि बातों पर प्रहार किया है ।

अलंकार

कबीर अशिक्षित थे फिर भी काव्य में उन्होंने भारी मात्रा में अलंकारों का प्रयोग किया है । उन्हें भावों को सहज में चमत्कृत कर देनेवाले अलंकारों का भी ज्ञान था । उनके काव्य में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतिवस्तुपमा, यमक, अनुप्रास, मालोपमा, विरोधाभास, निदर्शना, दृष्टांत, अर्थांतरन्यास तथा पर्यायोक्ति आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग है । रूपक अलंकार का अधिक प्रयोग हुआ है । एक उदाहरण प्रस्तुत है,

''नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाई ।
पलकों की चिक डारि के पिय को लिया रिझाई ।।

प्रतीक, छंद

कबीर काव्यशास्त्र, छंदशास्त्र, भाषाशास्त्र, आदि के ज्ञानी नहीं थे परंतु उनके काव्य में प्रतीक-छंद का अनुपम संगम हुआ है । प्रतीक योजना कबीर के काव्य की सबसे बड़ी ताकत है । उन्होंने दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति प्रतिकों के माध्यम से की है । कबीर के काव्य में दोहा, सोरठा, रमैनी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है । दोहा और सोरठा उनके अधिक प्रिय छंद हैं ।

अतः हम कह सकते हैं कि संत कबीर निर्गुण भक्तिधारा के प्रमुख हस्ताक्षर हैं । वे भक्तिकाल के प्रमुख एवं युगद्रष्टा कवि थे । कबीर साहित्य और धर्म के क्षेत्र में एक नवीन क्रांति के जनक थे । कबीर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व हिंदी साहित्य और समाज के लिए इक्कीसवी शती में भी अनमोल रत्न है ।

3.3.3 जायसी : व्यक्तित्व और कृतित्व

मलिक महमद जायसी प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि हैं । इन्हें सूफी काव्यधारा के सबसे सफल कवि भी कहा जाता है । 'पद्मावत' उनकी सबसे महानतम् कृति है । 'पद्मावत' का स्थान हिंदी के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यों में है । जायसी के काव्य में सूफी काव्य की सभी विशेषताएँ मिलती हैं । जायसी को प्रेम 'प्रेम पीर' के प्रचारक भी कहा जाता है ।

जीवनवृत्त

जायसी के जन्मतिथि के संदर्भ में निश्चित रूप से कहना कठिन है । भक्तिकालीन अन्य कवियों के समान जायसी का जीवनवृत्त भी अंध:कारमय है । अनुमान के आधार पर इस विषय के संदर्भ में कुछ कहा जा सकता है । जायसी ने अपनी रचना 'आखरी कलाम' में लिखा है,

''भौ अवतार और नौ सदी ।
तीस बस ऊपर कवि वदी ।''

अर्थात जायसी नवी सदी (900) हिजरी में जन्मे थे । तीस वर्ष की आवस्था में उन्होंने 'आखरी कलाम' लिखना आरंभ किया । जायसी ने 'पद्मावत' में शासक शेरशाह का उल्लेख किया है । इससे यह निश्चित होता है कि जायसी शेरशाह के समकालीन थे ।

जन्म

'जायस नगर मोर अस्थानू' के अनुसार मलिक महमद जायसी का जन्म 900 हिजरी को रायबरेली में जायसनगर में हुआ । जायस नगर में जन्म होने के कारण ही इन्हें जायसी कहा गया । जायसी ने अपनी रचनाओं में अन्य किसी स्थान का उल्लेख नहीं किया है ।

डॉ. सुधाकर द्विवेदी तथा आचार्य ग्रियर्सन ने निम्नांकित पंक्तियों के आधार पर जायसी का जन्मस्थान जायस माना है,

''जायस नगर मोर अस्थानू,
तहां आइ कवि कीन्ह बखानू ।

तथा

तहा दिवस दस पाहुने आएऊँ

इन्होंने अनुमान लगाया है कि जायसी किसी दूसरे स्थान से आकर यहाँ पर बसे थे, किंतु आचार्य शुक्ल का कहना है कि ये जायस नगर के ही निवासी थे । जायसी ने अपनी रचनाओं में अन्य किसी स्थान का उल्लेख नहीं किया है ।

गुरू

'सय्यद अशरफ' जायसी के गुरू थे । अपने गुरू के बारे में स्वयं जायसी ने लिखा है,

''सय्यद अशरफ पीर हमारा।
जेहि-मोहि पंथ वीन्ह उजियारा ।।

माता-पिता

जायसी के पिता का नाम मलिक शेख ममरेज या मलिक राजे अशरफ था । सर्व सहमति से मलिक शेख ममरेज को ही जायसी के पिता के रूप में स्वीकार किया गया था। जायसी जब छोटे थे तभी उनके माता-पिता का देहांत हो गया था। माता-पिता की मृत्यु के कारण उनका बचपन साधुओं और फकिरों के संगति में गुजरा । प्राप्त कीवंदंतियों के अनुसार उनका विवाह भी हुआ था ।

व्यक्तित्व :

जायसी बचपन से अनाथ थे । बचपन में माता-पिता की मृत्यु होने के कारण ये साधुओं और फकिरों की संगति में रहते थे । माना जाता है कि जायसी दिखने में बहुत करूप थे । उन्हें एक आँख और एक कान नहीं था। जहाँ ईश्वर ने उन्हें कुरूप बनाया था वहीं दूसरी ओर मधुर कंठ दिया था । वे अपनी रचनाएँ गाकर सुनाते थे । जायसी कबीर की तरह बहुश्रुत थे । भ्रमण और सत्संग के आधार पर उन्होने विविध विषयों का गहरा ज्ञान प्राप्त किया था । उनकी शिक्षा अनियमित थी । वे अत्यंत होशियार और होनहार थे । उन्होंने आँखों से देखकर सुनकर विविध विषयों का ज्ञान प्राप्त किया था । उन्हें भाषाओं का इतिहास, राजनीति आदि विषयों का अच्छा ज्ञान था । हिंदू, ईस्लाम आदि धर्मों की जीवन शैली, रीति-रिवाज आदि बातों का परिपूर्ण ज्ञान था । जायसी सूफी मत के फकीर कवि थे । वे स्वभाव से सरल, उदार एवं मुलायम प्रकृति के व्यक्ति थे । जायसी के गुण विशेषताओं के संदर्भ में डॉ. जयदेव लिखते हैं, ''मलिक साहब बडे सत-चरित्र, कर्तव्यनिष्ठ गुरूभक्त थे । इनकी सरलता, सन्हदयता, अनुभवशीलता एवं विलक्षणता इनके काव्य में पूर्ण रूप में प्रकट होती है ।''

साहित्य समीक्षा

जायसी द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या को लेकर विद्वानों में मतभिन्नता है । नवनवीन अनुसंधानों के बाद उनके ग्रंथों की संख्या 24 स्वीकार की गयी है। इनमें से पांच ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं । 'पद्मावत', 'अखरावट', 'आखरी कलाम', 'महरी बाइसी', 'चित्रलेखा' आदि । 'पद्मावत' उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है । 'आखरी कलाम' और 'अखरावट' का सांप्रदायिक दृष्टि से महत्त्व है, साहित्यिक दृष्टि से कुछ महत्त्व नहीं 'आखरी कलाम' में सृष्टि के अंत तथा मुहम्मद साहब के महत्त्व का वर्णन है । इसमें बताया गया है कि सृष्टि के अंत में क्या आवस्था होती है तथा उस समय जिब्राईल आदि फरिश्ते क्या करते हैं । यह एक सूफी सिद्धांतों का ग्रंथ है । 'अखरावट' में ईश्वर, जीव, ब्रह्मा, सृष्टि निर्माण, गुरू तथा

धर्माचार आदि की सैद्धांतिक विवेचना की गयी है । प्राप्त इन सभी रचनाओं में 'पद्मावत' उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है ।

'पद्मावत'

'पद्मावत' सूफी काव्य परंपरा एवं जायसी का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है । इसे हिंदी साहित्य का अनमोल रत्न भी कहा जाता है । इसमें राजा रत्नसेन और पद्मावती की लौकिक प्रेम कहानी के द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की गयी है । जायसी ने पद्मावत में लोक-प्रचलित कथा में ऐतिहासिकता का भी सुंदर समन्वय कर दिया है । 'पद्मावत' की खास विशेषता यह है कि इसमें प्रेम की साधना और सिद्धि दोनों अवस्थाओं का चित्रण किया गया है । सहिष्णुता, समन्वयात्मकता और संग्राहक बुद्धि का उदय उस युग की एक खास विशेषता है । इस ग्रंथ के बीच-बीच में रहस्यवाद की सुंदर सृष्टि हुई है । इस ग्रंथ का सांस्कृतिक तथा साहित्यिक दृष्टि से महत्त्व है । इसमें सिर्फ प्रेमवर्णन ही नहीं लोकपक्ष भी है।

लोकपक्ष

कबीर की भर्त्सनामयी वाणी का प्रभाव पंडितों और मुल्लाओं पर तो नहीं पडा किंतु साधारण जनता राम और रहिम की एकता मानने लगी थी । मुसलमान हिंदुओं की राम कहानी सूनने के लिए लालायित हो उठे थे । अतः 'पद्मावत' उस युग की साधना ही सिद्ध हुई और उसके प्रतिनिधि हुए जायसी । उनका यह उद्घोष चारों ओर गुँज उठा,

''बिरछि एक लागी हुई डारा, एकहि ते नाना प्रकारा ।''
''माता के रक्त पिता के बिंदू, उपनै दुवौ तुरक और हिंदू ।''

कबीर के समान जायसी भी जन-जीवन के अधिक निकट पहुँचे थे । जायसी ने जहाँ हिंदू घराने की लौकिक प्रेम कहानी के माध्यम से अलौकिक प्रेम कहानी की अभिव्यंजना की वहाँ हिंदू मुस्लिम संस्कृतियों का भी समन्वय किया । उन्होंने हिंदू पात्रों में हिंदू आदर्शों की प्रतिष्ठा दी है । पात्रों का चरित्र-चित्रण हिंदू जीवन से साम्य रखता है । जायसी ने प्रेम की अत्यंत मनोवैज्ञानिक पद्धति के द्वारा बड़ी कोमलता और काव्यमयता के साथ हिंदू-मुस्लिम ऱ्हदयों के अजनबीपन को मिटाया ।

रहस्यवाद

जायसी में सूफी रहस्यवाद पूर्ण रूप में पाया जाता है । किंतु वे भारत के कवि थे, उनके रहस्यवाद पर अद्वैतवाद का भी यथेष्ट प्रभाव है । जायसी ने भी अपनी प्रेम कहानी में पद्मावती को परमात्मा और रत्नसेन को आत्मा के रूप में चित्रित किया है । जायसी ने प्रकृति के सभी पदार्थों को ईश्वरीय छाया से उद्भासित कहा है । पद्मावत का प्रेम खंड रहस्यवाद का सुंदर उदाहरण है । रत्नसेन हीरामन तोते के द्वारा पद्मावत के नख-शिख के सौंदर्यमय वर्णन को सुनकर बेहोश हो जाता है । जायसी ने यद्यपि यह दिखाया है कि परमात्मा की ज्योति सर्वत्र व्याप्त है तथापि उन्होंने अपने अंतर को भी परमात्मा के प्रकाश से रहित

माना है । उनका यह कथन है कि परमात्मा ऱ्हदय में निहित है, केवल उससे साक्षात्कार करानेवाले की आवश्यकता है,

''पिउ ऱ्हदय म हैं भेट न होई । को रे मिलाव कहों केहि रोई ।।

जायसी जैसी तीव्र विरह-अनुभूति बहुत कम कवियों में पायी जाती है । उनका विश्वास है कि प्रेम में ही प्रियतम निवास करता है ।

''पेमहि माँह विरह सरसा । मेन के घर वधु अमृत बरसा ।।

अतः जायसी का रहस्यवाद सूफी रहस्यवाद के अनुकूल है और साथ-साथ उसमें भारतीय अद्वैतवाद की भी झलक है।

पद्मावत का महाकाव्यत्व :

निःसंदेह पद्मावत हिंदी का महाकाव्य है। महाकाव्य के सभी लक्षण पद्मावत में दिखाई देते हैं । कथा का पूर्वार्ध लोकप्रचिलत और काल्पनिक है तथा उत्तरार्ध ऐतिहासिक । इसका नायक राजकुल से संबंधित है । पूरी कथा 52 सर्गों में विभाजित है। कथावस्तु में वस्तु वर्णन भी अत्यंत सटिक है । इसका प्रधान रस श्रृंगार है किंतु अन्य रसों का भी समावेश है । इसमें सिर्फ एकांतिक प्रेम कहानी न होकर लोकपक्ष का भी सुंदर समन्वय हुआ है । कथा में स्वाभाविक प्रभाव है । मंगलाचरण, सज्जनप्रशंसा तथा दुर्जन निंदा आदि सभी बातें सम्मिलित हैं।

रस

पद्मावत का प्रधान रस रसराज श्रृंगार है । 'पद्मावत' में श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनें पक्षों का अच्छा परिपाक हुआ है । संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग पक्ष अधिक प्रभावशाली दिखाई देता है । नागमती के माध्यम से वर्णित विप्रलम्भ श्रृंगार इनके अक्षय यश का अलोक स्तम्भ है । जायसी के विरह वर्णन में इतनी व्यापकता, तीव्रता, मार्मिकता और तन्मयता है कि समस्त जगत, जड एवं चेतन उससे द्रविभूत हो जाती है । निम्न काव्य पंक्तियों से जायसी के विरह की व्यापकता का पता चलता है।

''नैनन चली रकत है धारा, कंथा भीजि भएउ रतनारा ।
सूरज बूड़ि उठा हुइ राता, औ मजीठ टेसू बन राता ।।

पद्मावत के प्रेम में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है फिर भी नागमती के विरह में एक विशेष तीव्रता और मार्मिकता है । नागमती को पति-वियोग तो था ही साथ-साथ सपत्नी के प्रति ईर्ष्याभाव ने उसे और भी तीव्र बना दिया था । वह विरह में जलकर कोयला हो गयी। उसके शरीर में तोला भर मांस भी नहीं रहा उसमें रक्त तो नाममात्र भी नहीं था । इसका सुंदर वर्णन करते हुए जायसी लिखते हैं,

हाड़ नये सब किगरी, नसै मई सब तांति ।
रविं रोंब से धुनि उठे, कहीं विथा केहि भाँति ।।

नागमती एक आदर्श हिंदू महिला है । उसमें पति भक्ति पूर्ण रूप से विद्यमान है । उसके प्रेम में ऐद्रियता की अपेक्षा मानसिक पक्ष की प्रधानता है । उसमें एक महान त्याग है जो उसे बहुत ऊँचा उठाता है,

''मोहि भोग सो काम न बारी, सौंह विस्टि की चाहनि हारी ।''

नागमती के विरह वर्णन में बारहमासा का एक विशेष स्थान है । प्रत्येक मास की प्राकृतिक दशा के साथ नागमती के ऱ्हदय के शोक और हर्ष की जो अभिव्यंजना की गई है । वह वस्तुतः अनुपम है । नागमती के निम्नांकित शब्दों में कितनी स्वाभाविकता, कितना दैन्य, कितनी उत्कंठा और कितनी प्रेम-निष्ठा है, इसका एक विरह ऱ्हदय अनुमान लगा सकता है,

यह तन जारौ छार कै, कहाँ कि पवन उडाय ।
मकु तिहि मारग उड़ि परै, कंत घरै जहै पाय ।

जायसी को संयोग पक्ष में अधिक सफलता नहीं मिली है । संयोग श्रृंगार के वर्णन में षट्-ऋतु का वर्णन किया है और उसमें कुछ हास्य विनोद का भी विधान है । समागम के समय के हाव भावों के वर्णन में कहीं तो कोरी छेड़छाड़ है जो फटकार और अश्लीलता की कोटि में पहुँच जाती है ।

श्रृंगार रस के अतिरिक्त अन्य रसों का भी प्रयोग हुआ है । रत्नसेन के सिंहल-गमन, रानियों का विलाप तथा रत्नसेन की मृत्यु के प्रकरणों में करुण रस का अच्छा परिपाक हुआ है । युद्ध वर्णन में वीभत्स का अच्छा उद्रेक है । वीर रस के प्रसंग भी प्रस्तुत हैं । रत्नसेन ने वैराग्य धारण करने पर शांत रस का निर्वाह हुआ है ।

'पद्मावत' एक घटना प्रधान काव्य है । जायसी ने इसे रसात्मक बनाने के लिए वर्णनात्मक पर अत्यधिक बल दिया है । कहीं-कहीं पर वर्णनात्मकता की वृत्ति इतनी बढी-चढी हुई दिखाई देती है कि पाठक उबने लगता है।

प्रकृति चित्रण

प्रकृति चित्रण दो प्रकार का होता है - अतः प्रकृतिचित्रण और बाह्य प्रकृति-चित्रण । अतः प्रकृति-चित्रण की द्रष्टि से 'पद्मावत' का कोई विशेष महत्त्व नहीं है । जायसी ने भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकृति का चित्रण किया है । उनकी प्रमुख शैलियों में परिगणन शैली, अतिशयोक्तिपूर्ण शैली, उपमान शैली, और रहस्यात्मक शैली आदि शैलियों का प्रयोग प्रकृति-चित्रण में किया है ।

चरित्र चित्रण

जायसी का चरित्र-चित्रण एकदेशीय है । 'पद्मावत' में 'रामचरितमानस' जैसी अनेकरूपता नहीं है । तुलसी के राम में जैसे शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय है, वैसा जायसी में नहीं है । रत्नसेन एक आदर्श प्रेमी है, पद्मावती आदर्श प्रेमिका, नागमती एक आदर्श हिंदू रमणी और गोरा बादल आदर्श वीर है । जायसी ने अन्य सूफी कवियों के समान अपनी कथा को एकांतिक प्रेम कहानी होने से बचा लिया है क्योंकि जायसी ने उसमें लोकपक्ष का भी समावेश कर दिया है । जायसी ने पद्मावत में सात्विक और तामसिक दोनों प्रकार के पात्रों का चित्रण किया है । अल्लाउद्दीन तामसी पात्र है जो कामी और लोभी है । राघवचेतन छली और कृतघ्न है । 'पद्मावत' में हिंदू पात्रों का उनकी संस्कृति के अनुरूप बडी सन्हदयता से चित्रित किया है ।

अलंकार

जायसी ने सादृश्यमूलक अलंकारों का सफल प्रयोग किया है, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा जायसी के प्रिय अलंकार हैं । अनेक स्थलों पर उन्होंने स्वभावोक्ति, अन्यौक्ति और रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का बहुत सुंदर प्रयोग किया है । इसके अलावा श्लेष, व्यतिरेक, तद्गुण, विभावना, संदेह, अनुप्रास तथा निदर्शना आदि अलंकारों का भी सफल प्रयोग किया है । इनके साहित्य में अपमानों की इतनी अधिक संख्या है जो शायद ही हिंदी साहित्य के किसी अन्य कवि में मिले ।

छंद :

जायसी ने साहित्य में दोहा, चौपाई इन छंदों को अपनाया है और उनका अवधी भाषा में इतना सफल प्रयोग किया है कि वे कदाचित हिंदी की ख्यातनाम रचना 'रामचरितमानस' के रचनाकार तुलसीदास को भी पीछे छोड़ गए हैं । इसी कारण 'पद्मावत' की शैली को 'दोहा-चौपाई' कहा जाता है । छंदों का अवधी भाषा में इतना सफल प्रयोग शायद ही अन्य किसी कवि ने किया हो ।

भाषा :

जायसी ने 'ठेठ अवधी' की पूर्वीपन के अपनाया है । 'पद्मावत' की भाषा 'ठेठ अवधी' है । परंतु जायसी की अवधी प्रयोग असंस्कृत है, किंतु भाषा की स्वाभाविकता, सरसता और मनोगत भावों की प्रकाशन सामग्री ने जायसी को अवधी साहित्य क्षेत्र में स्वीकार किया है । जायसी की अवधी में तुलसीदास जैसी साहित्यिकता और पांडित्य नहीं है । जायसी की भाषा प्रसाद और माधुर्य गुण से परिपूर्ण है । जायसी की भाषा में अनेक दोष है, फिर भी इन्होंने अवधी को साहित्य क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान दिलाने का सफल प्रयास किया है ।

अतः जायसी के साहित्य में कुछ गुण और दोष पाए जाते हैं फिर भी जायसी को भारतीय साहित्य जगत एवं संस्कृति में विशिष्ठ स्थान प्राप्त है । हिंदू और मुसलमानों में सांस्कृतिक समन्वय स्थापित करने

का काम जायसी ने अपने साहित्य के माध्यम से किया है । बाबु गुलाबराय जायसी के संदर्भ में लिखते हैं, ''जायसी महान कवि हैं । उनमें कवि के समस्त सहज गुण विद्यमान है । उसने सामायिक समस्या के लिए प्रेम की पीर की देन दी । उस पीर को अपनी शक्तिशाली महाकाव्य के द्‌वारा उपस्थित किया । वह अमर है ।''

3.4 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न

प्रश्न 1 : निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए ।

1. ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि ..... हैं ।
   (अ) कबीर (ब) जायसी (क) तुलसीदास (ड) सूरदास

2. 'बीजक' ..... की प्रामाणिक रचना है ।
   (अ) जायसी (ब) सूरदास (क) कबीर (ड) तुलसीदास

3. संत कबीर की भाषा ..... थी ।
   (अ) ब्रज (ब) राजस्थानी (क) अवधी (ड) सधुक्कडी (खिचडी)

4. संत कबीर का जन्म ..... में हुआ ।
   (अ) सं. 1955 (ब) सं. 1455 (क) सं. 1655 (ड) सं. 1755

5. कबीर का पालन–पोषण ..... ने किया ।
   (अ) नीरू–नीमा (ब) वीरू तथा भीमा (क) सीमा (ड) धीमा

6. कबीर की मृत्यु ..... में हुई ।
   (अ) वाराणसी (ब) उज्जैयन (क) मगहर (ड) काशी

7. कबीर के गुरू ..... थे ।
   (अ) रामानंद (ब) शंकरानंद (क) घनानंद (ड) वल्लभाचार्य

8. कबीर ..... के समकालीन थे ।
   (अ) जहाँगीर (ब) अकबर (क) शहाजहाँ (ड) सिकंदर लोधी

9. ..... को 'वाणी के डिक्टेटर' कहा जाता है ।
   (अ) जायसी (ब) कबीर (क) तुलसी (ड) सूर

10. प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि ..... हैं ।
    (अ) कबीर (ब) घनानंद (क) जायसी (ड) तुलसीदास

11. जायसी का जन्म ..... हिजरी को हुआ ।
(अ) 900 (ब) 1000 (क) 950 (ड) 800

12. जायसी के गुरू का नाम ..... था ।
(अ) सय्यद अशरफ (ब) मुहम्मद (क) अकबर (ड) मुबारक

13. सूफी परंपरा मूलतः ..... देश की है ।
(अ) पाकिस्तान (ब) अफगाणिस्तान (क) ईरान (ड) इराक

14. 'पद्मावत' के रचयिता ..... है ।
(अ) जायसी (ब) कबीर (क) सूर (ड) तुलसी

15. 'पद्मावत' में ..... सर्ग है ।
(अ) 55 (ब) 52 (क) 58 (ड) 60

16. 'पद्मावत' का नायक ..... है ।
(अ) रत्नसेन (ब) वीरसेन (क) भीमसेन (ड) तानसेन

17. 'पद्मावत' का प्रधान रस ..... है ।
(अ) वीर (ब) करुण (क) श्रृंगार (ड) रौद्र

18. 'पद्मावत' की भाषा ..... है ।
(अ) राजस्थानी (ब) अवधी (क) ठेठ अवधी (ड) ब्रज

19. नागमती के विरह वर्णन में ..... का विशेष स्थान है ।
(अ) बारामासा (ब) छमासा (क) ग्यारहमासा (ड) पंधरहमासा

प्रश्न 1 (आ) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए ।

1. कबीर का जन्मस्थान कौनसा है ।
2. कबीर किस शाखा के प्रमुख कवि हैं ?
3. कबीर के समय दिल्ली का बादशाह कौन था ?
4. प्रेम पीर के प्रचारक कवि किसे कहा जाता है ?
5. 'पद्मावत' के रचयिता कौन है ?
6. कबीर का पालन पोषण किसने किया ?
7. भक्तिकाल का कालखंड कहाँ से कहाँ तक माना गया है ?
8. 'निर्गुण भक्तिधारा' के अंतर्गत कौनसी दो शाखाएँ आती हैं ?

9. 'कागज मसि छुओ नहीं, कलम गहिं नहीं हाथ' यह उक्ति किसकी है ?

10. 'पद्मावत' में जायसी ने कौनसे दो छंदों का प्रयोग किया है ?

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

जुलाहा – कपडे बुननेवाला

गयानी – ज्ञानी

तत् – तत्त्व

आखर – अक्षर

द्राविडी – द्रविड प्रदेश से संबंधित (विशेष रूप से आंध्रप्रदेश की तेलगु, तमिलनाडू की तमिल, कर्नाटक की कन्नड से संबधित)

सधुक्कडी – साधुओं की भाषा, जिस भाषा में अलग-अलग भाषाओं का मिश्रण होता है और जो घुमक्कड लोगों द्वारा बोली जाती है तथा सामान्य व्यक्ति जिसे सहजता से समझा है, उसे सधुक्कडी भाषा कहा जाता है ।

3.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1(अ)

(1) कबीर	(2) कबीर	(3) सधुक्कडी (खिचडी)
(4) सं. 1455	(5) नीरू तथा नीमा	(6) मगहर
(7) रामानंद	(8) सिकंदर लोधी	(9) कबीर
(10) जायसी	(11) 900	(12) सय्यद अशरफ
(13) ईरान	(14) जायसी	(15) 52
(16) रत्नसेन	(17) श्रृंगार	(18) ठेठ अवधी
(19) बारामासा		

प्रश्न (आ)

1. कबीर का जन्मस्थान काशी है ।
2. कबीर निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि है ।
3. कबीर के समय दिल्ली का बादशाह सिकंदर लोधी था ।

4. प्रेमपीर के प्रचारक कवि जायसी को कहा जाता है ।

5. 'पद्मावत' के रचयिता जायसी है ।

6. कबीर का पालन-पोषण नीरू तथा नीमा ने किया ।

7. भक्तिकाल का कालखंड संवत् 1375 से संवत 1700 तक माना गया है ।

8. निर्गुण भक्तिधारा के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी ये दो शाखाएँ आती हैं ।

9. 'कागज मसि छुओ नहीं, कलम गहिं नहीं हाथ' यह उक्ति संत कबीर की है ।

10. 'पद्मावत' में जायसी ने दोहा और चौपाई इन दो छंदों का प्रयोग किया है ।

3.7 सारांश

1. निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी ये दोन प्रमुख शाखा है ।

2. निर्गुण भक्तिधारा में ईश्वर को निर्गुण-निराकार माना है ।

3. संत कबीर युगद्रष्टा कवि के रूप में उभरकर आते हैं ।

4. 'बीजक' कबीर की प्रामाणिक रचना है ।

5. जायसी प्रेमाश्रयी शाखा के प्रवर्तक है ।

6. 'पद्मावत' जायसी का प्रसिद्ध महाकाव्य है ।

7. जायसी ने सूफी काव्य परंपरा का प्रचार-प्रसार किया है ।

8. कबीर तथा जायसी ने लोगों में एकता स्थापित करने का सफल प्रयास किया है ।

3.8 स्वाध्याय

1. ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखा का सामान्य परिचय ।

2. कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व पर पर प्रकाश डालिए ।

3. युगद्रष्टा कवि कबीर : समझाइए ।

4. जायसी के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय दीजिए ।

5. 'पद्मावत' के महाकाव्यत्व का परिचय दीजिए ।

3.9 क्षेत्रीय कार्य

1. कबीर के समाज सुधार सम्बन्धी दस साखियों का संकलन कीजिए।

2. कबीर और तुकाराम के दस समान विचारोंवाले दोहों-अभंगों को प्राप्त कीजिए।

3. सूफी प्रेम काव्यों की सूची तैयार कीजिए।

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. डॉ. शिवकुमार शर्मा – 'हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ'
2. आ. रामचंद्र शुक्ल – 'हिंदी साहित्य का इतिहास'
3. डॉ. धीरेंद्र वर्मा – 'हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास'
4. आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – 'हिंदी साहित्य का अतीत'
5. डॉ. रमेशचंद्र शर्मा – 'हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास'

●●●

इकाई 4
सगुण भक्तिधारा

अनुक्रम :

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विषय – विवेचन

4.3.1 सगुण भक्तिधारा की सामान्य विशेषताएँ ।

4.3.2 तुलसीदास : व्यक्तित्व और कृतित्व ।

4.3.3 सूरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व ।

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

4.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 स्वाध्याय

4.9 क्षेत्रीय कार्य

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.1 **उद्देश्य :**

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

1) सगुण शाखा की सामान्य विशेषताओं से परिचित होंगे।

2) भक्तिकाल की सगुण शाखा से परिचित होंगे ।

3) सगुण भक्तिधारा की रामभक्ति शाखा से परिचित होंगे ।

4) रामभक्ति शाखा के प्रमुख गोस्वामी तुलसीदास के व्यक्तित्व से परिचित होंगे ।

5) गोस्वामी तुलसीदास के कृतित्व से परिचित होंगे ।

6) सगुण भक्तिधारा की कृष्णभक्ति शाखा से परिचित होंगे ।

7) कृष्णभक्ति धारा के प्रमुख कवि सूरदास के व्यक्तित्व से परिचित होंगे ।

8) कवि सूरदास के कृतित्व से परिचित होंगे।

4.2 प्रस्तावना :

भारतीय धर्म साधना में भक्ति की एक सुस्पष्ट एवं सुदीर्घ परंपरा रही है। सामान्यत: ईश्वर के दो रूप मने गये हैं- सगुण एवं निर्गुण। जब परमात्मा को निराकार, अनादि, अगोचर, सर्वव्यापी मानकर उसकी विवेचना की जाती है तब उसे निर्गुण ब्रम्ह कहा जाता है और जब वहीं ब्रम्ह सगुण-साकार रूप धारण कर नर शरीर ग्रहण कर नाना प्रकार के कृत्य करता है तब उसे सगुण परमात्मा के रूप में जाना जाता है। राम, कृष्ण आदि शरीरधारी परमात्मा के सगुण साकार रूप हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, ''सगुणोपासक भक्त भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूप ज्ञानमार्गियों के लिए छोड. देता है।'' सगुण भक्ति में जहाँ लीलावतार को आराध्य माना गया है वहीं निर्गुण भक्ति में ब्रम्हज्ञान और योगसाधना को विशेष स्थान दिया गया है। सगुण भक्ति में भगवत् कृपा को विशेष महत्त्व मिला है तो निर्गुण भक्ति ब्रम्हानुभूति पर विशेष बल देती है। सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से सगुण भक्ति को महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। सगुणोपासकों की धारणा है कि भक्त की अनुभूति के लिए, भक्ति के लिए रूपाकार, साकार, मूर्त आधार की आवश्यकता होती है। हिंदी का सगुण संप्रदाय वैष्णव धर्म से पोषण प्राप्त करता है। इस संप्रदाय की दोनों शाखाओं राम-भक्ति धारा और कृष्ण-भक्ति धारा में ईश्वर सगुण है।

हिंदी राम-भक्ति धारा में अनेक कवि हुए किंतु राम-भक्ति धारा का साहित्यिक महत्त्व अकेले तुलसीदास के कारण है। तुलसी की अपूर्व प्रतिभा के कारण साहित्याकाश में उनका स्थान सूर्य का है। इसलिए राम-भक्ति धारा का अध्ययन तुलसीदास में ही केंद्रित हो जाता है।

4.3 विषय विवेचन :

हिंदी साहित्य के इतिहास का द्वितीय चरण भक्ति की प्रवृत्ति से परिपूर्ण रहा है। सर जार्ज ग्रियर्सन ने भक्ति आंदोलन को 'पन्द्रहवीं शती का धार्मिक पुनर्जागरण' कहा है। उनके अनुसार ''इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं बल्कि भावावेश का विषय हो गया था।'' इस कालखंड में भक्तिभाव की प्रधानता रहीं, साथ ही इस काल के कवियों को भक्त-कवि के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'धर्म की रसात्मक अनुभूति को भक्ति कहा है।' शुक्ल जी भक्तिभाव का मूल स्त्रोत दक्षिण भारत को मानते हैं। उनके अनुसार ''भक्ति के आंदोलन की जो लहर दक्षिण से आयी उसीने

उत्तर भारत की परिस्थिति के अनुरुप हिंदू-मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग की भावना कुछ लोगों में जगाई।'' महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत नामदेव पहले ही इस प्रकार की भक्ति भावना का प्रचार कर रहे थे।

भक्ति का मूल स्रोत दक्षिण भारत रहा है। डॉ. सत्येंद्र के अनुसार भक्ति का उदय द्राविडों में हुआ - ''भक्ति द्राविडी ऊपजी लाए रामानंद।'' तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के साथ-साथ धार्मिक परीस्थितियों ने भी भक्ति के प्रसार में योगदान दिया। दक्षिण के आलवार भक्तों ने भक्ति भाव की उच्च स्थिति प्राप्त कर ली थी। आचार्य हजारप्रसाद द्विवेदी ने इन्हीं आलवार भक्तों को ही भक्ति आंदोलन के सूत्रपात का श्रेय दिया है। रामानंद, वल्लभाचार्य जैसे विद्वानों ने अपने सिद्धांतों की स्थापना के द्वारा इस भक्ति भाव एवं अवतारवाद को दृढ किया और बाद में सूर-तुलसी ने उसे काव्य रूप प्रदान किया।

सगुणोपासक भक्त कवियों का सारा प्रयत्न इस ओर केंद्रित था कि हिंदू समाज को विघटन और उत्पीडन से बचाया जाय। इसलिए उन्होंने हिंदू समाज के विभिन्न घटकों को संगठित करने का कार्य किया। उनकी समन्वयवादी विचारधारा के पीछे मूल धारणा यही थी। उत्तर-दक्षिण का भेद समाप्त हो गया और दक्षिण के अनेक आचार्य रामानुज, राघवाचार्य, वल्लभाचार्य जी उत्तर भारत में वृंदावन मथुरा में आकर रहने लगे। इसी प्रकार शैव-वैष्णव का भेद, सगुण-निर्गुण का भेद भी समाप्त होने लगा। तुलसीदास का 'रामचरितमानस्' इस दिशा में किया गया सबसे बड़ा प्रयास है।

सगुणोपासक कवियों ने ज्ञान, कर्म और भक्ति में से भक्ति को ही प्रधानता दी। इन कवियों ने ज्ञान की अवहेलना तो नहीं की पर उसे भक्ति जैसा समर्थ भी नहीं बताया। ज्ञान तारक तो है पर वह कष्ट साध्य है। सगुण संप्रदाय की पृष्ठभूमि में भक्ति का समृद्ध साहित्य है। इस साहित्य के प्रमुख आधार ग्रंथ हैं - भगवद्गीता, विष्णु और भागवत पुराण, नारद भक्ति सूत्र और शांडिल्य भक्ति सूत्र। इसके अतिरिक्त दक्षिण के आलवार भक्तों की रचनाऐं भी वैष्णवों की अमूल्य निधि है । इन सगुण भक्त कवियों ने एक नवीन भाव क्रांति को जन्म दिया।

4.3.1 सगुण भक्तिधारा की विशेषताएँ :

सगुणोपासक कवियों ने अपने साहित्य की रचना लोकहित को ध्यान में रखकर की। वे जन साधारण को उसके कर्तव्य का पाठ पढ़ाते हैं, साथ ही उसे एक आदर्श मानव बनने की प्रेरणा देते दिखायी पड़ते हैं। उनकी काव्य साधना ने उन मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना की जो समाज से लुप्त हो रही थी। इन कवियों ने अपने साहित्य के द्वारा समाज की नैतिकता एवं भाईचारे का उपदेश दिया। भक्तिपरक रचनाओं के द्वारा उन्होने जनता के ईश्वर के जिस स्वरूप का परिचय दिया, उसने निराश हृदयों में पुन: आशा और स्फूर्ति का संचार करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इन कवियों ने सगुण भक्ति के उस रूप की प्रतिष्ठा की जिसमें मानव हृदय विश्राम भी पाता है और कलात्मक सौंदर्य से मुग्ध और तृप्त भी होता है। सगुण भक्तिधारा की सामान्य विशेषताएँ इसप्रकार हैं - .

1. ईश्वर का सगुण रूप :

सगुण भक्त कवियों का आराध्य दैवत सगुण है। वैष्णव आचार्यों का कथन है कि सगुण के गुण अलौकिक हैं। लौकिक गुण अस्थिर, परिवर्तनशील होते हैं पर ईश्वर के गुण निरंतर, स्थायी होते हैं। प्रभु का स्वरूप हृदय और बुद्धि की पहुंच से परे हैं, यह सगुण परमात्मा स्रष्टा, पालक और संहारक है। इन भक्तों का ध्यान भगवान के पालक रूप पर केंद्रित है, क्योंकि पालन के साथ साथ धर्म भावना संबंध है। इनके लिए परमात्मा चल भी है, मूर्त भी है और अमूर्त भी, वामन भी है और विराट भी, सगुण भी है और निर्गुण भी। वस्तुत: वह अनिर्वचनीय है और कालातीत है किंतु उसका अपनी समग्रता में किसी काल में अवतरित होना असंभव नहीं। सगुणोपासकों के अनुसार मनुष्य वस्तुत: ब्रम्ह है, नर और नारायण एक है।

तुलसी के राम विष्णु के अवतार होने के नाते लोकरक्षक, अधर्म के विनाशक एवं धर्म के संस्थापक है। वे मर्यादा पुरुषोत्तम और श्रेष्ठतम गुणों से विभूषित हैं। वे अद्वितीय वीर हैं तथा इस वीरता से अधर्म का विनाश करते हुए धर्म-परायणता में तत्पर दिखाई देते हैं।

2. अवतार भावना :

सगुणोपासक कवियों की उपासना पद्धति का प्रमुख अंग अवतारवाद है। इन कवियों का विश्वास है कि वह असीम सीमा को स्वीकार करकें अपनी इच्छा लीला के लिए अवतरित होते हैं। उनके अनुसार सारा संसार उस भगवान का अवतार है किंतु इन वैष्णवों की अवतार भावना के मूल में गीता का विभूति एवं ऐश्वर्य योग काम कर रहा है। ज्ञान, कर्म, वीर्य, ऐश्वर्य, प्रेम भगवान की विभूतियाँ हैं। जो मनुष्य किसी क्षेत्र में कौशल दिखाते हैं वे भगवान की विभूति को साकार करते हैं। अत: गुणातीत और सगुण, असीम और ससीम में कोई विरोधाभास नहीं है।

राम काव्य परंपरा के कवियों ने भगवान विष्णु के अवतार 'राम' के जीवन-चरित्र को आधार बनाकर अपने काव्य ग्रथों की रचना की। भारतीय धर्म साधना में कृष्ण का विलक्षण व्यक्तित्व रहा है। श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में मानकर उनके विविध क्रियाकलापों का वर्णन भागवत् पुराण तथा महाभारत में प्रमुख रूप से किया गया है। कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण की बाल लीलाओं, प्रणय लीलाओं तथा अन्य माधुर्य भाव युक्त क्रीडाओं का चित्रण किया है। सूरदास तथा अष्टछाप के कवियों ने भागवत पुराण का आधार ग्रहण कर कृष्णचरित्र का गान किया है।

3. लीला रहस्य :

सगुण काव्य में लीलावाद का अत्यंत महत्त्व है। चाहे तो तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम राम हों चाहे सूर के ब्रजराज कृष्ण हों दोनों लीलाकारी हैं। उनके अवतार का उद्देश्य लीला ही है। इन कवियों ने राम को परब्रम्ह मानकर धर्म की स्थापना हेतु अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र के रूप में अवतार ग्रहण कर मानवीय लालाऐं करते हुए दिखाया है। तुलसी के राम लोकरक्षक हैं तथा अधर्म के विनाशक एवं धर्म के संस्थापक हैं। वे अद्वितीय वीर हैं तथा इस वीरता से अधर्म का विनाश करते हुए धर्म-परायणता में तत्पर दिखायी देते हैं। तुलसी

के लोकरक्षक राम रावण का संहार लीलार्थ करते हैं। तुलसी के लिए समस्त रामचरित लीलामय है।

कृष्ण तो हैं ही लीला-रमण और आनंदप्रद। एक ओर जहाँ वे लीला करते हुए समस्त गोपीजनों को जिन्होंने लोक की सारी मर्यादाओं का अतिक्रमण कर दिया है, आकर्षित करते हैं वहाँ दूसरी ओर अधासुर एवं बकासुर राक्षसों का लीला ही लीला में वध करवा देते हैं। इन कवियों की धारणा है कि समस्त संसार की सृष्टि लीला का ही परिणाम है। सगुण भक्त लीला में सच्चिदानंद के आनंद का स्वरूप देखते हैं। उनका विश्वास है कि जीवन और दर्शन की चरम सफलता लीलावाद में निहित है।

4. रूपोपासना :

सगुण साधना में रूपोपासना का विशिष्ट स्थान है। सगुण साधना में भगवान् के नाम और रूप आनंद के अक्षय कोण हैं। सगुण भक्त को भगवान् के नाम और रूप इतना विमुग्ध कर लेते हैं कि लौकिक छवि उसके पथ में बाधक नहीं बन सकती। आरंभ में सगुणोपासक नामरूप युक्त मूर्ति के समक्ष आकर उपासना करता है परंतु निरंतर भावना, चिंतन एवं गुण कीर्तन से वह अपने आराध्य में ऐसा एकरूप हो जाता है कि उसे किसी भौतिक उपकरण की आवश्यकता ही नहीं रहती।

ब्रजेश कृष्ण रस-राज श्रृंगार के अधिष्ठाता देवता है। रूप ही श्रृंगार रस को जगाता है। यहीं कारण है कि कृष्ण भक्ति शाखा में कृष्णाश्रित श्रृंगार का सांगोपांग वर्णन है। उनके कृष्ण सौंदर्य की अतुल राशि हैं। तुलसी के राम शक्ति, शील एवं सौंदर्य का भंडार है। वे अपने अनंत सौंदर्य से जन-जन को मोहित करनेवाले हैं साथ ही अपूर्व शील से सबके हृदय को अपने वशीभूत कर लेते हैं। तुलसी के राम अपनी अप्रतिम छवि से त्रिभुवन को लजाने वाले हैं।

5. शंकर के अद्वैतवाद का विरोध :

भागवत के अतिरिक्त हिंदी के सगुण काव्य पर रामानुज, निम्बार्क, मध्वाचार्य तथा वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धांतों का प्रभाव पड़ा है। इन सभी आचार्यों ने शंकर के ज्ञानमूलक अद्वैतवाद का जो भक्ति को परम सत्य नहीं मानता, खंडन किया और भक्ति तत्त्व का समाधान करते हुए भगवत् प्राप्ति में उसकी अनिवार्यता सिद्ध की है। रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद में ब्रम्ह प्रकारी है और जीव तथा प्रकृति उसके प्रकार है। जीव की कृतकृतत्या इसी में है कि वह अपने आपको भगवान का विशेषण माने। आत्मसमर्पण के द्वारा जीव को यह स्थिति प्राप्त हो सकती है। परमात्मा अंशी है और जीव उसका अंश है। मध्वाचार्य ने जीव की उत्पत्ति ब्रम्ह से मानी है किंतु ब्रम्ह को स्वतंत्र और जीव को परतंत्र माना है। वल्लभ के पुष्टि संप्रदाय में लयात्मक सायुज्य को उच्चतम स्थिति नहीं माना गया है। पुष्टि मार्ग में प्रवेशात्मक सायुज्य ही काम्य है जिसमें भक्त भगवान की आनंद लीला में अप्राकृत देह धारण करके प्रवेश करता है। रास लीला प्रवेशात्मक सायुज्य का ही रूप है।

6. विविध स्रोत :

सगुणोपासक कवियों के अपने भक्ति काव्य धारा के आधारभूत ग्रंथ रामायण और भागवत रहे हैं।

रामायण की अपेक्षा भागवत का प्रभाव इस काव्य पर ज्यादा है। संस्कृत के भगवद्गीता, विष्णु पुराण, पांचरात्र संहिताओं, नारद भक्तिसूत्र, शांडील्य भक्तिसूत्र तथा कई अन्य काव्य ग्रंथों का प्रभाव पड़ा है। रामानुज, निम्बार्क, वल्लभ, मध्व, विष्णु स्वामी और चैतन्य आदि आचार्यों ने जिन सिद्धांतों को पुरस्कृत किया वे सगुण काव्य के मेरुदंड हैं। भक्ति काल की रागानुगा भक्ति में दक्षिण के आलवार संतों का महत्वपूर्ण योगदान है। यह काव्य भक्तों की अपनी सुंदरतम मौलिक अनुभूतियों से सजीव है।

7) भक्तिक्षेत्र में जातिभेद की अमान्यता :

इस काल के सगुण भक्त कवियों तथा आचार्यों ने भक्ति के क्षेत्र में जाति-पांति का बंधन स्वीकार नहीं किया। यद्यपि कर्मक्षेत्र में इन सबने वर्णाश्रम व्यवस्था पर बल दिया है, परंतु भगवद्भक्ति क्षेत्र में किसी के शूद्र होने के नाते उसे भक्ति के अधिकार से वंचित नहीं किया।

8) गुरु की महत्ता :

सगुणोपासक कवियों ने संसार की सब वस्तुओं से गुरु को उच्चतम माना है और उसकी महत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। सूर और तुलसी का साहित्य इस तथ्य का सुंदर निदर्शक है। नंददास ने वल्लभ को ब्रम्ह के रूप में ग्रहण किया है। इनका विश्वास है गुरु के बिना ज्ञान असंभव है और ज्ञानाभाव में मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। ज्ञान से भक्ति और भक्ति से उसका सायुज्य प्राप्त होता है।

9) भक्ति :

सगुणोपासक भक्त कवियों को लिए भगवान सगुण है। भगवान की भक्ति एवं प्रेम का उद्देश्य है उसकी निकटता प्राप्त करके उसमें रममाण होना तथा उसकी लीलाओ में अपने आपको लीन करना। विष्णु मूलत: ऐश्वर्य संपन्न देव है अत: रामानुज संप्रदाय में भगवान की ऐश्वर्य उपासना पर अत्यधिक बला है। वल्लभ और निम्बार्क संप्रदाय में भगवान के ऐश्वर्य की अपेक्षा उसकी माधुरी को अधिक महत्त्व दिया गया है। चैतन्यमत में कांताभाव की भक्ति का पूर्ण परिपाक हुआ है। वल्लभ संप्रदाय में शांत, सख्य और वात्सल्य भावों की भक्ति का विशिष्ठ स्थान है जब कि चैतन्य संप्रदाय में कांताभाव का आग्रह दिखाई देता है। युगल लीला की प्रतिष्ठा वल्लभ, चैतन्य और निम्बार्क संप्रदाय में हुई है। इन कवियों ने नवधा भक्ति को अत्यंत महत्त्व दिया है। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, सख्य, दास्य, आत्मनिवेदन भक्ति की ये नव विधाएँ इंद्रिय, मन और हृदय को भगवान के प्रति निवेदित करती हैं। इनसे भक्त अपने आपको रामार्पण एवं कृष्णार्पण कर देता है।

10) लोक जीवन :

सगुणोपासक भक्त कवियों ने कृष्ण काव्य और राम काव्य में अपने अपने दृष्टिकोणों के अनुसार लोक जीवन का सुंदर चित्रण किया है। कृष्ण काव्य कवियों ने भारतीय ग्राम्य जीवन का मनोहर वर्णन किया है। जिन हृदयों और प्राकृतिक परिवेश में कृष्ण की बाललीलाओं का चित्रण हुआ है उनके भावना द्वारा मन में विलक्षण आनंद का संचार होता है। अष्टछाप के कवियों ने तत्कालीन भारतीय जीवन की एक सुंदर सांस्कृतिक झाँकी प्रस्तुत की है।

तुलसी के राम असत् से संघर्ष करते हुए सत् का उद्धार करते हैं। वे अपने वृत के लिए नाना कष्टों को सहते हैं। धर्मोद्धार, पापनाश, साधुरक्षण, दुष्टदलन तथा भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए भगवान युग युग में अवतार लेते हैं। राम और कृष्ण के चरित्र में शील, शक्ति और सौंदर्य का मनोहर संगम है। एक मर्यादा पुरुषोत्तम है तो दूसरा ब्रजेश रसेश। ये दोनों रूप लोकसंग्रह की दृष्टि से अभिनंदनीय है।

4.3.2 तुलसीदास : व्यक्तित्व और कृतित्व :

गोस्वामी तुलसीदास रामकाव्य परंपरा के श्रेष्ठ कवि हैं। वे इस काव्य परंपरा के तेजस्वी सूर्य हैं। तुलसी का जीवन वृत्त अभी तक अपेक्षाकृत अंधकारमय है। गोस्वामी तुलसीदास के जीवन वृत्त के संबंध में अंत:साक्ष्य और बहि:साक्ष्य दोनों मिलते हैं। अंत:साक्ष्य में तुलसी के अपने ग्रंथ आते हैं और बहि:साक्ष्य के अंतर्गत गोस्वामी गोकुलनाथ द्वारा लिखित 'दो सो बावन वैष्णवों की वार्ता', नाभादास का 'भक्तमाल', बाबा माधव वेणीदास कृत 'भक्तमाल की टीका' प्रमुख हैं। तुलसीदास के जीवन परिचय के लिए हमें बहि:साक्ष्यों की अपेक्षा अंत:साक्ष्य पर अधिक निर्भर करना पड़ेगा। तुलसी का समस्त जीवन मतभेदों से भरा पड़ा है।

1) **व्यक्तित्व :**

जन्म–तिथि : तुलसीदास के जन्म तिथि के विषय में पर्याप्त मतभेद हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन चरित्र का मूल आधार बेनीमाधव दास द्वारा रचित 'गोसाई चरित' और महात्मा रघुवरदास रचित 'तुलसी चरित्र' है। उक्त दोनों चरित्रों के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास का जन्म 1554 विक्रम में तथा मृत्यु 1680 विक्रम में मानी जाती है। ऐसा मानने पर तुलसी की आयु 126 वर्ष ठहरती है जो असंभव तो नहीं किंतु असामान्य प्रतीत होती है। पं. रामगुलाम द्विवेदी, सर जार्ज ग्रियर्सन और डा माताप्रसाद गुप्त ने तुलसी का जन्म 1589 विक्रम (1532 ई.) में तथा मृत्यु 1680 विक्रम (1623 ई.) में स्वीकार की है।

जन्म स्थान : इनके जन्म स्थान के संबंध में भी मतभेद है। ठाकूर शिवचरणसिंह सेंगर, रामगुलाम द्विवेदी आ. रामचंद्र शुक्ल ने तुलसी का जन्म स्थान 'राजापुर' को माना है। पं. गौरी शंकर द्विवेदी तथा रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तुलसी का जन्म स्थान एटा जिले के 'सोरो' नामक स्थान को माना है।

माता–पिता : उनके जन्म के संबंध में यह किवदंती प्रचलित है कि उनका जन्म मूल नक्षत्र पर हो जाने से उनके पिता आत्माराम दुबे ने उन्हें त्याग दिया था तथा माता हुलसी का निधन प्रसुतिकाल में हो गया था। तुलसी के बचपन का नाम रामबोला था।

गुरु : गुरु बाबा नरहरिदास ने उन्हें दीक्षा दी थी तथा काशी में शेष सनातन की पाठशाला में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। तुलसी ने अपने गुरु का रामचरित–मानस में अनेक स्थलों पर स्मरण किया है। इन्होंने अनेक तीर्थ स्थानों की यात्रा की और अंत में काशी में रहने लगे। राजा टोडरमल, रहीम और मानसिंह तुलसी के अनन्य मित्र थे।

वैवाहिक जीवन :

इनके वैवाहिक जीवन के संबंध में भी मतभेद हैं । जनश्रुति के अनुसार इनका विवाह दीनबंधु पाठक की पुत्री 'रत्नावली' से हुआ था। उनके तारक नाम का एक पुत्र भी हुआ जिसकी मृत्यु हो गई थी। अत्यधिक आसक्ति के कारण तुलसी को रत्नावली से मोठी भर्त्सना, ''लाज न आयी आपको दौरे आएहु साथ'' भी सुननी पडी थी। तुलसी को रत्नावली ने धिक्कारते हुए कहा था –

अस्थि चर्म मय देह मम तामैं ऐसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ होति न तौ भवभीति।।

रत्नावली के इन वचनों से तुलसी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे विरक्त होकर काशी चले गए।

2) **कृतित्व :**

गोस्वामी तुलसीदास नाम पर अस तक चालीस पुस्तकें प्राप्त हो चुकी हैं। परंतु पं. रामगुलाम द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने बारह रचनाओं को प्रामाणिक माना है। ये रचनाएँ इस प्रकार हैं

1) रामचरितमानस 2) विनय पत्रिका 3) कवितावली 4) दोहावली 5) रामलला नहछू 6) गीतावली 7) कृष्ण गीतावली 8) वैराग्य संदीपनी 9) रामाज्ञा प्रश्नावली 10) बरवै रामायण 11) पार्वती मंगल 12) जानकी मंगल

रामचरित मानस :

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा अवधी भाषा में रचित 'रामचरितमानस' राम के जीवन चरित पर आधारित महाकाव्य है। इस ग्रंथ की रचना संवत 1631 (1574 ई.) में प्रारंभ हुई और तुलसी ने इसे 2 वर्ष 7 मास में ही समाप्त किया। दोहा–चौपाई शैली में लिखे गये इस महाकाव्य में सात कांड हैं– 1. बाल कांड 2. अयोध्या कांड 3. अरण्य कांड 4. किष्क्रिंधा कांड 5. सुंदर कांड 6. लंका कांड 7. उत्तर कांड

रामचरितमानस के राम मर्यादा पुरुषोत्तम, लोकरक्षक, शक्ति, शील एवं सौंदर्य के भंडार है। रचना कौशल, प्रबंध पदुता, सहृदयता, मार्मिक स्थलों की पहचान के कारण यह हिंदी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य माना जाता है। तुलसी ने मानस में आदर्श चरित्रों की परिकल्पना की है। महाकाव्य के नायक राम आदर्श चरित्र है। समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए राम का चरित्र आदर्श व्यवहार की कसौटी है। वे एक आदर्श भाई, आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श मित्र, आदर्श स्वामी, आदर्श शिष्य, आदर्श राजा के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत किये गये हैं। रामचरितमानस की विशेषताएँ इसप्रकार हैं

1) **स्वांत: सुखाय काव्य :** गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में अपनी काव्य रचना का उद्देश स्पष्ट करते हुए घोषणा की, ''स्वांत: सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा।'' काव्य रचना के लिए इन्हें न तो किसी दरबार का आश्रय लेना उचित लगा और न ही आश्रयदाताओं की झूठी प्रशंसा करने में उन्होंने रुचि दिखायी। तुलसी ने अपने काव्य में अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति के खरेपन को अपनाया।

2) **लोकमंगल का साहित्य :** रामचरितमानस में तुलसी केवल कवि के रूप में ही नहीं अपितु एक उपदेशक के रूप में भी सामने आते हैं। इन्होंने लोककल्याण की कामना करते हुए जनता को नैतिकता एवं सदाचार का अविस्मरणीय पाठ पढाया है। तुलसी ने रामराज्य निरुपण के अंतर्गत आदर्श शासन-व्यवस्था की रूपरेखा भी प्रस्तुत की है। तुलसी ने तो कविता का उद्देश्य ही लोकहित स्वीकार किया है - 'कीरति मनिति भूति मल सोई। सुरसरि सम सबव है हित होई।।' अर्थात वहीं कविता श्रेयस्कर होती है, जो गंगा के समान सबका हित करने वाली हो।

3) **भक्ति का स्वरूप :** तुलसी ने मानस में दास्य भाव की भक्ति को मुक्ति का साधन मानते हुए कहा है - 'सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।' दास्य भाव की भक्ति से भक्त अहंकारशून्य होकर उस परमात्मा के महत्त्व से परिचित हो जाता है।

4) **समन्वयवादी प्रवृत्ति :** तुलसी ने रामचरितमानस में हर दृष्टि में समन्वयवादी प्रवृत्ति को अपनाते हुए लोकनायक होने का परिचय दिया। रामचरित मानसे में तुलसी ने सगुण-निर्गुण, शैव और वैष्णव का, ज्ञान और भक्ति का, राजा और प्रजा का, जनभाषा और संस्कृत का, भाग्य एवं पुरुषार्थ का, द्वैत एवं अद्वैत का समन्वय किया है।

5) **अवधी भाषा :** गोस्वामी जी का रामचरितमानस अवधी भाषा में ही लिखा गया है। तुलसी ने मानस में प्रसंगानुकूल, रसानुकूल शब्द चयन, पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है।

6) **छंद एवं अलंकार योजना :** रामचरितमानस में दोहा, चौपाई, सोरठा, सवैय्या आदि छंदों का सफल प्रयोग हुआ है। तुलसी ने चत्मत्कार प्रदर्शन के लिए अलंकार योजना नहीं की है तथापि मानस का काव्य अलंकारों से मण्डित है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, विभावना, प्रतीप, दृष्टांत, सांगरूपक अलंकारों का प्रयोग किया है। अलंकार योजना स्वाभाविक एवं अर्थबोध में सहायक रही है।

7) **रस योजना :** रामचरितमानस में सभी रसों की योजना की है। युद्ध वर्णन में वीर एवं रौद्र रस की सुंदर योजना हुई है तथा श्रृंगार का मर्यादित चित्र पुष्पवाटिका में चित्रित है। करुण रस के मानस में अनेक प्रसंग हैं। लंकादहन प्रसंग में भयानक और बीभत्स रस का अच्छा प्रयोग हुआ है। सारी राम कथा का पर्यवसान शांत रस में हुआ है। राम के ब्रह्मत्व का प्रसंग या हनुमान के पहाड़ ले जाने के प्रसंग में अद्भुत रस, वात्सल्य रस के वर्णन मानस के बाल कांड में चित्रित है।

रामचरितमानस आदि से अंत तक समन्वय का काव्य है और यही कारण है कि तुलसी लोकनायक बन सके तथा जन जन के प्रिय बन गये।

विनय पत्रिका :

विनय पत्रिका 279 पदो में ब्रजभाषा में लिखा हुआ काव्यग्रंथ है। तुलसी का अवधी और ब्रजभाषा पर समान अधिकार था। तुलसी की भक्ति भावना जानने के लिए विनय पत्रिका को पढ़ना आवश्यक है। इस काव्य का प्रधान रस

शांत है। गीति शैली में रचित विनय पत्रिका के पद विभिन्न राग-रागनियों में निबद्ध है। राग केदार, मल्हार, वसंत, रामकली, केदार जैसे प्रमुख रागों का प्रयोग किया गया है। तुलसीदास ने कलियुग से संतप्त होकर प्रभु श्री राम के चरणों में अर्पित करने हेतु यह विनय पत्रिका लिखी है। इस काव्य में आत्मनिवेदन, शरणागत वत्सलता, मन की भर्त्सना एवं दैन्य जैसे भावों की सुंदर व्यंजना हुई है। विनय पत्रिका के कुछ प्रसिद्ध पद इसप्रकार है -

तू दयाल दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।

हौं अनाथ पातकी तू पाप पुंज भारी।।

कवितावली :

कवित्त, सवैया छंद में ब्रजभाषा में रचित कवितावली मुक्तक काव्य ग्रंथ है। जिसमें सात कांड हैं। इसे तुलसी की अंतिम रचना माना जाता है। राम कथा से संबंधित कविता लंकाकांड तक है तथा तुलसी के निजी जीवन एवं तद्युगीन समाज का चित्रण उत्तरकांड में है। कवितावली में राम के बाल रूप का चित्रण अत्यंत सुंदर है। राम-सीता के विवाह के अवसर पर श्रृंगार भावना का चित्रण मार्मिक बन पड़ा है। अलंकारों का सुंदर प्रयोग कवितावली की विशेषता है। कवितावली में दिए गए अंत:साक्ष्य के आधार पर तुलसी के जीवन-वृत्त को जानने में सहायता मिलती है।

तुलसीकृत 'वैराग्य संदिपनी' ग्रंथ में ईश्वर वंदना के अतिरिक्त संत स्वभाव, संत-महिमा और शांति महिमा का वर्णन किया गया है। 'रामाज्ञा प्रश्न' में राम जन्म से लेकर सीता के पृथ्वी-प्रवेश के आख्यान को विशद किया है। 'रामललानहछू' की रचना लोकगीत-सोहर छंद में हुई है जिसमें राम के उपवीत-संस्कार का वर्णन है। इसका कथानक मुख्यत: वाल्मिकी और अध्यात्मरामायण पर आधारित है। 'पार्वती मंगल' में पार्वती के विवाहोत्सव का वर्णन है साथ ही पार्वती के जन्म, तप आदि का भी संक्षिप्त चित्रण किया गया है। 'कृष्ण गीतावली' में कृष्ण की बाललीला और गोपियों की विरह दशा का वर्णन करनेवाले गीत हैं। 'गीतावली' को 'राम गीतावली' भी कहा जाता है। इस ग्रंथ में माधुर्य भावना का सुंदर दर्शन होता है। यह ग्रंथ राम साहित्य में प्राप्त मधुरा भक्ति के प्रतिनिधित्व का उदाहरण है। 'दोहावली' में विविध विषय पर लिखें तुलसी के दोहे हैं। इसमें युगीन परिस्थितियों का परिचय मिलता है। 'बरवै रामायण' में बरवे छंद में कुछ रामकथा प्रसंग राम-नाम, रामप्रेम का महात्म्य वर्णित है। 'हनुमान बाहुक' ग्रंथ की सीता-त्याग और लक्ष्मण-परित्याग दो घटनाएँ ध्यानाकर्षक हैं। तुलसीदास का पूरा जीवन और काव्य साधना राम के प्रति समर्पित है।

4.3.3 सूरदास व्यक्तित्व और कृतित्व :

प्रस्तावना :

सगुण काव्य-धारा में कृष्ण काव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय धर्म साधना में कृष्ण का विलक्षण व्यक्तित्व रहा है। श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में मानकर उनके विविध क्रियाकलापों का वर्णन भागवत पुराण तथा महाभारत में प्रमुख रूप से किया गया है। भागवत पुराण में श्रीकृष्ण की रासलीला एवं

बाल लीलाओं का चित्रण हुआ है। सगुणोपासक कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण की बाल लीलाओं, प्रणय लीलाओं तथा अन्य माधुर्य भावयुक्त क्रीडाओं का चित्रण किया है। संस्कृत कवि जयदेव ने मधुर संगीतात्मक पदावली में 'गीत-गोविंद' नामक ग्रंथ में राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का गान कर कृष्ण काव्य को एक नयी दिशा प्रदान की। मध्यकाल में कृष्ण काव्य को समृद्ध बनाने का पूरा श्रेय अष्टछाप के कवियों का है। इन कवियों में सर्वप्रमुख है-सूरदास। सूरदास के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य कवि थे - कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास।

1) जीवन तथा व्यक्तित्व :

जीवनवृत्त :

बाह्य साक्ष्य और अंत:साक्ष्य का आधार लेकर सूरदास की जीवन झाँकी प्रस्तुत की जा सकती है। उनके जीवन वृत्त को जानने के लिए गोकुलनाथ कृत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा नाभादास कृत 'भक्तमाल' को आधार बनाया गया है। उनका जीवन वृत्त पूर्णतया ज्ञात नहीं है। उनका जन्म 1478 ई में तथा मृत्यु 1583 ई. में मानी जाती है।

उनके जन्मस्थान के संबंध में भी विवाद है। कुछ विद्वान उन्हें 'सीही' में तो कुछ 'रुनकता' में उत्पन्न मानते हैं। इनके माता-पिता, परिवार के बारे में कुछ भी पता नहीं है। वे एक निर्धन सारस्वत ब्राम्हण के चतुर्थ पुत्र थे। सूरदास नेत्र विहीन थे। वे जन्मांध थे या बाद में अंधे हुए इस संबंध में विवाद है। उनके काव्य में दृश्यमान जगत् का सूक्ष्म और व्यापक वर्णन है। अत: उनकी जन्मांधता पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे, पुष्टिमार्ग में कीर्तन करते थे। सूरदास पहले विनय के पद गाते थे। वल्लभाचार्य के आदेश से कृष्ण लीला के पद गाने लगे। उन्होंने लगभग 3 वर्ष की अवस्था में श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन करना आरंभ किया था और जिंदगी के अंतिम क्षण तक नियमित रूप से लीला गान में मग्न रहें। अपने 105 वर्ष के सुदीर्घ जीवन काल में उन्होंने लगभग एक लाख पदों की रचना की। सूरदास गायक, संगीतज्ञ, कीर्तनकार के रूप में प्रसिद्ध थे। जन्मजात प्रतिभा, गुणीजनों का सहवास और नीजि अभ्यास के कारण सूरदास को विभिन्न विद्याओं का ज्ञान था। इनकी ख्याती गायक और महात्मा के नाते सर्वत्र फैली। सम्राट अकबर, गोस्वामी तुलसीदास से इनकी भेट हुई थी। तुलसीदास सूर के लीला पदों से इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने बाद में सूर की शैली पर भगवान राम की बाल-लीलाओं का वर्णन किया।

2) **सूरदास की रचनाएँ :**

सूरदास ने श्रीमद्भागवत् के आधार पर कृष्ण लीला संबंधी अनेक पदों की रचना की थी जिनकी संख्या सवा लाख बताई जाती है। उनके जीवन काल में ही इतने असंख्य पद सागर कहलाने लगे थे जो कि बाद में संगृहित होकर 'सूर सागर' कहलाने लगे। सूरदास के नाम पर 24 रचनाओं का उल्लेख मिलता है। इनमें से तीन रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं - साहित्यलहरी, सूरसारावली, और सूरसागर। उनकी एक मात्र प्रामाणिक रचना है - 'सूरसागर'।

'सूरसारावली' में 1103 पद है। इसे सूरसागर का सार अथवा अनुक्रमणिका माना जाता है। इसकी प्रामाणिकता विवादास्पद है। 'साहित्यलहरी' 118 पदों की छोटी रचना है। इसे सूरसागर का अंश माना जाता है। यह रीति ग्रंथ है। इसमें नायिका-भेद और रस-वर्णन है।

सूरसागर :

'सूरसागर' सूरदास की एकमात्र प्रामाणिक रचना है। यह ग्रंथ भागवत को आधार बनाकर लिखा है। कुछ विद्वान 'सूरसागर' को भगवान का अनुवाद मानते हैं। लेकिन वह उचित नहीं है। भागवत के कृष्ण शक्ति के प्रतीक है। सूर के कृष्ण इन गुणों के साथ-साथ प्रेम और सौंदर्य की प्रतिमूर्ति हैं। इस ग्रंथ में लीला वर्णन है। इस ग्रंथ के सव्वा लाख पदों में से केवल 5000 पद आज उपलब्ध है। 'सूरसागर' कृष्णभक्ति साहित्य का गौरव ग्रंथ है।

भावपक्ष :

'सूरसागर' में कृष्णलीला के पद हैं। सूर ने सख्य भक्ति को प्रधानता दी है। सूरदास के सखा भाव में यह विशेषता है कि उसमें एक ओर मनोवैज्ञानिक रूप से मानवीय संबंधों का निर्वाह किया गया है और भावात्मक की अनुभूति भी की गई है। समस्त सूरसागर का अध्ययन करने पर कृष्ण का चरित्र हमारे सामने इन रूपों में आता है।

i) अत्यंत मुखर बालक के रूप में।

ii) चंचल किशोर के रूप में।

iii) किशोर प्रेमी के रूप में।

iv) क्रीडा कौतुक प्रिय सखा के रूप में।

v) तरुण नायक के रूप में।

vi) अति प्राकृत अलौकिक सत्ता के रूप में जो भक्तों की रक्षा करती है।

इसप्रकार सूर ने कृष्ण का चरित्र विविध खूबियों से अंकित किया है और इसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है। सूर की राधा भी हिंदी साहित्य को प्राप्त एक अमूल्य देन है। वह कृष्ण की पत्नी सदृश्य ही है और उसे सूर की अपनी देन ही समझना चाहिए।

सूर के पदों को पाँच भागों में विभाजित किया जाता है। - विनय के पद, बाललीला के पद, सौंदर्य-वर्णन संबधी पद, मुरली विषयक पद और भ्रमरगीत। इनमें से विनय के पद तो भक्ति-भावना से संबंधित हैं तो उर्वरित कृष्णलीला से संबंधित हैं। सूर का बालवर्णन विश्वसाहित्य में अनूठा कहा जाता है। वात्सल्य वर्णन में सूरदास हिंदी साहित्य में अद्‌वितीय है। बालक कृष्ण की एक-एक क्रीड़ा और माता यशोदा के हृदय के एक-एक मनोभाव का सूक्ष्म चित्रण किया है। लगता है, सूरदास वात्सल्य रस का कोना-कोना झाँक आए थे। इसलिए कहा जाता है 'सूर ही वात्सल्य है और वात्सल्य ही सूर है।'

सूरसागर में श्रृगांर के दोनों पक्ष संयोग और वियोग का व्यापक वर्णन मिलता है। कृष्ण–गोपियाँ, कृष्ण–राधा के माध्यम से श्रृंगार वर्णन किया है। 'भ्रमर गीत' सूरसागर का अत्यधिक मार्मिक पक्ष है। इसका मुख्य विषय गोपियों की विरह भावना है। भ्रमर गीत पदावली में विरह सागर उमड़ सा उठा है तथा उसमें कल्पना एवं भावुकता का सहज सामंजस्य है।

सूर ने सूरसागर में प्रकृति चित्रण की विविध प्रणालियों को अपनाते हुए प्राकृतिक दृश्यों का मनोहारी वर्णन किया है। सूर ने प्रकृति का वर्णन इन रूपों में किया है– प्रकृति का विषयात्मक चित्रण, अलंकृत चित्रण कोमल और भयंकर रूप प्रकृति मानव क्रिया–कलाप की पृष्ठभूमि, अलंकारों के रूप में प्राकृतिक दृश्यों का प्रयोग। सूरसागर में श्रीकृष्ण के शैशव से लेकर किशोर अवस्था तक के असंख्य रूप चित्र है जिनमें कवि की भावना, कल्पना, कला–कुशलता और शैली की चमत्कारिता एक साथ व्यक्त हुई है।

कलापक्ष :

सूरकाव्य का भावपक्ष के साथ साथ कलापक्ष समृद्ध है। सूरदास के पद गीतिकाव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनकी भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। भाषा परिमार्जित, समृद्ध और प्रौढ है। व्याकरण के दोष होते हुए भी भाषा प्रवहमान है। ब्रजभाषा के साथ साथ संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी आदि भाषा के शब्दों का प्रयोग मिलता है। मुहावरें, कहावतों का प्रयोग स्वाभाविक रीति से हुआ है। शब्दचयन, भावमयता, चित्रात्मकता, सहजता, सरलता, सजीवता, मधुरता आदि सूर की भाषा की विशेषताएँ हैं। उनकी भाषा माधुर्यमयी है।

सूर अलंकार व्यंजना में सफल रहे हैं उनकी उक्तियों में उपमा रूपक, अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, वक्रोक्ति आदि अलंकार दिखाई पडते हैं। उनकी भाषा में लाक्षणिकता एवं ध्वन्यात्मकता भी दर्शनीय है। सूरसागर में दोहा, चौपाई, रोला, गीति, लावनी, धनाक्षरी, सवैया आदि छंद भी दृष्टिगोचर होते हैं। सूरकाव्य में राग–रागनियों का सुंदर समावेश हुआ है।

सूर काव्य के भावपक्ष और कालापक्ष पर विचार करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि 'सूर की कविता, कविता नहीं हृदय की झंकार है।'

4.4 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न 1 अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) तुलसीदास ..... भक्तिधारा के प्रमुख कवि हैं।

   क) शिव ख) कृष्ण ग) गणेश घ) राम

2) तुलसीदास का जीवनकाल ..... है।

   क) 1532-1623 ई. ख) 1530-1620 ई.

   ग) 1500-1580 ई. घ) 1550-1628 ई.

3) ..... सूरदास का जन्म स्थान है।

क) पारसौली ख) सीही ग) मगहर घ) सोरो

4) रामचरितमानस की रचना ..... भाषा में हुई है।

क) संस्कृत ख) पाकृत ग) मागधी घ) अवधी

5) ..... रामचरितमानस का आधार ग्रंथ है।

क) रामायण ख) महाभारत ग) उपनिषद घ) पुराण

6) अष्टछाप कें कवियों की संख्या ..... है।

क) अठारह ख) दस ग) आठ़ घ) बारह

7) सूरदास की भक्ति ..... प्रकार की है।

क) माधुर्य भाव ख) हास्य भाव ग) सख्य भाव घ) कांताभाव

8) पुष्टि मार्ग के ..... प्रवर्तक हैं।

क) गोकुलनाथ ख) नंददास ग) विठ्ठलनाथ घ) वल्लभाचार्य

9) विनय-पत्रिका ग्रंथ का प्रधान रस ..... है।

क) श्रृंगार ख) शांत ग) वात्सल्य घ) अदभुत

10) श्रृगांर और वात्सल्य रस का सम्राट ..... कवि को कहा जाता है।

क) सूरदास ख) तुलसीदास ग) नंददास घ) केशवदास

आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में लिखिए।

1) सूरदास के गुरु का नाम क्या था ?

2) सूरदास का जन्मस्थान कौन सा है ?

3) सूरदास की एकमात्र प्रामाणिक रचना कौनसी है ?

4) सूरदास किस मंदिर में कीर्तन करते थे ?

5) सूरसागर का आधार ग्रंथ कौनसा है ?

6) तुलसीदास के गुरु का नाम क्या था ?

7) तुलसी के साहित्य में कौनसी भावना प्रधान है ?

8) तुलसी के पत्नी का नाम क्या है ?

9) रामचरितमानस में कितने कांड हैं ?

10) विनय पत्रिका की भाषा कौनसी है ?

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

ऊपजि – पैदा हुई	वामन – सूक्ष्म, छोटा	पुष्टि – पोषण
कांता – पत्नी	अनुग्रह – कृपा	अस्थि – हड्डिया
कांड – भाग	पातकी – पापी	सूरसरि – गंगा नदी
भव – भवसागर		

4.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1 अ)

1) राम	2) 1532-1623 ई	9) सीही	
4) अवधी	5) रामायण	10) आठ	
7) माधुर्य भाव	8) वल्लभाचार्य	11) शांत	12) सूरदास

आ)

1) सूरदास के गुरु का नाम वल्लभाचार्य था।

2) सूरदास का जन्म स्थान सीही है।

3) 'सूरसागर' सूरदास की एकमात्र प्रामाणिक रचना है।

4) सूरदास श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन करते थे।

5) सूरसागर का आधार ग्रंथ भागवत है।

6) तुलसीदास के गुरु का नाम बाबा नरहरिदास है।

7) तुलसी के साहित्य में 'समन्वय' की भावना प्रधान है।

8) तुलसी के पत्नी का नाम 'रत्नावली' था।

9) रामचरितमानस में सात कांड है।

10) विनय पत्रिका की भाषा ब्रज है।

4.7 सारांश :

1) सगुण भक्तिकाव्य में ईश्वर के सगुण साकार और अवतारी रूप का वर्णन किया है।

2) रामभक्ति शाखा के तुलसीदास सर्वश्रेष्ठ कवि रहें।

3) गोस्वामी तुलसीदास ने समस्त विरोधों में सामंजस्य प्रस्थापित किया। उन्होंने समाज में, धर्म में, आचार-व्यवहार में, भक्ति भावना में फैली अनेक विषमताओं को दूर कर उनमें समन्वय लाने का अद्‌भुत प्रयास किया और उसमें सफल भी हुए। तुलसी लोकनायक थे।

4) सूरदास कृष्णभक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि रहें।

5) अष्टछाप के कवियों में सूरदास का स्थान सर्वोपरि रहा।

6) 'सूरदास' श्रृंगार और वात्सल्य रस के सम्राट माने जाते हैं।

7) सगुण भक्त कवियों ने निर्गुण भक्ति शाखा की उपेक्षा नहीं की।

4.8 स्वाध्याय :

१) सगुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

२) सूरदास के व्यक्तित्व एवं साहित्य का परिचय दीजिए।

३) तुलसीदास के व्यक्तित्व एवं साहित्य का परिचय दीजिए।

४) रामचरितमानस की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

५) सूरसागर का भावपक्ष और कलापक्ष विशद कीजिए।

4.9 क्षेत्रीय कार्य :

१) सगुण भक्ति शाखा के तुलसीदास, सूरदास, अष्टछाप के कवियों के प्रसिद्ध पदों का संग्रह कीजिए।

२) मराठी के राम और कृष्ण साहित्य का तुलसीदास और सूरदास के पदों का साथ साथ अध्ययन कीजिए।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए।

१) हिंदी साहित्य की भूमिका - डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी

२) हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त

३) हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र

४) हिंदी साहित्य का इतिहास - आ. रामचंद्र शुक्ल

५) हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां - डॉ. शिवकुमार शर्मा

●●●

हिंदी साहित्य का इतिहास
इकाई – 1 – रीतिकाल

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय विवेचन

1.3.1 रीतिकाल : नामकरण

1.3.2 रीतिकालीन राजनीतिक परिस्थियाँ

1.3.3 रीतिकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ

1.3.4 प्रतिनिधि कवि

1.3.4.1 आचार्य केशवदास

1.3.4.2 मतिराम

1.3.4.3 देव

1.3.4.4 बिहारी

1.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

1.5 पारिभाषिक शब्द – शब्दार्थ

1.6 स्वयं अथ्ययन के लिए प्रश्नों के उत्तर

1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

1) रीतिकालीन नामकरण की समस्या से परिचित होंगे।

2) रीतिकालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिवेश को समझ सकेंगे।

3) रीतिकालीन कवियों के वर्गीकरण के आधार को समझ सकेंगे।

4) रीतिकालीन प्रमुख आचार्य केशवदास मतिराम और देव के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित होंगे।

5) बिहारी और उनकी रचना 'सतसई' के महत्त्व से अवगत होंगे।

प्रस्तावना :

संवत् 1700 से 1900 (सन् 1643 ई. से 1843 ई.) तक का हिंदी साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य से अनेक दृष्टियों से अलग प्रकार का रहा है। इस युग को सामान्यतः तत्कालीन प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर रीतिकाल के नाम से पहचाना जाता है।

हिंदी साहित्य के आदिकाल में अनेक साहित्यिक गतिविधियों का सम्मिश्रण दिखाई देता है तो भक्तिकाल में पारलौकिकता की प्रधानता उपलब्ध होती है। रीतिकाल का साहित्य इससे अलग प्रकार का साहित्य है। इस युग के साहित्य को परलोक तथा मोक्षादी की चिंता नहीं थी। अपितु इसका जीवन के प्रति भौतिक दृष्टिकोन रहा है।

रीतिकालीन साहित्य लोकसाहित्य तथा सिद्धान्त साहित्य के बीच का साहित्य माना जाता है। इसमें होनेवाली पाण्डित्यइइ प्रदर्शन की प्रबल भावना के कारण कवि कर्म तथा आचार्य कर्म का एक साथ निर्वाह करनेवाले साहित्यकारों का प्रभाव रहा है। भावुकता और कला का अद्‌भुत समन्वय करनेवाले रीतिकालीन कवि ने काव्य को शुद्ध कला के रूप में ग्रहण किया था। इस युग के कवियों को तीन वर्गों रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त में विभाजित किया जाता है ।

रीतिकालीन काव्य धार्मिक प्रचार, भक्ति का माध्यम या समाज सुधार का साधन नहीं था। वह ऐहिकतामूलक नई दृष्टि का परिचायक था। यह जनपथ से राजपथ की ओर अग्रेसर होनेवाली काव्य धारा होने के कारण इसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिवेश के प्रभाव के कारण विलासिता आ गई थी। अतः आलोच्च इकाई में हम रीतिकालीन राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियाँ, नामकरण तथा प्रमुख कवियों का परिचय प्राप्त करने की कोशिश करेंगे।

1.3.1 नामकरण :

हिंदी साहित्य का उत्तर मध्यकाल (सं. 1700-1900) नामकरण की दृष्टि विवादास्पद रहा है।

मिश्रबंधुओं ने इसे 'अलंकृत काल' के नाम से अभिहित किया है तो आचार्य रामचंद्र जी ने आलोच्च काल की सीमा (सं. 1700-1900) निर्धारित करते हुए 'रीतिकाल' के नाम से पुकारा है। शुक्ल जी इस काल का उल्लेख 'उत्तर मध्यकाल' के नाम से भी करते हैं। पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी ने इस काल को 'श्रृंगारकाल' कहना उचित समझा है। राम शंकर शुक्ल 'रसाल' जी ने इस काल का उल्लेख 'कलाकाल' के रूप में किया है । इससे स्पष्ट होता है कि 'रीतिकाल' का नामकरण एक समस्या बनकर रह गई है। अधोलिखित पंक्तियों में हम नामकरण को विस्तार से जानने का प्रयास करेंगे.

1) अलंकृत काल :

सर्वप्रथम मिश्रबंधुओं ने अपने ग्रंथ 'मिश्र बंधु विनोद' में इस काल की अलंकरण की प्रवृत्ति की प्रधानता को देखकर 'अलंकृत काल' नाम दिया है। उन्होंने इस काल को पूर्वालंकृत काल और उत्तरालंकृत काल के रूप में विभाजित कर विवेचन किया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि इस समय के कवियों ने सालंकार भाषा लिखने का अधिक प्रयोग किया है। इस काल के कवि अलंकारों के प्रचुर प्रयोग से श्रोताओं और पाठकों को प्रभावित तथा कविता सुन्दरी को अलंकरों से अलंकृत करना चाहते थे।

आपत्तियाँ :

मिश्रबंधुओं के इस नामकरण का परवर्ती युग के अनेक विद्वानों ने खंडन किया है। उनका कहना है कि अलंकार तो सभी कालों की कविता में मिल जायेंगे। साथ ही अलंकारों के अतिरिक्त अन्य काव्यांगों का निरूपण भी रीतिकालीन काव्य में हुआ है, अतः अलंकृत काल कहने से उन सबकी उपेक्षा हो जायेगी। यह भी उल्लेखनीय है कि मिश्र बंधु इस काल को अलंकृत काल कहते हुए भी इस काल में रीतिग्रंथों की प्रचुरता को स्वीकारते हुए कहते हैं – ''इस प्रणाली के साथ रीति ग्रंथों का भी प्रचार बढा और आचार्यत्व की वृद्धि हुई। आचार्य लोग तो स्वयं कविता करने की रीति सिखलाते थे।''

इससे स्पष्ट होता है कि मिश्रबंधु भी इस काल की सामान्य प्रवृत्ति के रूप में रीति को स्वीकारते हैं। दूसरी प्रमुख बात यह है कि अलंकृत शब्द अपने अर्थ की सीमित सीमा के कारण इस काल की समस्त काव्य-प्रवृत्तियों को अपने में समेट नहीं सकता।

2) श्रृंगार काल (पं. विश्वानाथ प्रसाद मिश्र) :

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अनेक युक्तियों के द्वारा विवेच्य काल को 'श्रृंगार काल' के नाम से अभिहित किया है। उनके मतानुसार इस युग की प्रमुख प्रवृत्ति श्रृंगारिकता की रही है। अतः इस युग को 'श्रृंगारकाल' कहना युक्तिसंगत होगा।

मिश्रजी द्वारा दिया गया यह नाम महत्त्वपूर्ण है। आचार्य शुक्ल जी ने भी इसका विरोध नहीं किया है। उन्होंने कहा है, ''वास्तव में श्रृंगार और वीर, इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता श्रृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई श्रृंगार काल कहे तो कह सकता है।''

आपत्तियाँ :

शुक्ल जी के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि वे 'श्रृंगारकाल' नाम को स्पष्ट रूप से नहीं स्वीकारते अपितु कहते हैं कि ''रस के विचार से कोई श्रृंगार काल कहे तो कह सकता है।'' उन्होंने इस काल को 'रीतिकाल' मानकर ही विवेचन किया है।

आश्चर्य की बात यह है कि मिश्र जी ने इस काल का नामकरण तो 'श्रृंगारकाल' किया है किंतु इसका वर्गीकरण 'रीतितत्त्व' को ध्यान में रखकर किया है। वे रीतिकालीन कवियों की तीन श्रेणियाँ (रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त) रीतितत्त्व की प्रधानता पर ही करते हैं।

मिश्र के नामकरण का विरोध करनेवाले विद्वानों का प्रश्न है कि इस काल में नीति, भक्ति और वीर रस की कविताएँ लिखनेवाले कवियों को कहाँ रखा जाएँ?

इस युग के कवियों ने श्रृंगार रस के सामूचे अंगों का विवेचन भी नहीं किया है। श्रृंगार रस के रति स्थायी भाव तथा उसके आलंबन, विभाव, उद्दीपन विभाव, अनुभाव और संचारियों का निरूपण इन कवियों के काव्य में नहीं है।

इस युग के काव्य में श्रृंगार की प्रधानता निश्चित है, लेकिन वह स्वतंत्र नहीं है, वह रीति पर निर्भर है। अंतः इस काल को 'श्रृंगार काल' कहना उपयुक्त है लेकिन उचित नहीं है ऐसा माना जाता है।

3) कला काल (रामशंकर शुक्ल 'रसाल') :

रामशंकर शुक्ल 'रसाल' जी ने रीतिकाल को 'कलाकाल' के नाम से पुकारा है। उन्होंने इस काल के काव्य में कला पक्ष की प्रधानता देखकर यह नामकरण किया है। साहित्य के दो प्रमुख पहलू होते हैं- भाव पक्ष और कला पक्ष। आलोच्य काल के काव्य में कला पक्ष पर अधिक ध्यान दिया गया था। इस पूरे युग में काव्य के चमत्कृत एवं चातुर्यपूर्ण गुणों की ओर विशेष ध्यान देकर कला के नियमोपनियमों से सम्बन्ध रखनेवाले रीति या लक्षण ग्रंथों की रचना की गई है। अतः रसाल जी इसे कलाकाल मानने की बात करते हैं।

आपत्तियाँ :

रसाल जी के नामकरण का विरोध करनेवाले विद्वानों ने कई एक आपत्तियाँ उठाई हैं। उनका मानना है कि केवल कला पक्ष से कविता नहीं बनती अपितु काव्य में भाव पक्ष और कला पक्ष इतने एकरूप होते हैं कि उन्हे अलग नहीं किया जा सकता।

दूसरी बात यह है कि कला काल कहने से ऐसी ध्वनि निकलती है जैसे रीतिकाल में भाव पक्ष की नितांत उपेक्षा हुई है, जबकि वस्तुतः ऐसा नहीं हुआ है। रीतिकालीन काव्य में हृदयपक्ष का भी सुंदर उद्घाटन हुआ है। अतः इसे कला-काल कहना उचित नहीं है।

रीतिकाल (आचार्य रामचंद्र शुक्ल) :

आचार्य रामचंद्र शुक्लजी ने अलोच्य काल को पद्धति विशेष के आधार पर 'रीतिकाल' नाम दिया है। इस काल के कवियों में लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर रीतिग्रंथ लिखने की प्रवृत्ति थी। इस काल का वातावरण ही कुछ इस प्रकार का था कि प्रायः प्रत्येक कवि रीति परम्परा का अनुकरण करने में गौरव अनुभव करता था। इस युग में रीति परम्परा का निर्वाह करना प्रतिष्ठा का साधन बन गया था। शुक्ल जी के अनुसार इस युग के अधिकांश कवियों के पास काव्यशास्त्रीय दृष्टि थी और वे शास्त्र के अनुसार ही काव्य लेखन किया करते थे। काव्यांग की चर्चा करना और लक्षण ग्रंथ लिखकर पांडित्य प्रदर्शन करना उस युग की प्रमुख विशेषतः थी।

'रीति' शब्द का सामान्य अर्थ है - 'पद्धति' या 'विधि'। काव्य लिखने की विशिष्ट पद्धति के रूप में यह शब्द प्रयुक्त होने लगा था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने रीति शब्द का प्रयोग 'काव्यशास्त्रीय दृष्टि' के अर्थ में ही किया है। हिंदी साहित्य के रीतिकाल के सम्बन्ध में इस शब्द को स्वीकारनेवालों ने इसका अर्थ स्वीकार किया- रस, नायिका-भेद, अलंकार, शब्द शक्ति, छन्द आदि का निरूपण करना। अतः रीतिकाल में प्रयुक्त शब्द 'रीति' का सम्बन्ध काव्यशास्त्र से है। इसका सामान्य अर्थ है - काव्य के विभिन्न अंगों के लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत करना या काव्यांग निरूपण करना है। इसे ही रीति-पद्धति कहा गया है। इस युग के प्रायः सभी कवियों ने रीति पद्धति पर काव्य रचना की है। अतः इसकाल को रीतिकाल कहा जाता है।

आपत्तियाँ :

आचार्य शुक्ल जी के रीतिकाल नाम को यद्यपि अधिकांश विद्वानों ने स्वीकार किया है, तथापि उस पर कुछ अक्षेप भी किए गए हैं। कुछ विद्वानों का तर्क है कि 'रीतिकाल' संज्ञा व्यापक नहीं है, क्योंकि इसके अंतर्गत घनानंद, बोधा, आलम, ठाकुर बिहारी जैसे वे प्रतिनिधि कवि नहीं आ पाते, जिन्होंने काव्यांग विवेचन करनेवाला कोई लक्षण ग्रंथ नहीं लिखा है।

5) उत्तर मध्यकाल (मिश्रबंधु और आचार्य रामचंद्र शुक्ल) :

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने मानव मनोविज्ञान के आधार पर आलोच्य काल को 'मध्यकाल' नाम दिया है। मानव मनोविज्ञान किसी भी कालावधि को सामान्य तया तीन भागों में विभाजीत करता है- आदि, मध्य और अंत या आधुनिक। शुक्ल जी ने मध्यकाल में दो प्रमुख प्रवृत्तियों को देखकर प्रथम भाग को पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) और दूसरे भाग को उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) नाम दिया है।

वास्तव में मिश्रबंधुओं ने अपनी रचना 'मिश्रबंधु विनोद' में हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन करते समय आदि, मध्य और अंत या आधुनिक शब्द का प्रयोग शुक्ल जी के पहले किया था। शुक्ल जी ने मिश्रबंधुओं की परम्परा को अपनाकर 'मध्यकाल' नामकरण का प्रयोग करते हुए

इसको पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल के रूप में विभाजित करते हुए विवेचन किया है।

आपत्तियाँ :

मिश्रबंधु और शुक्ल जी के उक्त नामकरण का अनेक विद्वानों ने विरोध किया है। उनका मानना है कि इस नामकरण से साहित्य की किसी भी प्रवृत्ति का बोध नहीं होता। यह केवल काल के आधार पर नामकरण किया है।

6) भौतिकवादी साहित्य – (डॉ. शिवकुमार शर्मा) :

डॉ. शिवकुमार शर्मा जी ने रीतिकालीन साहित्य में होनेवाले भौतिक दृष्टिकोण की प्रधानता को देखकर इसे 'भौतिकवादी साहित्य' नाम दिया है। इसमें पारलौकिकता या मोक्षादि की चिंता न होकर भौतिक जीवन को ही महत्त्वपूर्ण माना है। अतः यह नाम दिया है।

इस नामकरण का कोई विशेष महत्त्व नहीं स्वीकार किया जाता।

1.3.2 राजनीतिक परिस्थितियाँ :

रीतिकाल मुगलों की सत्ता का परम वैभव का काल है। इस युग में व्यक्तिवादी, निरंकुश राजतंत्र का बोलबाला था। रीतिकाल के पूर्व सम्राट अकबर ने अपनी उदारवादी एवं सहिष्णुता की नीति से हिंदू तथा मुस्लिमों में सांस्कृतिक समन्वय स्थापित कर विशाल मुगल साम्राज्य की स्थापना की थी।

अकबर के उत्तराधिकारी जहाँगिर के कार्यकाल में विशेष कुछ भी नहीं हुआ। उसके कार्यकाल में राज्यविस्तार या विशेष गतिविधियाँ न के बराबर रही। सुरा और सुन्दरी की भोग लालसा उसे विरासत में मिली थी। उसके कारण इस भावना को बल मिला।

शाहजहाँ के शासन काल में रीतियुग का प्रारंभ हुआ। उसके राजदरबार में तथा समकालीन राजाओं और सामन्तों के दरबारों में वैभव, भव्यता एवं अलंकरण की प्रधानता थी। यह समय सुख-शांति तथा समृद्धि का काल था। राजा और सामन्त अपने दरबारों में गुणीजनों कवियों, कलाकारों को आश्रय देते थे। शासकों में आत्मप्रशंसा का मोह एवं श्रृंगारिक मनोरंजन की चाह थी। ताजमहल एवं मयूर सिंहासन जैसी भव्य कृतियों का निर्माण इस युग में हो चुका था। उत्तर भारत के अधिकांश राजपूत राजाओं एवं सामन्तों ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। मुगलों का शासन दक्षिण में अहमदनगर, बीजापुर एवं गोलकुण्डा तक फैल गया था।

शहाजहाँ में कलागत उदारता थी। उसमें सहिष्णुता थी। उसमें प्रदर्शन एवं वैभव-विलासिता की भावना प्रधान थी। उसका गहरा प्रभाव रीतिकालीन साहित्य पर पडा है।

सं. 1775 में शाहजहाँ रोगग्रस्त हुआ। उसने सत्ता के लिए जंगली जानवरों की तरह लडनेवाले पुत्रों को देखा। दारा की मृत्यु से मानो मानवता की हत्या हुई और प्रायः मुगल वंश में धार्मिक

सहिष्णुता तथा उदारता समाप्त हो गई।

शाहजहाँ के उपरान्त औरंगजेब मुगल-शासक बना जो अपनी धर्मांधता एवं कट्टरता के लिए कुप्रसिद्ध रहा है। उसकी साम्राज्य विस्तार लिप्सा बढती ही गयी; जिसने उसे आजीवन आराम से बैठने नहीं दिया। उसकी धार्मिक कट्टरता की नीति तथा अमानुषिक व्यवहारों से अनेक देशी शासक-सामन्त बौखला उठे तथा हिंदू जनता विक्षुब्ध हो उठी। औरंगजेब की नीति के फलस्वरूप उसे मराठों और सिक्खों के साथ दीर्घकाल तक लडकर असफलता को झेलना पडा।

औरंगजेब का व्यक्तित्व रागालक तत्त्वों से रहित था। साहित्य, संगीत, कला, सौंदर्य, ऐश्वर्य तथा विलास के प्रति उसे घोर चिढ थी। उसने अपने कार्यकाल में संगीत की घोर उपेक्षा की। वेश्यावृत्ति तथा मद्यपान के पूर्ण निषेध के सम्बन्ध में उसने सरकारी फरमान भी जारी करवा दिए थे। परंतु उनका बंद हो जाना सरल नहीं था उस समय अनेक सामन्तों के अनेक हरम थे और उनमें अनेक रक्षिताएँ और नर्तकियाँ भी थी।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद राजनीतिक स्थिति अत्यन्त बिकट तथा शोचनीय हो गई। राजनीति की दृष्टि से इस काल को घोर निराशा और अंधःकार का युग समझना चाहिए। औरंगजेब के उत्तराधिकारी एकदम अयोग्य, असमर्थ, विलासी, पंगु एवं नपुंसक सिद्ध हुए। केंद्रीय शासन के जीर्ण हो जाने से अनेक प्रदेशों के शासक स्वतंत्र हो गए। आगरा में जाटों, राजस्थान में राजपूतों तथा पंजाब में बन्दा बैरागी एवं दक्षिण में मराठों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित की।

स्थानीय शासकों की स्वतंत्रता की चेष्टाओं से मुस्लिम सत्ता दिन-ब-दिन कमजोर होने लगी थी। उसकी कमर तोडने का काम विदेशी आक्रमणकारी नादिरशाह और अब्दाली ने किया।

समस्त देश में फैली शत्रुता, अशान्ति और शासकों की कमजोरी का लाभ उठाते हुए अंग्रेजों ने बक्सर की लडाई में शाहआलम को पराजित कर मुगल साम्राज्य को अपनी कठपुतली बना दिया।

जहाँदारशाह, मुहम्मदशाह रंगीले जैसे विलासी एवं कमजोर शासकों के राज्य में नैतिकता, शौर्य, पराक्रम, स्वाधीनता की भावना ही समाप्त हो गई थी। वेश्याओं, तबलचियों, सारंगी वादकों के इशारों पर शासक नाचने लगे थे। राजमहलों में वेश्याओं और हिजडों की मनमानी चलने लगी। उनके इशारों पर उच्च पदों पर नियुक्तियाँ होने लगी। उन्हें श्रेष्ठ प्रासाद एवं अधिकार दिए जाने लगे। ऐसे अधिकार प्राप्त अधिकारी एवं शासक जनता पर मनमाने अत्याचार करने लगे।

सम्राट मुहम्मदशाह की रंगीली लीलाओं के कारण उन्हें इतिहासकारों ने रंगीले की उपाधि दी है। वह अपना समय नाच-रंग तथा मदिरापान में व्यतीत करता था। शाह को वेश्या ऊधमबाई से अनन्य प्रेम था। उससे उत्पन्न पुत्र ही उसका उत्तराधिकारी बना। वह कमजोर था। देशी राजाओं में भोग-विलास का अत्यधिक आकर्षण था। उनके दरबारों और महलों में वेश्याओं तथा रक्षिताओं की कमी नहीं थी।

वास्तव में यह युग घोर नैतिक पतन की पराकाष्ठा का काल है। राजनीति की दृष्टि से यह काल मुगल साम्राज्य के वैभव एवं पतन का काल माना जाता है।

1.3.3 सामाजिक परिस्थितियाँ :

सामाजिक दृष्टि से रीति काल को प्रारंभ से अंत तक घोर अधःपतन का युग कहा जाना चाहिए। इस काल में सामन्तवाद का बोलबाला था। सामन्तवादी व्यवस्था के होनेवाले सारे दुर्गुणों एवं दोषों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव जनसाधारण के जीवन पर पड रहा था। सामाजिक व्यवस्था का केंद्रबिंदु बादशहा था। बादशाह के अधीन मनसबदार, अमीर-उमराव थे। अमीर-उमराव एवं मनसबदारों के बाद ओहदों के अनुसार दूसरे कर्मचारी थे। सब अपने से ऊपरवाले को प्रसन्न एवं खुश रखने में मग्न एवं अपनी कर्तव्यपूर्ति समझते थे। ऊपरवाले नीचेवालों को मात्रा सम्पति समझते थे। उनका अस्तित्व केवल अपने लिए मानते थे। ऊपर से नीचे तक यह शासकों का वर्ग था। यह वर्ग किसान-मजदूर एवं सेठ -साहूकार तथा व्यापारी वर्ग का शोषण करता था। किसान-मजदूर एवं श्रमजीवियों की कमाई का शोषण सेठ-साहूकार तथा व्यापारी करते थे। किसान मजदूर एवं श्रमजीवियों का शासक और सेठ-साहूकार एवं व्यापारी शोषण करते थे। किसान तथा श्रमजीवियों का निम्न वर्ग सभी ओर से शोषित एवं पीडित था। अकाल, अतिवृष्टि जैसी प्राकृतिक अपदाओं के साथ-साथ युद्धों, सेनाओं के प्रयाणों आदि के कारण इस वर्ग की आय के एक मात्र साधन कृषि की हानि होती थी। श्रमजीवी वर्ग को किसी- न किसी की बेगार करनी पडती थी। बेगार करनेवाले श्रमजीवी मजदूर को पारिश्रमिक के नाम पर कोडे की मार झेलनी पडती थी।

शासक सामन्त और अमीर उमराव का वर्ग ऐश्वर्य और वैभव-विलास में डूबा हुआ था। सूरा और सुंदरी में डूबे हुए विलासी शासक-सामन्त काम कला की शिक्षा को ही बडी उपलब्धि मानते थे। शाहजहाँ की वैभवप्रियता, विलासलिप्सा, और प्रदर्शन प्रवृत्ति का तत्कालीन सामन्तीय जीवन पर गहरा प्रभाव पडा था। परिणामस्वरूप पौरूष का ऱ्हास होकर केवल विलास और प्रदर्शन की प्रवृत्ति शेष रह गई थी। समाज में मनोबल की कमी और बौद्धिकता का अभाव निर्माण हुआ था।

रीतिकाल में नारी केवल भोग तृप्ति का बेजान यंत्र बन गई थी। बहु विवाह, बालविवाह, अनमेल विवाह, रखैल प्रथा, पर्दा प्रथा जैसी अनेकानेक कुप्रथाओं के बल पर नारी के व्यक्तित्व का संकोच किया गया था। अनेक छोटे-मोटे सामन्तों के पास रखैलों की भरमार थी। मुगल सम्राटों की अनेक पत्नियाँ, रखैलियाँ और परिचारिकाएँ केवल भोगदासी के रूप में जीवन-यापन करती थी। अनेक पत्नियाँ रखना और रखैलियों से घर भरना प्रतिष्ठा की बात मानी जाती थी। अनैतिक-नाजायज सम्बन्ध रखना और ऐसे सम्बन्धों से बच्चे पैदा करना साधारण बात मानी जाती थी। नारी को सम्पत्ति मानकर उसपर अधिकार स्थापित करना, उसको भोगना, उसका अपहरण करना अभिजात वर्ग के लोगों के लिए साधारण बात थी।

अनेक बेगमों, रखैलों एवं रक्षिताओं के होते हुए भी शासक सामन्त वेश्याओं के यहाँ पडे रहते

थे। उनके इशारों पर लोगों के भाग्य का निर्णय तक हो जाया करता था। इस प्रकार से विलास में डूबे हुए ये लोग अपनी संतान की देखभाल तक नहीं कर पाते थे। शासक सामन्तों के शिक्षक भी घटिया व्यक्ति होते थे। वे काम कला की शिक्षा देकर अपने कर्म की इतिश्री समझते थे।

लडकियों के साथ छेडछाड, तीतर-बटेर पालना और उन्हें लडाना शहजादों और राजकुमारों की दिनचर्या बन गई थी। विलासिनी माताओं की देखरेख के अभाव में राजकुमारियाँ और शहजादियाँ अपने महलों और हरमों में काम करनेवाले सामान्य कर्मचारियों और नौकरों के साथ प्रेम-व्यापार करने लग जाती थी। अनेक सपत्नियों के कारण पति से पूर्ण प्रेम प्राप्त न करनेवाली औरते अपनी प्रेम की भूख मिटाने और शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए नाजायज सम्बन्ध रखती थी।

'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति इस काल पर पूर्णतया लागू होती है। नारी को केवल विलास और मनोरंजन का साधन मानना, उसके शारीरिक लावण्य और कोमलता को ही महत्त्व देने की सामन्तीय सोच का बुरा प्रभाव समाज पर हुआ था। समाज में नारी को केवल वस्तु के रूप में स्वीकारा जाता था। उसकी अनुपम शक्ति-संपन्न अन्तरात्मा की ओर कोई ध्यान नही देता था। रूढि-परम्परा और अंधविश्वासों के कटघरों में उसे कैद कर उसपर अमानवीय अत्याचार किए जाते थे। नाशपान-वेश्यावृत्ति समाज-जीवन का अभिन्न अंग था।

जनसाधारण की शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधा, सम्पत्ति की रक्षा आदि का इस काल में कोई प्रबन्ध नहीं था। किसान-मजदूर के श्रम-माल का शोषण करना, उनपर अत्याचार करना शोषक शासकों के लिए साधारण बात थी। नैतिक मूल्यों में गिरावट आ गई थी। जनसामान्य में अंधविश्वास तथा रूढियाँ घर कर गई थी। ज्योतिषियों की वाणी, शकुनशास्त्र पर अगाध विश्वास था। उस समय की जनता में विलास की प्रधानता के कारण भक्ति की भावना मंद पड गई थी। जनता प्रायः अशिक्षित थी। वह भाग्यवादी बन गई थी। जनता में नागरिकता का पूर्ण अभाव था। स्वार्थांध होकर विलास के उपकरण जुटाना उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य रह गया था। सुंदर लड़कियों का अपहरण करवा लेना, वेश्याओं को सम्मान देना, मनोरंजन के अनेक घटिया साधनों में लीन रहना तत्कालीन समाज की दशा को स्पष्ट करता है। कृषक समाज जीविका-निर्वाह के साधनो से रहित था। उसके श्रम का स्वामी बनकर शोषण करनेवाला सामन्त वर्ग भोग विलास में अंधा बन गया था। प्रशासन क्षेत्र में जागीरदारों का दबदबा था। उसके अत्याचारों से श्रमिक एवं किसान वर्ग पीडित था।

कला-कौशल और व्यापार की ओर भी शासन का ध्यान नहीं था। शासकों की ओर से उपेक्षित होने के कारण कला-कौशल एवं व्यापार की हानि हो गई। सभ्यता और संस्कृति के ऱ्हास के कारण इस युग को आर्थिक संकटों को झेलना पडा।

सामाजिक विषमता, छुआ-छूत की भावना, जाति-व्यवस्था के कठोर बंधनों के कारण समाज में

अनेक दरारें पडी थी। सामाजिक एकता के अभाव के कारण समाज विनाश की ओर बढ रहा था।

1.3.4 प्रतिनिधि कवि :

1.3.4.1 केशवदास :

केशवदास कालक्रम की दृष्टि से भक्तिकाल और प्रवृत्ति की दृष्टि से रीतिकाल के प्रमुख कवि हैं। उन्हें संधिकाल का कवि भी कहा जाता है। भक्त एवं रसिक दोनों रूपों में केशव अग्रणी स्थान के अधिकारी हैं। रीतिकाल के प्रवर्तक के रूप में केशवदास का सम्मान किया जाता है। रीतिबद्ध काव्य धारा के प्रमुख कवि केशवदास के आचार्यत्व और कवित्व को लेकर विद्वानों ने आज तक विवाद चलता रहा है। उनके व्यक्तित्व में आचार्यत्व, कवित्व, रसिकत्व और भक्ति का मणिकांचन योग दिखायी देता है। रीतिकाल के वे पहले कवि हैं जिन्होंने काव्यशास्त्र के सभी अंगों पर प्रकाश डाला है।

जन्म : केशवदास का जन्म एक धानाढ्य ब्राह्मण कुल में सं. 1612 में हुआ था। कई विद्वानों के मतानुसार केशवदास का जन्म सं. 1618 में हुआ था।

जन्मस्थान – केशवदास का जन्मस्थान ओरछा माना जाता है।

पिता – केशवदास जी के पिता का नाम काशीनाथ मिश्र था। वे उस समय के संस्कृत साहित्य के प्रकांड पंडित माने जाते थे। उन्होंने संस्कृत में 'शीघ्र बोध' नामक ज्योतिष ग्रंथ का निर्माण किया था। राजा मधुकर शाह केशवदास के पिता का विशेष आदर-सम्मान करते थे।

परिवार – केशवदास का सम्बन्ध पण्डितों के उस परिवार से था, जहाँ नौकर और सेवक भी संकृत भाषा का व्यवहार किया करते थे। परिवार के विद्वत्ता पूर्ण वातावरण का प्रभाव केशवदास के साहित्य पर पाण्डित्य प्रदर्शन के रूप में दिखाई देता है। संस्कृत पर जबरदस्त अधिकार रखनेवाले केशवदास ने ब्रज में काव्य लेखन किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में संस्कृत के कठिन शब्दों का प्रयोग किया है। अतः उन्हें 'कठिन काव्य का प्रेत' भी कहा गया है।

आश्रयदाता – केशव ओरछा नरेश महाराज इंद्रजीत के दरबार में रहा करते थे। वहाँ इनका बहुत माना था। ओरछा नरेश इन्हें अपना गुरू स्वीकार करते थे और उन्होंने इन्हें २१ गाँव दान में दिये थे।

गुरू – रीतिकाल के प्रमुख कवि बिहारी के गुरू के रूप में केशवदास का सम्मान किया जाता है। कई विद्वानों का मानना है कि केशवदास बिहारी के पिता थे ।

बहुमुखी व्यक्तित्व –

केशवदास स्वाभिमानी, गंभीर विचारक, तथा दृढ परिचय के व्यक्ति थे। सुख संपन्न परिवार में जन्म लेने के कारण उनमें धनलोलुपता नहीं थी। राजा इंद्रजीतसिंह की इन पर विशेष कृपा थी। बीरबल

के वे प्रिय थे। उनके चरित्र में रसिकता, भावुकता, राजभक्ति, ओतप्रोत थी। रीति परम्परा उनका उल्लेख कवि, आचार्य, रीति परम्परा के प्रवर्तक, रीतिग्रंथों के प्रणेता एवं अलंकारवादी कवि तथा कठिन काव्य के प्रेत, हृदयहीन कवि, काव्य का नया मार्ग खोलनेवाले के रूप में किया जाता है।

मृत्यु – केशवदास की मृत्यु सं. 1682 में हुई थी परंतु कई विद्वान उनका समय सं. 1678 तक स्वीकार करते हैं।

रचनाएँ – केशवदास का हिंदी साहित्य में एक प्रतिष्ठित आचार्य एवं कवि दोनों ही दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी रचनाएँ यों हैं –

1) रसिक प्रिया 2) कविप्रिया 3) रामचंद्रिका

4) रतनबावनी 5) वीरसिंह देव चरित 6) विज्ञानगीता

7) जहाँगीर जसचंद्रिका 8) नखशिख 9) छंदमाला

रसिकप्रिया –

रसिकप्रिया रस विवेचन से सम्बन्धित ग्रंथ है। इस ग्रंथ में प्रमुखतः श्रृंगार रस का वर्णन है, अन्य रसों का इन्होंने गौण रूप से वर्णन किया है। इस ग्रंथ के अंत में अनरस नाम से पाँच रस दोषों का निरूपण किया है। श्रृंगार रस निरूपण में नायक-नायिका भेद का निरूपण किया गया है। इस संबंध में केशव पर विश्वनाथ, भोज, भानुमिश्र का प्रभाव है। केशव ने श्रृंगार को रसराज मानकर उसमें अन्य रसों का समावेश किया है।

कविप्रिया –

केशव की कविप्रिया में कवि-शिक्षा, अलंकार निरूपण और दोषों का वर्णन है। कवि शिक्षा प्रकरण में कवि के कर्तव्यों और कवियों के उत्तम, मध्यम, अधमादि भेदों का उल्लेख किया है। केशव की इस रचना पर भर्तृहरि और मम्मट का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें केशव ने २३ दोषों का वर्णन किया है।

रामचंद्रिका –

रामचंद्रिका एक महाकाव्य है। इसमें 39 प्रकाश या सर्ग हैं। इसमें रामचरित का गान वाल्मीकी की रामायण के आधार पर किया गया है। इसमें राम के पुनीत चरित का विवेचन है। इसमें अनेक छंदों और अलंकारों का प्रयोग किया गया है। अतः इसे छंदों और अलंकारों का पिटारा मात्र कहा गया है। इसके महाकाव्यत्व पर आपत्ति उठाई जाती है।

विज्ञानगीता –

इसमें आध्यात्मिक विषयों की चर्चा है। यह प्रबन्ध काव्य माना जाता है। इसमें नाटक रुपक शैली को अपनाया है। इसका निर्माण 'प्रबोध चंद्रोदय' के आधार पर किया गया है।

छन्दमाला –

केशव की यह छन्द सम्बन्धी रचना है। यह एक छोटी सी पुस्तिका है। जिसमें साधारण रूप से छन्द संबंधी शिक्षा दी गई है। इस रचना का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व है, विषय-विवेचन की दृष्टि से नहीं।

'वीरसिंह देव चरित', 'रतन बावनी', 'जहाँगीर जसचंद्रिका' आदिकालीन वीर चरितात्मक शैली की रचनाएँ हैं। रतन बावनी में कुछ पद प्रक्षिप्त हैं। इसमें ओरछा नरेश मधुकरशाह के पुत्र की वीरता का चित्रण है। वीरसिंह चरित में राजा इन्द्रजीतसिंह के भाई वीरसिंह की प्रशंसा का वर्णन है। जहाँगीर जसचंद्रिका में बादशाह जहाँगीर की प्रशंसा है। नखशिख श्रृंगार वर्णन से सम्बन्धित ग्रंथ है।

विशेषताएँ –

1) श्रृंगारभावना

आचार्य केशव श्रृंगारी कवि थे। अपनी सहृदयता एवं रसिकता के द्वारा उन्होंने अकबर, बीरबल एवं राजा इंद्रजीत को भी प्रभावित किया था। केशव ने नखशिख चित्रण के द्वारा नायिकी के रूप सौंदर्य की झाँकी प्रस्तुत की है। रसिक प्रिया, कवि प्रिया, नखशिख आदि में श्रृंगार ही प्रमुख प्रतिपाद्य रहा है।

2) भक्तिभावना –

आचार्य केशवदास ने रामभक्ति परंपरा में 'रामचंद्रिका' प्रबंध काव्य की रचना की है। उन्होंने रामभक्ति की है परंतु वे केवल राम के भक्त नहीं थे। उन्होंने सरस्वती तथा अन्य देवी-देवताओं की भक्ति कर बहुदेववादी होने का प्रमाण दिया है। उनकी भक्ति भावना पर भक्तिकालीन भक्तिभावना का प्रभाव न होकर रीतिकालीन भक्ति भावना का प्रभाव था।

3) आश्रयदाताओं की प्रशंसा –

रीतिकाल के अधिकांश कवि विभिन्न राजदरबारों के आश्रय में रहते थे। वे अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा कर राजदरबारों से वृत्ति प्राप्त करते थे। केशवदास ओरछा नरेश के दरबार में रहते थे। उन्होंने राजा इंद्रजीत, इंद्रजीत के भाई वीरसिंह तथा जहाँगीर आदि की प्रशंसा की है। उन्होंने अपनी प्रशंसा, रसिकता और सहृदयता से इंद्रजीत, वीरसिंह, अकबर, बीरबल आदि को प्रभावित एवं प्रसन्न किया था।

4) रीति निरूपण –

रीतिकालीन कवियों की प्रधान प्रवृत्ति रीति निरूपण अर्थात लक्षण ग्रंथों की रचना करना था। केशवदास रीतिकालीन कवि थे। रीतिकाल के प्रवर्तक एवं प्रणेता के रूप में उनका सम्मान किया जाता है। उन्होंने 'कविप्रिया' 'रसिकप्रिया' आदि में रीति निरूपण किया है। वास्तव में उन्होंने संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों को ही आधार बनाकर अपने लक्षण ग्रंथों की रचना की है।

5) अलंकारिकता –

केशवदास दरबारी कवि होने के कारण तत्कालीन दरबारी काव्य की प्रवृत्ति के अनुरूप उनके काव्य में अलंकरण की प्रधानता उपलब्ध होती है। यह दरबारी विलासी मनोवृत्ति का प्रभाव रहा है। अलंकारों के बिना कविता-सुन्दरी सुशोभित नहीं होती ऐसी मान्यता रखनेवाले युग में केशवदास का काव्य सृजन होने के कारण उन्होंने अपने काव्य में अलंकारों का समावेश किया है। इसमें मौलिकता का अभाव एवं कृत्रिमता ही अधिक दिखाई देती है। अनुभूति की कमी होने के अलंकार चमत्कार के फँसे केशव के काव्य में काव्यत्व की हानि हो गई है।

सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग करनेवाले केशव को 'अलंकारवादी कवि' के रूप में माना जाता है।

6) प्रकृति चित्रण –

केशवदास के प्रकृति चित्रण की महत्त्वपूर्ण विशेषतः यह है कि उन्होंने परम्परा से प्रचलित उपमानों का प्रयोग न करके नये-नये उपमानों एवं प्रतीकों को काव्य में स्थान दिया है।

7) संवाद योजना –

एक कुशल कवि की कसौटी संवाद को काव्य के रूप में प्रस्तुत करने की क्षमता मानी जाती है। केशवदास की संवाद योजना की प्रायः सभी समालोचकों ने प्रशंसा की है। डॉ. नरेंद्र ने केशव की संवाद-योजना की प्रशंसा करते हुए कहा है कि, 'संवाद योजना के क्षेत्र में यह वाक्य इतना अनूठा है कि इस सीमा तक हिंदी साहित्य का कोई भी कवि नहीं पहुँच पाया है।'

8) भाषा –

केशवदास की भाषा 'ब्रजभाषा' थी। किंतु साधारण पाठक के स्तर से ऊँची थी। संस्कृत मोह एवं पाण्डित्य प्रदर्शन के कारण ही उन्हें 'कठिन काव्य का प्रेत' या 'हृदयहीन कवि' कहा है।

9) छंद –

जहाँ तक छंद की विविधता का प्रश्न है, हिंदी साहित्य का कोई भी कवि केशव की समानता

नहीं कर सकता। छंदों की विविधता के कारण केशवदास द्वारा रचित 'रामचंद्रिका' को आलोचकों ने छंदों का अजायबघर या पिटारा कहा है।

10) काव्यरूप –

केशव ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्यों का निर्माण किया है। रतन बावनी, वीरसिंह देव चरित, विज्ञान गीता, रामचंद्रिका प्रबंध काव्य हैं तो कवि प्रिया, रसिक प्रिया और नखशिख मुक्तक हैं।

11) रस –

केशवदास श्रृंगार रस का चित्रण रसराज के रूप में करते हुए उसमें अन्य रसों का समावेश करते हैं।

विवादास्पद व्यक्तित्व –

हिंदी साहित्य के इतिहास में केशवदास के कवित्व और आचार्यत्व को लेकर विवाद चलता रहा है। केशव आचार्य के नाते जितना महत्त्व रखते हैं उतना कवि के नाते नहीं। उनकी चित्तवृत्ति काव्यशास्त्रीय निरूपण में अधिक रमी है परंतु कई एक पंडितों और विद्वानों ने उनके आचार्य पद पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए उन्हें कवि घोषित किया है। इस मत का समर्थन करनेवालों का दावा है कि केशव को आचार्य पद पर विराजमान करनेवाली दोनों पुस्तकें मौलिक न होकर संस्कृत के आचार्यों का अनुवाद मात्र है। केशव ने संस्कृत से अनुवाद करते समय कई स्थानों पर परिवर्तन किया है परंतु ऐसे स्थानों पर गलतियाँ ही अधिक हुई हैं।

केशवदास को कवि के रूप में अस्वीकार करनेवालों की दृष्टि में वे केवल आचार्य है कवि नहीं। क्योंकि कवि के हृदय में जो अनुभूति होती है, वह केशव में नहीं है। उन्होंने केवल पंडिताई दिखाने का प्रयत्न किया है। तभी तो उनकी प्रसिद्ध रचना 'रामचंद्रिका' के विषय में एक आलोचक ने कहा है कि, यह पुस्तक छंदों की नुमाईश और अलंकारों का पिटारा मात्र है। इस दृष्टिकोन से केशव न आचार्य सिद्ध होते है और न ही कवि।

केशव ने अपने काव्य में छंद, अलंकार और श्रृंगार रस को अत्यधिक महत्त्व दिया है। श्रृंगार का रसराज के रूप में स्वीकार करनेवाले केशव ने अलंकारों का प्रभावी प्रयोग किया है। उनकी कविता अलंकारों के मायाजाल में फँसी हुई दिखाई देती है।

आचार्य और कवि की भूमिका में फँसे केशव ने काव्य शास्त्रीय ग्रंथों में काव्यों का निरूपण करते समय कोई प्रौढ और गम्भीर विवेचन न कर केवल संस्कृत काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद किया है। उनका अनुवाद भी ठीक नहीं हुआ है। केशव की मौलिकता इस बात में है कि उन्होंने पहली बार काव्य शास्त्र के लगभग सभी अंगों पर प्रकाश डाला है। उनका महत्त्व उदाहरणों और नए वर्गीकरण

करनेवाले के रूप में है।

केशव का जन्म और कार्यकाल भक्तियुग का है परंतु काव्यलेखन की प्रवृत्ति की दृष्टि से उन्हें रीतिकाल के अंतर्गत रखा जाता है।

1.3.4.2 मतिराम

रीतिकालीन कवियों में मतिराम का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। वे रस एवं अलंकार निरूपक रीति आचार्यों में प्रमुख थे। वे रीतिकालीन कवि चिंतामणि और भूषण के भाई थे। वे अनेक राजाओं के आश्रय में रहे थे। वे सरस, ललित एवं सुकुमार रचना के धनी थे।

जन्म एवं जन्मस्थान :

मतिराम का जन्म संवत् 1667 में उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले के 'तिकवांपुर' गांव में हुआ था।

पिता :

मतिराम के पिता का नाम 'रत्नाकर त्रिपाठी' था। वे तिकवांपुर के निवासी थे। उनके तीन पुत्र रीतिकाल के कवि थे।

रचनाएँ : मतिराम की रचनाएँ हैं –

१) ललित ललाम २) रसराज ३) छंदसार पिंगल ४) मतिराम सतसई ५) फूल मंजिरी ६) लक्षण श्रृंगार ७) अलंकार पंचाशिका ८) साहित्यसार

ललित ललाम :

यह अलंकार ग्रंथ है। मतिराम की यह प्रसिद्ध रचना है। अलंकार शिक्षा में इसका उपयोग किया जाता है। इसमें 100 अलंकारों के लक्षण और उदाहरण दिए हैं। इसका अलंकार सम्बन्धी विवेचन मौलिक नहीं है, फिर भी उसे चिन्तनपूर्ण और तर्कसंगत कहा जा सकता है। लक्षणों के अनुरूप ही सरस उदाहरण देने के कारण यह रचना बोधगम्य बन गई है। यह मतिराम की श्रेष्ठ रचना है।

रसराज :

रीतिग्रंथों की दृष्टि से 'रसराज' का महत्त्व है। इसमें श्रृंगार रस एवं नायिका भेद का विवेचन भानुमिश्र की 'रसमंजिरी' और रहीम के 'बरवै नायिका' भेद के आधार पर किया गया है। दोहों में लक्षण है तथा कवित और सवैयों में सरस उदाहरण देते हुए विषय को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। यह रचना मतिराम की कीर्ति का आधार है। अपने विषय में यह अनुपम रचना है।

साहित्य सार :

मतिराम की छोटी रचना है। इसमें नायिका भेद का वर्णन है।

लक्षण श्रृंगार :

इसमें भावों और विभावों का वर्णन है। यह छोटी रचना है।

मतिराम सतसई :

यह सतसई परम्परा की रचना है। मतिराम ने इसकी रचना भोगनाथ के आश्रय में की थी। इसमें नीति और धर्म के दोहे पर्याप्त हैं।

पंचशिका :

यह अलंकार निरूपण की दृष्टि से अत्यंत सामान्य रचना है। इसमें आश्रयदाता की प्रशंसा संबंधी स्फुट रचनाओं पर लक्षण घटाकर इसे ग्रंथ का रूप दिया गया है। न तो इसके विवेचन में कोई व्यवस्था है और न औचित्य ही।

मतिराम के कई ग्रंथ अप्राप्त हैं। उनका केवल उल्लेख मिलता है। कवि और आचार्य का अपूर्व समन्वय उनके काव्य में मिलता है। उनकी काव्य भाषा अत्यंत प्रवाहमयी दिखाई देती है। श्रृंगार भावना का अत्यंत सजीव चित्रण उनकी कविता में दिखाई देता है। उनका अलंकार विवेचन मौलिक न होने पर भी सुचिन्तित एवं तर्कसंगत है।

मतिराम : कवि या आचार्य ? :

लक्षण ग्रंथों या काव्यागों का निरूपण करनेवाले रचनाकारों को आचार्य कहा जाता है परंतु आचार्य शुक्ल जी ने अनेक कारणों को उद्धृत करते हुए कहा है हिंदी में लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर रचना करनेवाले रीतिकाल के सैकडो कवि आचार्य कोटि में नहीं आते।

रीतिकाल के अनेक रचनाकारों के कवित्व और आचार्यत्व पर प्रश्न उपस्थित किए जाते हैं। मतिराम द्वारा काव्यांग निरूपण से सम्बंधित अनेक रचनाओं का निर्माण किया गया है। अतः उनकी काव्यांग निरूपण से सम्बन्धित रचनाओं या रीति ग्रंथों के आधार पर उन्हें आचार्य सिद्ध करने की कोशिश की जाती है तो कई एक आलोचक उनके आचार्य पद पर प्रश्न उठाते हैं। अधोलिखित पंक्तियों में हम मतिराम के दोनों रूपों पर प्रकाश डालेंगे –

आचार्य मतिराम ? :

मतिराम ने 'रसराज', 'ललित ललाम', 'अलंकार पंचशिका', 'लक्षण श्रृंगार' आदि में काव्यांगों की चर्चा करते हुए लक्षण ग्रंथ लिखे हैं। मतिराम के लक्षण ग्रंथ कही कही सदोष दिखाई देते हैं किंतु

सरल और सुबोध है। बडे छंदों के द्वारा दिए गए लक्षणों की तुलना में दोहों में दिए गए उनके लक्षण विशेष रूप से स्पष्ट, सरल और सुबोध हैं। मतिराम द्वारा दिए गए उदाहरण काव्य रस से परिपूर्ण है। उनके उदाहरण अलौकिक जगत् के न होकर लौकिक जगत् के सौंदर्य को दिखानेवाले हैं। श्रृंगार रस का प्रमुख रस के रूप में चित्रण करनेवाले मतिराम के काव्य में नायिका भेद की प्रधानता दिखाई देती है। उनके नायिका भेद चित्रण पर संस्कृत के भानुमिश्र की रचना 'रस-मंजिरी' का प्रभाव है। इसमें मौलिकता की कमी है लेकिन इसके उदाहरण सरस बन गए हैं।

'ललित ललाम' अलंकार विवेचन सम्बन्धी रचना है। इसमें १०० अलंकारों के लक्षण दोहों में दिए गए हैं और उदाहरण कवित्त एवं सवैयों में दिए गए हैं। अलंकारों के शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। रस और अलंकारों के विवेचन के साथ-साथ मतिराम ने काव्यशास्त्र की अन्य विशेषतओं एवं समस्याओं पर प्रकाश डाला है परंतु यह मतिराम को आचार्य सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है। अतः उन्हे कवि मानना चाहिए।

कवि मतिराम ? :

मतिराम के आचार्यत्व को अस्वीकार करनेवाले उन्हें कवि मानते हैं। उनका मानना है कि मतिराम की भाषा में प्रवाहात्मकता तथा सरसता है। भाषा में स्पष्टता तथा भावाभिव्यंजकता दिखाई देती है। उनकी भाषा शब्दाडम्बर से मुक्त है। भावाभिव्यक्ति में कृत्रिमता का अभाव एवं स्वाभाविकता दिखाई देती है। उन्होंने सहज, प्रवाही, प्रभावी भाषा प्रयोग के द्वारा भावों की अभिव्यक्ति की है। उन्होंने वचनवक्रता या बोझिल भाषा प्रयोग से अपने आपको बचाया है। बोधगम्यता उनकी भाषा की विशेषता है। उनका कवि हृदय उनकी रचनाओं में झलकता है। उनके काव्य में दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन के सुंदर, लुभावने, दिल को छू लेनेवाले चित्र देखने को मिलते हैं। मतिराम का दाम्पत्य एवं गृहस्थी जीवन का चित्रण संपूर्ण रीतिकाल में बेजोड एवं अनुपम माना जाता है।

मतिराम द्वारा किया गया भावों का चित्रण उनकी सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि और कवि हृदय का परिचायक है। उसमें कोमलता, सुंदरता, कल्पना, स्वाभाविकता है। अलंकारों का स्वाभाविक और प्रभावी चित्रण मतिराम की पहचान मानी जाती है।

रस की दृष्टि से भा मतिराम की कविता अपना विशेष स्थान रखती है। उन्होंने श्रृंगार रस और उसके आलम्बन का सुन्दर समन्वय किया है। श्रृंगार रस प्रयोग में मतिराम की संयत भाषा अपने आप में एक पहचान बन गई है।

छंदों का विषयानुरूप प्रयोग करनेवाले मतिराम ने बिम्बों का स्वाभाविक और बडी मात्रा में प्रयोग किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मतिराम रीतिकाल के श्रेष्ठ कवि थे। उनकी कविता में

आचार्यत्व और कवित्व का अनुपम समन्वय उपलब्ध होता है। भाव सौंदर्य, सरलता, प्रवाहमयी भाषा, मधुर शब्द प्रयोग, कवि हृदय की उत्कटता, संवेदनशीलता उन्हें कवि सिद्ध करती है। उन्होंने मानव-प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है। उन्होंने जिस प्रकार से उत्कृष्ट कवित्त और सवैये लिखे हैं वैसे ही दोहे भी लिखे हैं। उनके पूरे काव्य में अर्थ गम्भीरता दिखाई देती है। जीवन की अनुभूतियों एवं विरही हृदयों की व्यथाओं की झाकियाँ मतिराम ने मार्मिक ढंग से प्रस्तुत की है। मतिराम का नायिका का रूप सौंदर्य चित्रण अत्यंत स्वच्छ एवं सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्त हुआ है। गृहस्थ जीवन की अनेक स्थितियों के आकर्षक चित्र उपलब्ध होते हैं। सामान्य जीवन की वास्तव एवम सहज स्वाभाविक, अभिव्यक्ति उनके काव्य की शक्ति है। कृत्रिमता से दूर मतिराम की कविता भाषा और भाव की दृष्टि से बेजोड मानी जाती है।

1.3.4.3 देव

रीतिकाल के प्रमुख रचनाकार देव कवि और आचार्य के रूप में प्रसिद्ध थे। उन्हें उनके कृतित्व के कारण प्रतिष्ठा मिली थी। उन्होंने अपनी रचनाओं में अपने विषय में जो कुछ लिखा है, उसके आधार पर स्पष्ट होनेवाले तथ्यों का विवेचन आगे दिया जाएगा.

जन्म एवं जन्मस्थान

देव का जन्म उत्तर प्रदेश के इटावा में सं. 1730-31 (सन् 1673 ई.) में हुआ था।

जाति :

देव काश्यप गोत्री, कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।

पूरा नाम :

देव का पूरा नाम देवदत्त था। देव इनका उपनाम था।

आश्रयदाता :

इन्हें जीविका निर्वाह के लिए अनेक आश्रयदाताओं के पास जाना पडा था। इनके आश्रयदाताओं के नाम हैं- आजमशाह, भवानी दत्त वैश्य, कुशलसिंह, उद्योतसिंह, राजा भोगीलाल, सुजानमणि, अकबर खॉ आदि। वे राजा भोगीलाल के यहाँ अधिक समय तक रमे थे।

मृत्यु :

देव की आयु 94-95 साल की मानी जाती है। उनकी मृत्यु सं. 1824-25 (सन् 1767 ई) स्वीकार की जाती है।

ग्रंथसंपदा :

कवि देव द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या ७२ बतायी जाती हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में उपलब्ध ग्रंथों का नामोलेख किया है। जैसे १) भाव-विलास, २) अष्टयामी ३) भवानी - विलास ४) प्रेमतरंग ५) कुशल विलास ६) देव चरित्र ७) जाति-विलास ८) प्रेम-चंद्रिका ९) सुजान विनोद (रसानन्द लहरी) १०) काव्य रसायन (शब्द रसायन) ११) सुखसागर तरंग १२) राग रत्नाकर १३) प्रेम पच्चीसी १४) तत्त्व दर्शन पच्चीसी १५) आत्मदर्शन पच्चीसी १६) जगद्दर्शन पच्चीसी १७) देवमाया प्रपंच १८) रस विलास १९) देव शतक आदि।

भाव विलास :

इसमें रस सामग्री और रस भेदों-विशेषतः श्रृंगार रस और नायक-नायिका भेद तथा ३९ अलंकारों का विवेचन है। इस पर भानुदत्त मिश्र की 'रसमंजरी' और 'रसतरंगिनी' तथा भामह के 'काव्यालंकार' और दण्डी के 'काव्यादर्श' एवं केशव की 'कविप्रिया' - 'रसिकप्रिया' का प्रभाव है।

प्रेम चन्द्रिका :

इसमें प्रेम का सामान्य रूप में वर्णन किया है और उनके भेदोपभेदों का उल्लेख है।

राग रत्नाकर :

यह राग-रागिनियों से सम्बन्धित ग्रंथ है। यह संगीत विषयक लक्षण ग्रंथ है।

शब्द रसायन (काव्य रसायन) :

इसमें क्रमशः काव्य स्वरूप, शब्द शक्ति, नवरस, नायक-नायिका भेद, रीति, गुण, वृत्ति, अलंकार और पिंगल का विवेचन 'काव्यप्रकाश' 'साहित्यदर्पण' 'रसमंजिरी' और 'रसतरंगिनी' के आधार पर किया गया है।

अष्टयामी : (अष्टयाम)

इसमें दिन के आठ पहरों के बीच हनेवाले नायक-नायिका के विविध विलासों के वर्णन है।

देवचरित्र :

यह कृष्ण के जीवन से सम्बद्ध प्रबंध काव्य है।

देव शतक :

अध्यात्म सम्बन्धी ग्रंथ 'देवशतक' में जीवन और जगत् की असारता, ब्रह्मतत्त्व तथा प्रेम के महात्म्य का वर्णन है।

देवमाया प्रपंच :

संस्कृत के 'प्रबोध-चंद्रोदय' नाटक का पद्यबद्ध अनुवाद 'देवमाया प्रपंच' है।

देव के बहुत सारे ग्रंथ एक-दूसरे से सम्बन्धित है। वे एक-दूसरे से पूर्ण स्वतंत्र नहीं है। बहुत सारे पद जो एक ग्रंथ में पाये जाते हैं वे दूसरे ग्रंथों मे भी देखे जा सकते हैं। थोडी-बहुत घटत-बढत के पश्चात् देव एक नया ग्रंथ तैयार कर लिया करते थे। यह था भी स्वाभाविक क्योंकि देव को उपयुक्त आश्रयदाता की खोज में बहुत भटकता पडा था और उन्हें अपने आश्रयदाता को ग्रंथ समर्पण करने के लिए ऐसा करना पडा होगा। देव की यह प्रवृत्ति और भी स्पष्ट हो जाती यदि उनके समस्त ग्रंथ उपलब्ध होते।

विशेषताएँ :

1) काव्य के सभी अंगों का विवेचन

देव के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि इन्होंने काव्य के सभी अंगों का वर्णन अपने विविध ग्रंथों में किया है।

2) पुनरावृत्ति :

देव द्वारा एक ही विषय से सम्बन्धित अनेक ग्रंथों के प्रणयन का परिणाम यह हुआ कि एक विषय की दूसरे ग्रंथों में पुनरावृत्ति होती रही।

3) स्पष्टता :

रीति निरूपण की दृष्टि से देव के विवेचन में गुण और दोष दोनों ही स्पष्ट होते हैं।

4) आत्मविश्वासी :

देव अपने मत को प्रबल शब्दों में आत्मविश्वास के साथ व्यक्त करते हैं।

5) सशक्त कवित्व :

आचार्यत्व की अपेक्षा देव का कवित्व अधिक सशक्त है।

6) नवीन उद्भावना :

देव ने काव्यशास्त्रीय विवेचन में कुछ नवीन उद्भावनाओं से भी काम लिया है।उनमें से कुछ मान्य है और कुछ अमान्यहै। देव का रीति निरूपण साधारण पाठक और गम्भीर अध्येता के लिए उपयोगी नहीं है।

7) आधार ग्रंथ संस्कृतः

देव ने काव्यशास्त्रीय निरुपण जैसे काव्य स्वरूप का वर्णन, शब्द शक्ति विवेचन, रस क्षेत्र का विवेचन एवं वर्गीकरण, नायिका भेद का शास्त्रीय विवेचन तथा अलंकार निरूपण में संस्कृत काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का आधार लिया है। काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, रसमंजिरी, रसिकप्रिया आदि संस्कृत काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का उन्होंने आधार लिया है।

8) श्रृंगार रस की प्रधानता :

देव मुख्यतः श्रृंगार रस के कवि हैं। इनके काव्य में जो वैराग्य भावना की अभिव्यक्ति हुई है, वह इनके श्रृंगारी जीवन की प्रतिक्रिया रूप में समझनी चाहिए। प्रेम प्रसंगों में इनकी मनोवृत्ति अधिक रमी है। इनके किसी भी पद्य को उठाकर देख लीजिए उसमें प्रेम का आवेश इतना अधिक मिलेगा कि सहज ही उसकी रस चेतना की गम्भीरता का आभास मिल जायेगा।

9) कल्पना वैभव :

देव की रचनाओं में कल्पना वैभव ओतप्रोत है। उनके समस्त श्रृंगारी काव्य में कल्पना की ऊँची उडान का पर्याप्त योग रहा है। इनकी रचनाओं में कल्पना वैभव और अर्थ वैभव का सुन्दर समन्वय उपलब्ध होता है।

10) भावात्मक शैली :

देव की अभिव्यंजना की शैली प्रशंसनीय है। भावावेग की दशा में उन्होंने भावात्मक शैली को अपनाया है।

11) शब्द योजना :

शब्द शक्ति मर्मज्ञ देव ने विषयानुकूल शब्द चयन किया है। कही कही पर अक्षर मैत्री के ध्यान से इन्होंने अशक्त शब्दों का भी प्रयोग किया है। तुकान्त और अनुप्रास के मोह में पडकर इन्होंने कही-कही शब्दों और वाक्यों तक को तोड-मरोड दिया है। कही-कही शब्द व्यय अधिक हुआ है और अर्थ व्यय अल्प।

12) बिम्ब योजना :

इनके बिम्बयोजना में विशेष सौंदर्य की सृष्टि हुई है। रूप, अनुभव, मिलन आदि से सम्बद्धित बिम्बों का प्रभावी प्रयोग हुआ है।

13) भाषा :

देव की भाषा ब्रज है। यह व्याकरण की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक सदोष है। उसमें शब्दों की

तोड-मरोड है। उसमें पुनरुक्तियाँ भी हैं और अनुप्रास आदि शब्दालंकारों का विशेष आग्रह भी है किन्तु यह सब कुछ उन्होंने काव्य में सौंदर्य वृद्धि के लिए किया है। जहाँ इनकी भाषा सुव्यवस्थित और स्वच्छ है वहाँ इनकी कविता अत्यन्त सरस और हृदयग्राही बन पडी है।

देव के ग्रंथों में विचार की स्पष्टता, वर्गीकरण की मौलिकता तथा उदाहरणों की रमणीयता दृष्टव्य है। इनके लक्षणों से इनके उदाहरण अधिक मौलिक, मार्मिक, सरस और स्पष्ट है। देव शब्द शक्ति के मर्मज्ञ थे। शब्दों और वर्णों का संतुलन कर उनकी भावानुकूल गति की व्यवस्था करना देव की विशेषतः रही है।

1.3.4.4 बिहारी :

बिहारी रीतिकाल के अत्यन्त लोकप्रिय हैं। वे रीतिकालीन प्रणय भावना और श्रृंगार भावना के प्रतिनिधि कवि हैं। हिंदी साहित्य में श्रृंगारी कवि के रूप में उनका स्थान प्रमुखता से लिया जाता है। वे अनेक राजाओं के आश्रय में रहें। अनेक राजा उनके दोहों पर मुग्ध थे। अनेक राजाओं से मान-सम्मान एवं वार्षिक वेतन पानेवाले बिहारी मिर्जा राजा जयसिंग के प्रिय थे। बिहारी की अक्षय कीर्ति का आधार उनकी रचना 'सतसई' है।

जीवनवृत्त :

जन्मस्थान :

बिहारी के जन्मस्थान के सम्बन्ध में तीन मत प्रचलित हैं। ग्वालियर, बसुआ गोविंदपुरा और मथुरा। इन तीन स्थानों से इनका सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। परंतु बिहारी के एक दोहे के आधार पर कहा जा सकता है कि उनका जन्म ग्वालियर में हुआ, बाल्यावस्था में वे बुंदेलखंड में रहें, युवावस्था में फिर ग्वालियर चले आए तथा प्रौढावस्था में मथुरा में रहे। इनके ग्वालियर में जन्म होने के पुष्ट प्रमाण उपलब्ध हैं।

जन्मतिथि :

बिहारी का जन्म सं. १६५२ में ग्वालियर के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था।

पिता :

बिहारी के पिता के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद दिखाई देते हैं। उनके एक दोहे में पिता का नाम 'केशवराय' आया है। इसी कारण अधिकतर विद्वानों का विश्वास है कि यह 'केशवराय' ही रीतिकालीन प्रमुख कवि 'केशवदास' है। कई एक विद्वान इस मत का विरोध करते हुए कहते हैं कि केशवराय रीतिकालीन कवि केशवदास से भिन्न दूसरे कवि केशवराय थे। बिहारी जब आठ वर्ष के थे तब उनके पिता ग्वालियर छोडकर ओरछ गए थे। उनके साथ बिहारी ओरछा गए और पिता के साथ ओरछा से वृंदावन गए। वहाँ बिहारी ने साहित्य के साथ संगीत का अध्ययन किया।

भाई–बहन :

बिहारी के एक भाई और एक बहन का होना बताया जाता है।

शिक्षा–दीक्षा एवं सम्मान :

बिहारी आठ साल की अवस्था में पिता के साथ ओरछा चले गए थे। वहाँ उन्होंने काव्य ग्रंथों का सम्यक अध्ययन किया। उनके पिता ओरछा छोडकर वृन्दावन चले गए तब बिहारी भी उनके साथ वृंदावन जले गए। वृन्दावन में उन्होंने साहित्य के साथ संगीत का अध्ययन किया। वृन्दावन में इनकी शाहाजहाँ से भेट हुई। वे इन्हें आगरा ले गए। वहाँ पर इन्होंने फारसी शायरी का अध्ययन किया। शाहाजहाँ के पुत्र के जन्मोत्सव मे सम्मीलित अनेक राजाओं के सामने बिहारी ने अपनी काव्य निपुणता का खूब परिचय दिखाया। जिससे प्रसन्न होकर अनेक राजाओं ने बिहारी की वार्षिक वृत्ति बाँध दी थी।

मिर्जा राजा जयसिंह उन्हे अधिक प्रिय थे। उनके सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है कि राजा जयसिंह अपनी नयी रानी के साथ विलास में इतने मग्न हो गए थे कि राजदरबार में आना भी उन्होने छोड दिया था। लोगों ने बिहारी से कहा कि तुम ही कुछ कर सकते हो, तब बिहारी ने निम्नलिखित दोहा लिखकर राजा के पास भेज दिया–

'नहिं पराग नहि मधुर–मधु नहिं विकासु इहिं काल।

अली कली ही सों बंध्यौं, आगे कौन हवाल।।'

इस दोहे से मिर्जा राजा जयसिंह अत्यन्त प्रसन्न हो गए और राजकाज देखने लगे। उन्होंने बिहारी को अपने दरबार में सम्मानीत स्थान दिया। वे बिहारी को एक–एक दोहे के लिए एक–एक अशरफी देते थे।

गुरू :

बिहारी ने निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी स्वामी नरहरिदास से संस्कृत–प्राकृत का अध्ययन किया। कई विद्वानों का मानना है कि बिहारी के गुरू हरिदासी सम्प्रदाय के महंत नरहरिदास जी थे।

पत्नी :

डॉ. विजयेंद्र स्नातक के कथनानुसार बिहारी की स्त्री एक अच्छी कवयित्री थी।

बहु भाषा विद :

बिहारी ने संस्कृत, प्राकृत एवं ब्रजभाषा के अनेक ग्रंथों का सूक्ष्म अध्ययन किया था। इन भाषाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था। उन्होंने फारशी शायरी का अच्छा अध्ययन किया था।

बहुज्ञाता :

साहित्य के साथ संगीत का अध्यन करनेवाले बिहारी बहुज्ञाता थे। गणित, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल आदि विषयों का ज्ञान रखनेवाले बिहारी विद्वान, गम्भीर प्रकृतिवाले, सहिष्णु, भ्रमणशील, रसिक तथा अनुभवी व्यक्ति थे। उनका जीवन बुन्देलखंड, मथुरा, आगरा, वृन्दावन, जयपुर, में व्यतीत हुआ।

मृत्यु :

पत्नी की मृत्यु के बाद वे संसार से विरक्त हो गए और वृंदावन में रहने लगे। सं. १७२० के आसपास में इनका शरीरपात हुआ।

रचनाएँ :

बिहारी की एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' कही जाती है। हिंदी साहित्य में इस रचना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें ७१३ दोहे संकलित हैं। इतनी कम मात्रा में काव्य लिखकर अमरता प्राप्त करनेवाले बिहारी हिंदी साहित्य के एकमात्र कवि माने जाते हैं। बिहारी के दोहों पर संस्कृत के काव्यशास्त्र की गहरी छाप दिखाई देती है। बिहारी के दोहों में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक परिस्थिति का प्रभावी एवं व्यापक चित्रण उपलब्ध होता है। भक्ति, नीति और श्रृंगार से ओतप्रोत बिहारी के दोहों से तीन-तीन अर्थ निकाले जा सकते हैं। गागर में सागर भर लेने की क्षमता रखनेवाले बिहारी की सतसई पर अब तक पचास से अधिक टीकाएँ लिखी हैं। जिससे इनकी लोकप्रियता स्पष्ट होती है। सतसई बिहारी की काव्य-प्रतिभा, काव्यानुभूति और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से श्रेष्ठ रचना है। उसमें सौंदर्यानुभूति, रसिकता एवं व्यग्यात्मकता का श्रेष्ठ समन्वय हुआ है। सतसई के कारण बिहारी हिंदी के कवियों में श्रेष्ठ स्थान के अधिकारी बन गए हैं। और उनकी रचना सतसई हिंदी काव्य की अपूर्व निधि सिद्ध हो गई है।

काव्य की विशेषताएँ :

1) भक्ति भावना

बिहारी सतसई में भक्ति के अनेक दोहे उपलब्ध होते हैं। सतसई के मंगलाचरण के रूप में रचित दोहा 'मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोइ।। जा तन की झाँई परै स्थान हरित द्युति होई।।' बिहारी की भक्ति भावना का ज्वलंत प्रमाण है। इनकी किसी वाद-विशेष पर आस्था नहीं थी। उन्होंने समान भाव से रामकृष्ण और नरसिंह का स्मरण किया है। सगुण-निर्गुण की मुक्तकुंठ से आराधना करनेवाले बिहारी ने नामस्मरण पर अत्यंत बल दिया है। माना जाता है कि अनेक भक्ति के दोहे लिखनेवाले बिहारी ने भक्त का हृदय नहीं पाया था। उन्होंने राधा और कृष्ण के जीवन के घोर श्रृंगारी और वासनात्मक चित्र उतारे हैं। उनके भक्ति विषयक दोहे केवल कवच के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। भक्तों के हृदय की सी पवित्रता, आर्द्रता, कोमलता, कातरता, दीनता और भावमग्नता उनमें समानतः नहीं है।

अतः बिहारी को भक्त कवि की कोटि में नहीं गिना जाता।

2) श्रृंगार चित्रण

बिहारी एक श्रृंगारी कवि हैं। वे श्रृंगार संयोग वर्णन में अधिक रमे हैं। वियोग पक्ष के लिए आवश्यक हृदय की द्रवणशीलता, सहानुभूति की कमी होने के कारण उन्होंने संयोग वर्णन ही अधिक किया है। उनकी रचनाओं में वासना जन्य 'हाव भाव' एवं विविध चेष्टाओं का अंकन बडी सूक्ष्मता से हुआ है। उन्होंने राधा कृष्ण के माध्यम से श्रृंगार वर्णन किया है। उन्होंने राधाकृष्ण को सामान्य नायक और नायिका के रूप में प्रस्तुत किया है। इनकी प्रेम लीलाओं का सूक्ष्म तथा मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। श्रृंगारिकता की कोई भी स्थिति उनकी सूक्ष्म दृष्टि से ओझल नहीं हुई है। इसमें नख-शिख वर्णन, नायिका भेद, षट्ऋतु वर्णन है। बिहारी का श्रृंगार वर्णन वासनात्मक और अश्लील है। इसमें प्रेम का कोई उच्च रूप नहीं है। उसकी दृष्टि शारीरिक सौंदर्य तक सीमित रही है। इसमें आत्मिक सौंदर्य का अभाव है।

3) बाह्याडम्बर का विरोध

किसी भी प्रकार के दिखावेपन से बिहारी को चिढ थी। तत्कालीन परिस्थितियों में ढोंग करके भोली-भाली जनता को लूटना या ठगना आम बात बन गई थी। इस वृत्ति पर प्रहार करना युग की माँग थी। अतः बिहारी ने अंतःकरण की शुद्धता पर अधिक बल देते हुए दिखावे एवं बाह्याडम्बर का विरोध किया है। उनके अनुसार माथे पर तिलक लगाकर माला जपने से जीव का कल्याण संभव नहीं है। सच्चे मन से राम का स्मरण कर, मन को एकाग्र एवं स्थिर करके, अंतर्गत की शुद्धि द्वारा ही मानव मुक्ति का अधिकारी हो सकता है-

'जप माला छापै तिलक, सरै न एकौ कामु।

मन काँचे नाचै वृथा, साँचे राँचे रामु।।'

4) नीति कथन

बिहारी ने अपने नीति सम्बन्धी दोहों में लोक व्यवहार के आधार पर पर्याप्त शिक्षा दी है। उनके नीति परक दोहों में मानव जीवन की सफलता एवं शांति की बात कही गई है। उनके नीति कथन में अनुभव की गहराई होने के कारण उन्हें 'अनुभूति का भण्डार' कहा जाता है।

5) प्रकृति चित्रण

प्रकृति चित्रण की परम्परागत शैली को बिहारी ने अपनाया है। 'ऋतु वर्णन' उसी का प्रतिफल है। प्रकृति का आलंबन, उद्दीपन, अलंकरण एवं मानवीकरण में बिहारी की प्रवीणता उपलब्ध होती है।

6) काव्य रूप

'बिहारी सतसई' मुक्तक रचना है। मुक्तक के सभी गुण सतसई में उपलब्ध होते हैं। भाषा की समाहार शक्ति और समाज शक्ति दर्शनीय है। बिहारी के एक एक दोहे में अनेक भाव भरे हैं। इसलिए कहा जाता है कि, ''बिहारी सतसई एक ऐसी मीठी रोटी है, जिसको जिधर से तोडा जाय, उधर से मीठी ही लगती है।''

7) भाषा एवं शब्द प्रयोग

बिहारी ने शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। साहित्यिक ब्रज भाषा का रूप इनके दोहों में निखरकर आया है। इस भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था। इनकी भाषा पर बुन्देलखंडी और पूर्वी हिंदी का प्रभाव है। तत्कालीन राजदरबारों के प्रभाव के कारण कहीं-कहीं अरबी-फारसी शब्द भी आ गए हैं। भाषा में लोकोक्तियाँ एवं मुहावरों का भी प्रयोग दिखाई देता है। इनका शब्द गठन और वाक्य विन्यास व्यवस्थित है। उन्हें शब्द और वर्ण के स्वभाव की परख थी। नाद सौंदर्य इनकी भाषा का सहज गुण सतसई में उपलब्ध होता है। उनकी भाषा लय और संगीत और नर्तन की विशेषताओं से युक्त है। उनकी भाषा प्रांजल, प्रौढ, मधुर और सरस है।

8) अलंकार

रीतिकालीन अन्य कवियों की तरह बिहारी अलंकारवादी कवि नहीं थे। फिर भी उन्होंने स्वच्छन्द रूप से अलंकारों का प्रयोग किया है। उनके एक ही दोहों में अनेक अलंकार मिलते हैं। परम्परागत सभी अलंकारों का उन्होंने प्रयोग किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, आदि शब्दालंकारों का प्रयोग करनेवाले बिहारी का प्रिय अलंकार रहा है- 'रूपक'

9) छंद

बिहारी ने सतसई में केवल दो छंदों-दोहा तथा सोरठा का प्रयोग किया है। दोहा छंद बिहारी का प्रिय छंद रहा है। उनके द्वारा प्रयुक्त दोहा छन्द की अधिकता देखकर कुछ आलोचकों ने कहा है कि बिहारी केवल दोहा छंद ही जानते थे। अन्य छंदों का उन्हें ज्ञान हीं था।

1.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

प्रश्न-निम्नलिखित में से सही पर्याय चुनिए -

1) रीतिकाल का समय सं..... से.....तक माना जाता है।

अ) 1000 से 1500 ब) 1700 से 1900 क) 1900 से आजतक ड) 1375 से 1700

2) रीतिकाल में.....रस की प्रधानता थी।

अ) भक्ति ब) वीर क) श्रृंगार ड) करूण

3) 'बिहारी सतसई' में .....दोहे हैं।

अ) 700 ब) 713 क) 715 ड) 84

4) .....को काव्य का कठिन प्रेत कहा जाता है।

अ) केशवदास ब) बिहारी क) देव ड) मतिराम

5) 'रीति' शब्द का अर्थ है –

अ) रस निरूपण ब) काव्यांग निरूपण क) कविता ड) दोहा

6) रीतिकाल में.....समाज-व्यवस्था थी।

अ) साम्यवादी ब) सामन्तवादी क) पूँजीवादी ड) समतावादी

7) रीतिकाल के शासक-सामन्त.....में रत थे।

अ) भक्ति ब) भोग क) प्रीति ड) विरक्ति

8) कवि देव का जन्मस्थान .....है।

अ) तिकवाँपुर ब) ग्वालियर क) इटावा ड) मथुरा

9) 'ललित ललाम' के रचयिता..... हैं।

अ) केशवदास ब) मतिराम क) देव ड) बिहारी

10) ..... में कला पक्ष की प्रधानता थी।

अ) आदिकाल ब) भक्तिकाल क) रीतिकाल ड) प्रेमचंद काल

(सूचना – 'रीतिकाल' शीर्षक इकाई पर परीक्षा में वस्तुनिष्ठ प्रश्न नहीं पूछे जाएँगे)

1.5 पारिभाषिक शब्द-शब्दार्थ –

हरम-राजमहल का वह भाग जिसमें रानियाँ रहती हैं। जनानखाना। जनानखाने रहनेवाली स्त्रिया।

अधःपतन – विनाश

सामन्त – बडा जमींदार या सरदार

समाहार – संग्रह, समूह, ढेर

हिजडा – तृतीयपंथी

पौरूष– पुरुषार्थ, पराक्रम

अकाल – सूखा, (दुष्काळ)

मुक्तक काव्य – परम्परागत काव्य के बंधनों से मुक्त काव्य ।

कवित्त – कविता

पराग – पुष्प रेणु

हवाल –हालत

सालंकार – अलंकार सहित

अली – भ्रमर

लक्षण ग्रंथ – काव्य के विविध लक्षणों की व्याख्या करनेवाले ग्रंथ

कवित्त – कविता कलात्मक पक्ष

आचार्यत्व – विद्वान/ लक्षण ग्रंथों का निर्माण करनेवाले कवि।

रीतिबद्ध – 'रीति' (पद्धति/शैली) की बंधी हुई परिपाटी पर काव्य रचना करना।

रीतिमुक्त – रीति या पद्धति की बँधी हुई परिपाटी से मुक्त काव्य रचना करना।

रीतिसिद्ध – रीति या पद्धति या शैली बन्धन को स्वीकार करते हुए काव्य रचना करना।

1.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्नों के उत्तर –

1) 1700 से 1900 2) श्रृंगार 3) 713 4) केशवदास

5) काव्यांग निरूपण 6) सामन्तवादी 7) भोग 8) इटावा

9) मतिराम 10) रीतिकाल

1.7 सारांश :

हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल में (सं. 1700-1900, सन् 1643-1843 ई. तक) सामान्य रूप से श्रृंगार परक लक्षण ग्रंथों की रचना हुई हैं। इस युग के नामकरण से सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। रचना पद्धति, साहित्य में उपलब्ध विषय की प्रधानता तथा मानव मनोविज्ञान के आधार इस युग का नामकरण किया गया है। हिंदी साहित्य का इतिहास लिखनेवाले विद्वानों ने इस काल को विविध नामों से विभूषित किया है। मिश्रबंधु इसे 'अलंकृत काल' कहते हैं। पण्डित विश्वनाथ प्रसाद

मिश्र ने इसे 'श्रृंगार काल' की संज्ञा दी है। रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' इस काल को 'कला काल' के रूप में स्वीकारते हैं तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने इसे 'रीतिकाल' के नाम से पुकारा है। यह नाम सर्वाधिक प्रचलित है।

'रीति' का शाब्दिक अर्थ काव्य रचना का ढंग, पद्धति या प्रकार है। दूसरे शब्दों में एक ही शैली या विशेष पद्धति में आबद्ध रचना 'रीति' पर आधारित रचना कही जायेगी। यही कारण है कि आचार्य शुक्ल जी ने इस काल का नामकरण 'रीतिकाल' किया है।

प्रत्येक नामकरण की अपनी विशेषता और महत्त्व है। किसी एक नामकरण से इस युग की सारी विशेषताओं को समेटना संभव नहीं है।

रीतिकाल के कवियों को तीन प्रमुख वर्गों (रीतिबद्ध, रीतिमुक्त और रीतिसिद्ध) में विभाजित किया जाता है। रीतिबद्ध वे कवि है जिन्होंने काव्यशास्त्र की बँधी-बँधायी परम्पराओं का अनुकरण कर रस, रीति, अलंकार, छन्द आदि से सम्बन्धित लक्षण ग्रंथों का निर्माण किया है। दूसरा वर्ग उन कवियों का है जिन्होंने न तो लक्षण ग्रंथों की रचना की और न ही बँधी हुई रीति की परिपाटी का निर्वाह किया। ये कवि 'रीतिमुक्त' कहलाए इन दोनों के मध्य एक तीसरा वर्ग भी था जिसने लक्षण ग्रंथों का निर्माण तो नहीं किया। किंतु अपनी रचनाओं में रीति की परिपाटी का पूर्ण निर्वाह किया। वे 'रीतिसिद्ध' कवि कहलाए।

रीतिकाल मुगलों की सत्ता के चरम वैभव का काल है। इस युग में ही मुगल साम्राज्य का चरम उत्कर्ष एवं उत्तरोत्तर ऱ्हास और फिर पतन हुआ। राजदरबारों में वैभव, भव्यता एवं अलंकरण की प्रधानता थी। राजा और सामन्तों में आत्मप्रशंसा का मोह एवं श्रृंगारिक मनोरंजन की चाह थी। इसके लिए वे कवियों, कलाकारों को अपने दरबार में आश्रय देते थे। कला कला के लिए होने के कारण ताजमहल, मयूर सिंहासन जैसी भव्य एवं कलात्मक कृतियों का निर्माण हुआ था।

अकबर की उदार नीति समाप्त होने कारण हिंदू-मुस्लिमों में द्वेष-शत्रुता की भावना निर्माण हो गई थी। औरंगजेब जैसे कट्टर शासकों के कारण अनेक हिंदू शासकों के मन में बगावत एवं स्वतंत्रता की भावना विकसित हो गई। मराठे, सिक्ख आदि ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व सिद्ध किया।

अत्याचारी, विलासी मुगल शासकों के कारण मुस्लिम शासन व्यवस्था दिन-ब-दिन कमजोर होती गई। भारतीय शासकों की आपसी शत्रुता का लाभ उठाते हुए व्यापार के हेतु से आए अंग्रेज भारत के शासक बन बैठे।

रीतिकाल पर 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। शासक-सामन्तों की देखादेखी करनेवाली जनता भोग-विलास के उपकरणों की खोज में लगी थी। सुरा-सुन्दरी में डूबे हुए विलासी जन काम कला की शिक्षा को ही सबसे बडी उपलब्धि मानते थे। सुंदर दासियों की माँग

बढ गई थी। बाल विवाह, अनमेल विवाह, बहु विवाह, रखैल प्रथा जैसी प्रथा-परम्पराओं के पाटों में नारी को पीसने का काम अनवरत रूप से शुरु था। केवल भोग का बेजाना यंत्र समझी जानेवाली नारी का जीवन नारकीय बन गया था। उसके सारे अधिकार छीनकर उसे गुलाम बनाया गया था।

समाज में जातिवाद, विषम सामाजिक व्यवस्था, अंधविश्वास का बोलबाला था। शासक सामन्तों के अमानवीय शोषण चक्र में गरीब किसान-मजदूर एवं नारी तथा दलित समाज बूरी तरह से फँस गया था।

रीति शब्द का सामान्य अर्थ है काम करने की पद्धति या ढंग। रीतिकाल में इस शब्द का अर्थ हो गया काव्य रचना का ढंग या प्रकार। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो एक ही शैली या विशेष पद्धति में आबद्ध रचना। अर्थात काव्यांग निरूपण सम्बन्धी रचनाओं या लक्षण ग्रंथों का निर्माण जिस काल में हुआ उस काल को रीतिकाल कहा जाता है।

रीतिकाल में तीन प्रकार के कवियों ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। जिन कवियों ने काव्यशास्त्र की बँधी-बँधायी परम्पराओं का अनुकरण कर रस, रीति, अलंकार, छन्द आदि से सम्बन्धित लक्षण ग्रंथों का निर्माण किया। वे कवि 'रीतिबद्ध' कवि माने जाते हैं। इस वर्ग के प्रमुख कवि हैं- चिंतामणि, मतिराम, केशवदास, देव, पद्माकर, सोमनाथ आदि।

दूसरे वर्ग में वे कवि आते हैं जिन्होंने न तो लक्षण ग्रंथों की रचना की है और न ही बँधी हुई रीति की परिपाटी का निर्वाह किया है। उन्हें 'रीतिमुक्त' धारा के कवि माना जाता है। इस धारा के प्रमुख कवि हैं- घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर आदि।

इन दोनों के मध्य एक तीसरा वर्ग भी था जिसने लक्षण ग्रंथों का निर्माण तो नहीं किया किंतु अपनी रचनाओं में रीति की परिपाटी का पूर्ण निर्वाह किया। उन्हे 'रीतिसिद्ध' कवि की श्रेणी में रखा जाता है। 'बिहारी' रीतिसिद्ध धारा के प्रमुख कवि है।

आचार्य केशवदास रीतिकाल के प्रमुख कवि माने जाते है। उन्हें रीतिकाल के प्रवर्तक एवं प्रणेता के रूप में स्वीकार किया जाता है। उनके आचार्यत्य और कवित्व को लेकर आज भी विवाद चलता है।

मतिराम और देव रीतिबद्ध कवि है। उन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र के आधार पर ब्रज भाषा में अनेक लक्षण ग्रंथों का निर्माण कर अपने आचार्यत्व को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

बिहारी एकमात्र रचना 'सतसई' के आधार पर हिंदी साहित्य जगत् में अक्षय कीर्ति के अधिकारी बन गए हैं। वे रीतिसिद्ध कवि माने जाते हैं।

1.8 स्वाध्याय :

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

1) 'रीतिकाल' के नामकरण पर प्रकाश डालिए।

2) 'केशवदास' आचार्य थे या कवि-स्पष्ट कीजिए।

3) रीतिकाल के प्रमुख कवियों का परिचय दीजिए।

4) रीतिकालीन राजनीतिक परिस्थितियों का विवेचन कीजिए।

5) रीतिकालीन सामाजिक परिस्थिति का विवेचन कीजिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :

रीतिकाल के कवियों की सूची बनाकर उनका रीतिबद्ध, रीतिबद्ध और रीतिमुक्त वर्गों में विभाजन कीजिए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास

2) डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त - हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास

3) डॉ. राजनाथ शर्मा - हिंदी साहित्य का इतिहास

4) डॉ. शिवकुमार शर्मा - हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ।

●●●

इकाई 2 – आधुनिक काल

आधुनिककालीन सामाजिक परिस्थितियाँ
आधुनिककालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ
युगप्रवर्तक साहित्यकार : भारतेन्दु
आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, अज्ञेय

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय विवेचन

- 2.3.1 आधुनिककालीन सामाजिक परिस्थितियाँ
- 2.3.2 आधुनिककालीन राजनीतिक परिस्थियाँ
- 2.3.3 युग प्रवर्तक साहित्यकार
  - 2.3.3.1 भारतेन्दु
  - 2.3.3.2 आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी
  - 2.3.3.3 जयशंकर प्रसाद
  - 2.3.3.4 अज्ञेय

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

2.5 पारिभाषिक शब्द – शब्दार्थ

2.6 स्वयं अथ्ययन के लिए प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.1 उद्देश्य :

इस इकाई को पढने के बाद आप –

1) आधुनिककालीन सामाजिक परिस्थिति को स्पष्ट कर सकेंगे।

2) आधुनिककालीन राजनीतिक परिस्थिति को स्पष्ट कर सकेंगे।

3) युगप्रवर्तक भारतेन्दु जी के साहित्य से परिचित होंगे।

4) युगप्रवर्तक आ. महावीरप्रसाद द्विवेजी के जीवन एवं साहित्यिक योगदान से अवगत होंगे।

5) युगप्रवर्तक जयशंकर प्रसाद के समग्र साहित्य–लेखन को समझ पाएंगे।

6) युगप्रवर्तक अज्ञेय जी के साहित्य से रू–ब–रू होंगे।

आधुनिक काल :

2.2 प्रस्तावना :

हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारंभ संवत् 1900 से माना है। संवत् 1900 से वर्तमान तक के कालखंड को 'आधुनिक काल' कहा जाता है। शुक्ल जी ने इस युग को 'गद्यकाल' नाम से संबोधित किया है। आधुनिक काल के पहले साहित्य का जो लेखन हुआ है वह अधिक से अधिक मात्रा में पद्य में हुआ है और आधुनिक काल में जो साहित्य लेखन हो रहा है वह अधिक से अधिक मात्रा में गद्य में हो रहा है इसलिए इस युग को 'गद्यकाल' कहा जाता है। इस युग में खडी बोली प्रतिष्ठित हुई और उसका उपयोग पद्य और गद्य दोनों में होने लगा।

भारतेन्दु युग आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रवेश द्‌वार है। वस्तुतः आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रादुर्भाव भारतेन्दु हरिश्चंद्र से होता है। हिंदी साहित्य में नवयुग की चेतना का विकास और भारतेन्दु का उदय दोनों घटनाएँ एक–दूसरे से घुल–मिली है। भारतेन्दु जी से ही साहित्य में नवयुग की चेतना के दर्शन होते है।

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हम आधुनिक कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों को प्रस्तुत करनेवाले हैं। युगप्रवर्तक साहित्यकारों में भारतेन्दु, आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद और अज्ञेय को लेकर हम विस्तार से चर्चा करेंगे।

2.3.1 आधुनिककालीन सामाजिक परिस्थितियाँ :

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में घटित होनेवाली सभी घटनाओं एवं परिस्थितियों को वह अपने में समेटकर पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है। किसी भी साहित्य के निर्माण में तत्कालीन

सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का बहुत बडा योगदान रहता है। आधुनिक कालीन साहित्य के निर्माण में तत्कालीन परिस्थितियाँ महत्त्वपूर्ण कारण रही है। यही कारण है कि आधुनिक काल के साहित्य में नया दृष्टिकोन दिखाई देता है।

1) आंग्ल संस्कृति का संपर्क :

भारत में अंग्रेजी शासन एक महत्त्वपूर्ण घटना है। भारतीय सामाजिक जीवन में जो चेतना आई उसका प्रमुख कारण भारतीय संस्कृति से आंग्ल संस्कृति का संपर्क में आना है। सामाजिक क्षेत्र की परंपराओं एवं रूढियों पर आंग्ल संपर्क ने जो आघात किया वह भारतीय दृष्टिकोन में परिवर्तन लाने में सहायक हुआ। मध्यकालीन धार्मिक कट्टरता धीरे-धीरे दूर होने लगी थी।

2) समाज-सुधारकों का योगदान :

आधुनिक काल में सामाजिक चेतना निर्माण करने के लिए जितना योगदान साहित्यकारों का रहा है उतनाही योगदान समाज सुधारकों का रहा है। राजा रामोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना की जिसका उद्देश्य था समाज की कमियों, संकीर्णताओं और रूढियों को समाप्त करना। इसी समय स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'आर्य समाज' की स्थापना करके हिन्दू धर्म की अनुदारता एवं कट्टरपन को दूर करने के लिए एक बडी क्रांति की। महाराष्ट्र में भी महादेव गोविंद रानडे के नेतृत्व में अनेक सामाजिक संस्थाओं की स्थापना हुई जिनका उद्देश्य सामाजिक सुधार एवं भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करना था।

3) गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव :

तत्कालीन समाज में गांधीवाद का प्रभाव दिखाई देता है। गांधी जी ने सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह इन तत्त्वों का प्रचार एवं प्रसार कर भारतीय जनता में आत्मबल, नैतिकता, दृढता, उदारता आदि गुणों का विकास किया। अपने अधिकारों की लडाई अहिंसा के माध्यम से लडकर लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। यह गांधीवादी सिद्धांतों ने स्पष्ट रूप से बताया है।

4) मानवतावादी दृष्टिकोन :

सामाजिक क्षेत्र में विकास हो रहा था, जिसके चलते मानवतावादी दृष्टिकोन का महत्त्व बढा। वस्तुतः जो स्वतंत्रता का आंदोलन चल रहा था, वह सामान्य जन-समुदाय को लेकर चला था। अंग्रेजी शिक्षा का व्यापक रूप से प्रसार होने के कारण बडे-बडे विचारक विशाल दृष्टिकोन लेकर सामाजिक व्यवस्था पर मनन एवं चिंतन करने लगे। इस मानवतावाद में अध्यात्मवाद का मिश्रण दिखाई देता है। श्री अरविन्द मानव-जाति के विकास के लिए ही विचार-साधना कर रहे थे। रवीन्द्र पर विवेकानंद का गहरा प्रभाव था। उनकी मानवता की उपासना में विवेकानंद के दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है।

5) नारीचेतना पर जोर :

आजादी के बाद नारी चेतना पर जोर दिया जाने लगा। जो नारी चार दीवारी तक सीमित थी, उसे अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया जाने लगा। विधवाओं के लिए मार्गदर्शन कर उन्हें आश्रय दिया गया। सतिप्रथा का पूरी तरह से निर्मूलन हो गया था। नारी को भी शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए इस बात का प्रचार एवं प्रसार किया। धीरे-धीरे नारी भी अपने अधिकारों को लेकर जागृत होने लगी।

6) मार्क्सवादी विचारधारा :

सामाजिक क्षेत्र में आर्थिक स्थिति का प्रभाव विशेष रूप से सिर उठाकर खडा रहा है। वर्ग-संघर्ष की भावना बढ रही थी, इसलिए मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभुत्व बढने लगा। देश के आर्थिक शोषण से अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुई।

2.3.2 आधुनिक कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ :

आधुनिक काल राजनीतिक दृष्टि से काफी उथल-पुथल का काल रहा है। इस समय ब्रिटिशों का शासन था। उन्होंने जो नीतियाँ अपनायी थी उसका कोई फायदा सीधे-सीधे भारत को नहीं था। आजादी के बाद भी बँटवारा तथा युद्ध ने राजनीतिक व्यवस्था को पूरी तरह से झकझोर दिया था।

1) राजनीतिक परिस्थिति की पूर्वपीठिका :

आधुनिक काल की शुरूआत संवत् 1900 से शुरू होती है उसके पहले कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हुई जिसने साहित्य को प्रभावित किया । सन् 1757 के प्लासी युद्ध ने अंग्रेजी शासन की नींव डाली। ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के साथ अंग्रेजों का शासन पूरे भारत में फैल गया। राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना, लैप्स की नीति, 1857 का प्रथम स्वतंत्रता युद्ध, आदि घटनाओं ने आधुनिक हिंदी साहित्य को एक अलग दिशा दी।

2) स्वराज्य का मंत्र :

सन् 1905 से काँग्रेस आवेदन और प्रार्थना की नरम नीति को छोडने लगी और 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' की घोषणा करने लगी। इस समय काँग्रेस के दो दल हो गए- गरम दल तथा नरम दल। गरम दल को अंग्रेजों की नीति पर भरोसा नहीं था। इसलिए वे स्वराज्य की माँग कर रहे थे।

3) स्वदेशी आंदोलन :

प्रथम महायुद्ध के बाद भीषण जनसंहार के कारण मानव-मन उद्वेलित हो रहा था और उसके ऊपर से भारतीय जनता पर अंग्रेजों ने रॉलेट एक्ट-कानून लागू कर दिया था। इस कानून से एक बात स्पष्ट हो चुकी थी की, सुधार का ढोंग करनेवाले अंग्रेज दमन और अत्याचार की नीति अपना रहे थे इस

बात का विरोध सभी भारतीयों ने किया। बाल गंगाधर तिलक की मृत्यु के बाद काँग्रेस का नेतृत्व पूरी तरह से गांधी जी के हाथ में आ गया। उन्होंने अहिंसा के माध्यम से स्वतंत्रता प्राप्ति को लक्ष्य बनाया। इस समय स्वदेशी आंदोलन को खूब बल मिला। असहोयग के दो रूप स्वीकार किये गये थे– एक विदेशी शासन के साथ असहयोग और दूसरा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार।

4) भारत छोडो आंदोलन :

सन् १९४२ में क्रिप्स भारतीय संघ निर्माण की एक योजना लेकर भारत आए। उनकी योजना को लेकर भारत में बहुत रोष उत्पन्न हुआ। उन्हीं दिनों काँग्रेस ने 'भारत छोडो' आंदोलन का प्रस्ताव पास किया जिसके फलस्वरूप काँग्रेस के प्रमुख नेताओं को जेल में बंद कर दिया। सन् 1945 में इंग्लैंड में उदार दल की सरकार बनी जिसे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से काफी आस्था थी। सन् 1946 में भारत में अंतरिम सरकार बनी। इस समय अनेक सांप्रदायिक दंगे हुए अंत में सन् 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ।

5) मोहभंग की स्थिति की निर्मिति :

आजादी के बाद राजनीति का बोलबाला शुरू हुआ। राजनीति में झूठी नारेबाजी की गई। भारतीय जनता को अनेक बातों को लेकर आशावान बनाया गया किंतु चायना एवं पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध में भारत का आर्थिक ढाँचा पूरी तरह चरमरा गया परिणामतः भारतीय जनता का मोहभंग हो गया। महँगाई, अकाल, दरिद्रता, भ्रष्टाचार जैसी अनेक समस्याएँ निर्माण हुई। इन समस्याओं को दूर करने के प्रयत्न हो रहे हैं।

2.3.3 युग प्रवर्तक साहित्यकार :

2.3.3.1 भारतेन्दु

भारतेन्दु हरिशचंद्र आधुनिक हिंदी साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण नाम है क्योंकि भारतेन्दु यह किसी व्यक्ति नाम तक सीमित न रहकर एक युग के नाम से भी पहचाना जाता है। हम अगर आधुनिक हिंदी साहित्य का द्वार किसे कहना चाहते हैं तो वह है भारतेन्दु युग। इस युग का नाम भारतेन्दु के नाम इसलिए जोडा गया है चूंकि अपनी लेखनी के माध्यम भारतेन्दु ने इस युग का नेतृत्व किया है।

जीवन–परिचय :

भारतेन्दु हरिश्चंद्र का जन्म सन् ९ सितंबर १८५० को काशी के एक वैश्य परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम गोकुलचंद्र उर्फ गिरिधर दास तो माता का नाम पार्वती था। भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी अमीचन्द्र के वंशज थे। उन्होंने हिन्दी की शिक्षा पंडित ईश्वरदत्त से, उर्दू की मौलवी ताज अली से और अंग्रेजी की शिवप्रसाद सितारे हिंद से प्राप्त की थी। कुछ दिन वे क्वीन्स कॉलेज के छात्र रहे

थे किंतु पढाई में मन न लगने के कारण घर पर रहकर ही उन्होंने अध्ययन किया। सन् 1863 में उन्होंने अपने परिवार के साथ जगन्नाथपुरी की यात्रा की। अपनी पत्नी मन्नादेवी से भारतेन्दु जी कुछ खिंचे-खिंचे रहते थे। कहा जाता है कि माधवी और मल्लिका उनकी दो प्रेमिकाएँ थी। माधवी एक क्षत्रीय लडकी थी और मल्लिका इनके पडोस में रहनेवाली बंगाली कवयित्री थी। भारतेन्दु जी एक रसिक जीव थे। उन्होंने समाज एवं साहित्य के लिए बहुत बडा योगदान दिया है। उनके साहित्यिक योगदान को देखते हुए पंडित रामेश्वरदत्त व्यास ने सन् 1880 में 'सार-सुधानिधि' पत्रिका में उन्हें 'भारतेन्दु' उपाधि प्रदान की। भारतेन्दु ने 'पेनी रीडिंग' नामक एक गोष्टी की स्थापना की और 'चौखंभा स्कूल' का निर्माण कर शिक्षा का प्रसार किया। अपने अंतिम दिनों में इन्हें आर्थिक अभाव से जूझना पडा परिणामतः उनका स्वास्थ्य गिरने लगा और अंत में सन् 25 जनवरी 1885 को क्षयरोग के कारण उनका निधन हुआ।

भारतेन्दु का साहित्य :

कृतित्व : भारतेन्दु द्वारा अनेक कृतित्व का लेखन हुआ है वह निम्न प्रकार है

काव्य : 'भक्त सर्वस्व', 'तन्मयलीला', 'दानलीला', 'प्रेमतरंग', 'प्रेमप्रलाप', 'रास-संग्रह', 'प्रेम माधुरी', 'बन्दर सभा', 'बकरी का विलाप', 'वर्षा-विनोद' आदि।

कथा साहित्य : 'पूर्ण प्रकाश चंद्रभागा', 'हमीर हठ', 'राजसिंह', 'सुलोचना', 'मादालसोपाख्यान', 'शीलमती', 'सावित्री चरित्र',

नाटक : 'सत्य हरिश्चंद्र', 'चंद्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'अंधेर नगरी', 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति', 'विषस्य विषमौषधम् : सती प्रताप', 'प्रेम योगिनी'.

अनूदित नाटक : 'मुद्राराक्षस', 'धनंजय विजय', 'रत्नावली नाटिका', 'कर्पूरमंजरी','विद्यासुंदर', 'भारत जननी', 'शेक्सपीयर के मर्चेण्ट ऑफ वेनिस' का 'दुर्लभ बंधु' नाम से अनुवाद।

पत्र-पत्रिकाएँ : 'कवि वचन सुधा','हरिश्चंद्र मैगजीन', 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' 'बालबोधिनी'

युग-प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चंद्र : भारतेन्दु हरिश्चंद्र को आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रवर्तक कहा जाता है। हिंदी भाषा और साहित्य के विकास की दृष्टि से भारतेन्दु जी की तुलना अन्य किसी साहित्यकार से हो नहीं सकती। भारतेन्दु जी नवजागरण के अग्रदूत रहे हैं, उन्होंने साहित्य के माध्यम से जनता में चेतना निर्माण की है। उनके साहित्य में चेतना का तीव्र स्वर सुनाई देता है। जो बात सामूहिक प्रयत्नों से संभव नहीं थी वह भारतेन्दु जी के साहित्य ने कर दिखाया। भारतेन्दु जी को अनेक कारणों से युग-प्रवर्तक कहा जाता है। वे कारण निम्न प्रकार हैं -

1) नवजागरण के अग्रदूत :

भारतेन्दु जी नवजागरण के अग्रदूत रहे है। उन्होंने दरबारी काव्य के श्रृंगार और विलासिता से जनता का ध्यान हटाकर उन्हें देश-प्रेम, समाज-सुधार और देशोपकार की प्रेरणा दी। भारतेन्दु जी से ही हिंदी साहित्य में नवजागरण के दर्शन होते हैं।

2) जन जीवन का संस्पर्श और रुढियों का विरोध :

भारतेन्दु जी ने परम्परा एवं रूढियों के बंधन को हटाकर कविता को राष्ट्रीयता और समाज-सुधार के लिए आलंबन बनाया और उसे जन-जीवन से संस्पर्श कराया। भारतेन्दु युग का साहित्य जनवादी साहित्य है और अपनी संस्कृति का गौरव-गान करनेवालों में भारतेन्दु जी सर्वप्रथम है।

3) भारतीय सांस्कृतिक पुनरुत्थान के अग्रदूत :

भारतेन्दुजी हरिश्चंद्र जी ने भारतीय संस्कृति की महत्ता का वर्णन किया है। वे भारतवासियों का ध्यान प्राचीन भारतीय संस्कृति की ओर आकर्षित करते हैं। भारतीय संस्कृति की महत्ता बताने के लिए राम, युधिष्ठिर, हरिश्चंद्र आदि महान चरित्रों को नायक के रूप में अपनाते हैं। तत्कालीन युग की सांस्कृतिक राष्ट्रीयवाद की लहर भारतेन्दु जी के साहित्य में स्थान-स्थान पर दिखाई देती है।

4) जनवादी साहित्य के निर्माता :

भारतेन्दु जी जनवादी साहित्यकार रहे है, साथ ही साथ सहृदय कोटि के समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने अपने साहित्य में सूदखोर महाजनों की कडी आलोचना की है। युगीन परिस्थितियों का चित्रण कर भारतेन्दु जी ने समाज और वैयक्तिक प्रेम को राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक बना दिया है।

इस प्रकार सच्चे अर्थों में भारतेन्दु हरिश्चंद्र युग-प्रवर्तक थे।

भारतेन्दु का काव्य-संसार :

केवल 35 वर्ष जीवन जीने वाले भारतेन्दु जी ने समृद्ध साहित्य का निर्माण किया है। उम्र की पाँच वर्ष की अवस्था में उन्होंने अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया। उनका प्रथम दोहा इस प्रकार है-

'लै ब्यौंडा ठाडे भये श्री अनिरुद्ध सुजान।

वाणासुर की सैना को हनन लगे भगवान।।'

इस दोहे को पढने के बाद उनके पिताजी ने आशीर्वाद दिया-'तू मेरा नाम बढावेगा' उनकी यह वाणी सर्वथा सत्य सिद्ध हुई।

भारतेन्दु जी ने हिंदी भाषा के साथ-साथ उर्दू भाषा में भी काव्य लेखन किया। उर्दू भाषा में

वे 'रसा' उपनाम से कविताएँ लिखा करते थे। उन्होंने जितनी भी कविताएँ लिखी हैं वे चार विषयों पर लिखी है- भक्ति, श्रृंगार, देश प्रेम, और सामाजिक समस्या। भारतेन्दु जी रीतिकाल और आधुनिक काल के संधि युग के कवि है इसलिए उनकी कुछ कविताओं पर श्रृंगार का प्रभाव दिखाई देता है। श्रृंगारिक कविताएँ कवित्व एवं छंदों में मिलती हैं और भाषा ब्रजभाषा अपनाई गई है। भक्ति-काव्य में राधा एवं कृष्ण को माध्यम बनाकर काव्य-लेखन किया है।

देशप्रेम से जुडी कविताओं का लेखन करना तत्कालीन समय की माँग थी ऐसा कहना सर्वथा उचित है। अंग्रेजी हुकूमत का शिकंजा पूरी तरह से कसा हुआ था और जनता भविष्य के प्रति किसी प्रकार आशावान नहीं थी ऐसे समय में भारतेन्दु जी ने देश-प्रेम प्रधान कविताएँ लिखकर आम जनता के मन में राष्ट्र-प्रेम की भावना निर्माण करने का कार्य किया है। समाज में सदियों से चली आ रही परंपराएँ-रुढियाँ जो समाज हित में बाधा उत्पन्न करती हैं उनका विरोध सामाजिक समस्याओं से जुडी कहानियों में किया है।

भारतेन्दु का नाट्य साहित्य :

हिंदी में नाटकों का कोई संतुलित स्वरूप स्पष्ट नहीं था उस समय भारतेन्दु जी ने एक से बढकर एक नाटकों का लेखन किया है। उन्होंने न केवल संस्कृत और अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत कर हिंदी नाट्य परंपरा को समृद्ध किया अपितु मौलिक नाटकों के लेखन द्वारा हिंदी नाट्य निर्माण का मार्ग प्रकाशमान किया। डॉ. शांति मल्लिक के अनुसार - 'इन्हीं के प्रयास से पहली बार हिंदी नाट्य साहित्य नवीन उन्मेषशील विचारों को ग्रहण करता हुआ नूतन शैलियों से सज्जित होने लगा। इस युग प्रवर्तक कलाकार एवं समर्थ नेता का यह महान कार्य तत्कालीन साहित्यकारों के लिए प्रेरणादायक सिद्ध हुआ।'

भारतेन्दु जी ने तीन प्रकार के नाटकों का लेखन किया है- पौराणिक नाटक, ऐतिहासिक नाटक, सामाजिक नाटक। उनके नाट्यलेखन का फलक विशाल होने के कारण उनमें जीवन की विविधता के दर्शन होते हैं। प्रेम के विविध रूपों के साथ-साथ समाज जीवन की विविधता भी उनमें निहित है।

भारतेन्दु का कथा साहित्य :

भारतेन्दु जी के पूर्व हिंदी साहित्य में कथा अधिक मात्रा में नहीं मिलती है। भारतेन्दु जी ने गद्य की अन्य विधाओं की तरह कहानी और उपन्यास लेखन का प्रयास किया है। उनका बहुत सा कथा-साहित्य प्रामाणिकता को लेकर संदिग्ध है। 'रामलीला', 'सुलोचना', 'शीलवती', 'सावित्री चरित्र', 'राजसिंह' आदि कथा साहित्य प्रमाणिकता की दृष्टि संदिग्ध है। 'चंद्रप्रभा और पूर्ण प्रकाश' उपन्यास तो कुछ कारणवश पूरा नहीं हो पाया। उसमें कल्पना, मस्ती, विनोदप्रियता, व्यंग-बोध और सामाजिक चेतना के दर्शन होते हैं।

भारतेन्दु का निबंध साहित्य :

भारत के पराधिनता के समय में भारतेन्दु ने निबंधों का लेखन किया है। उन्होंने अपने निबंधों को सीमित नहीं रखा। विषय विविधता की दृष्टि से उनके निबंधों की संख्या अधिक है। इतिहास, धर्म, समाज, राजनीति, खोज, आलोचना, प्रकृति वर्णन, व्यंग-विनोद आदि विषयों पर भारतेन्दु जी ने निबंध लिखे हैं। भारतेन्दु जी के इन निबंधों ने अपने युग के अन्य लेखकों का पथ प्रदर्शन किया है।

भारतेन्दु का यात्रा-साहित्य :

भारतेन्दु जी ने कई यात्राओं का विवरण प्रस्तुत किया है। भारतेन्दु से यात्रा-साहित्य का प्रारंभ माना जा सकता है। 'सरयू पार की यात्रा', 'मेहदावल की यात्रा', 'लखनऊ की यात्रा', 'हरद्वार की यात्रा', 'वैद्यनाथ की यात्रा', जैसे यात्रा साहित्य में भारतेन्दु जी की सूक्ष्म दृष्टि का परिचय मिलता है। यात्रा साहित्य केवल विविध स्थलों लेकर न लिखते हुए वहाँ के निवासियों के रहन-सहन को भी प्रस्तुत करता है ।

हिंदी साहित्य में भारतेन्दु का स्थान :

हिंदी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु युग पुनर्जागरण का युग कहलाता है। भारतेन्दु जी ने अपने युग का सफल नेतृत्व किया है। उनके व्यक्तित्व एवं काव्य की यह महत्ता है कि उन्होंने प्राचीन को आत्मसत् कर नवीनता की सृष्टि की है। उन्होंने सभी विषयों को लेकर लेखन-कार्य किया है। समाज, शिक्षा, राष्ट्र, नारी आदि से जुडी समस्याएँ उनके साहित्य में दिखाई देती हैं। समाज सुधार एवं हास्य-व्यंग्य पर लेखनी चलाने के कारण वे नवयुग के जन्मदाता सिद्ध हुए। भारतेन्दु जी ने लोक-जीवन और लोक-काव्य की श्रेष्ठ बातों को साहित्यिक रूप प्रदान किया है। हिंदी भाषा एवं साहित्य के प्रचार हेतु उन्होंने निरंतर प्रयास किये हैं। इस प्रकार भारतेन्दु जी हिंदी साहित्य में नक्षत्र के समान है।

2.3.3.2 आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी :

जीवन परिचय :

आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का जन्म सन् 15 मई 1864 को रायबरेली जिले के दौलतपुर नामक ग्राम में हुआ। युग प्रवर्तक कहे जानेवाले महावीरप्रसाद जी को आधुनिक हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाने का श्रेय जाता है। उनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में हुई। आर्थिक स्थिति प्रतिकूल होने के कारण घर पर ही संस्कृत, हिंदी, मराठी, अंग्रेजी और बंगला भाषा का गहन अध्ययन किया। शिक्षा के पश्चात् वे कुछ दिन रेल्वे की नौकरी करने लगे। बाद में यह नौकरी छोडकर 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन का दायित्व संभालने लगे।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्य :

काव्य–संग्रह : 'काव्य-मंजूषा', 'कविता कलाप', 'सुमन'

आलोचना : 'नाट्यशास्त्र', 'हिंदी नवरत्न', 'रसज्ञ-रंजन', 'विचार विमर्श', 'साहित्य संदर्भ' आदि।

संपादन : 'सरस्वती' मासिक पत्रिका

युग प्रवर्तक आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी :

आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी एक महान युग प्रवर्तक थे। आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतेन्दु के बाद अगर बडे आदर के साथ कोई नाम लिया जाता है तो वह है महावीरप्रसाद द्विवेदी का। इन्होंने युग और साहित्य तथा साहित्य और युग में एक समन्वय स्थापित किया। स्वयं रचनाओं का लेखन करने के साथ-साथ दूसरों की रचनाओं का संस्कार भी किया। समाज हित के लिए साहित्य लेखन की आपने अन्य साहित्यकारों को प्रेरणा दी। द्विवेदी जी ने साहित्य और समाज को एक नयी दिशा देने का सराहणीय कार्य किया है, इसलिए उन्हें अपने युग का युगप्रवर्तक कहा जाता है। उन्हीं के नाम के आधार पर हिंदी साहित्य में 'द्विवेदी युग' एक रचनाकाल का नाम रखा गया। उन्होंने हिंदी साहित्य में युगप्रवर्तन का कार्य किया है। उनके निम्न कार्यों के कारण वे युगप्रवर्तक कहलाते है –

1) संपादक एवं आलोचक रूप में – :

द्विवेदी जी ने निबंधकार, आलोचक, संपादक एवं अनुवादक के रूप में सफलता प्राप्त की है। उनका महत्त्व उनकी रचनाओं के आधार पर उतना नहीं है, जितना संपादक एवं आलोचक के रूप में है। उन्होंने युग-प्रवर्तन का कार्य किया है। अपनी समकालीन एवं पूर्ववर्ती रचनाओं का गहन अध्ययन कर सच्चे आलोचक की तरह साहित्य-सृजन की गतिविधि का नियंत्रण किया। उन दिनों सरस्वती पत्रिका का काफी महत्त्व था। इस पत्रिका का संपादन महावीर प्रसाद द्विवेदी करते थे। इस पत्रिका में प्रकाशित करवाने हेतु आनेवाली रचनाओं का स्वयं द्विवेदी जी संशोधन करते थे। अन्य कहीं पर प्रकाशित होनेवाली त्रूटी पूर्ण रचनाओं को देखकर भी वे चूप नहीं रहते थे। यही कारण है कि, हम उन्हें रचनाकार से अधिक पथ-प्रदर्शक मानते हैं।

2) आचार्य के रूप में :

आचार्य का कार्य मार्गदर्शन करना होता है और यही कार्य द्विवेदी जी ने किया है। साहित्य किस तरह से लिखा जाना चाहिए और समाज हित के लिए उसका उपयोग किस तरह से होना चाहिए इस बात की ओर वे संकेत करते है।

3) कठोर निरीक्षक :

आचार्य महावीर द्विवेदी उच्च-कोटि के निरीक्षक रहे हैं। अपनी पुस्तक समीक्षा में केवल सत्य और असत्य पर विचार नहीं किया बल्कि उन सिद्धांतों का भी विवेचन किया गया है, जिनके आधार

पर सत्साहित्य का निर्माण होता है। उन्होंने लोक-रुचि की परिष्कृतता की ओर भी विशेष ध्यान दिया है इसलिए भी वे युग-प्रवर्तक कहलाते हैं।

4) साहित्य में जनरूचि निर्माण करनेवाले :

सत् साहित्य में जनरुचि निर्माण कर चिरकालीन साहित्यिक रुढियों पर एवं बद्धमूल धारणाओं पर कठोर प्रहार द्विवेदी जी ने किया है इसमें भी उनका आलोचक रूप मुखरित हुआ है। उनका लक्ष्य ही समाज-सेवा होने के कारण उन्होंने जो भी कुछ लिखा है वह समाज सेवा हेतु लिखा है। बहुत से क्रांतिकारी लेख उन्होंने 'सरस्वती' में लिखे हैं, जिसके कारण साहित्य जगत् में बहुत बडा परिवर्तन हुआ परिणामतः साहित्य में नवीन आदर्शों की स्थापना हुई। यहाँ पर भी द्विवेदी का युग प्रवर्तक रूप झाँकता है-

निबंधकार : महावीर प्रसाद द्विवेदी :

निबंध लेखन की शैली में बदलाव लाने का श्रेय महावीरप्रसाद द्विवेदी जी को जाता है। उन्होंने गंभीर साहित्यिक निबंधों का सूत्रपात किया द्विवेदी के पूर्व तक जो निबंध लिखे जा रहे थे वे निबंध परंपरागत भावना, पर्व, त्योहार आदि विषयों से सम्बन्धित रहते थे। इन निबंधों में वर्णनात्मक एवं भावात्मक दोनों शैली का समन्वय था। धीरे-धीरे वैयक्तिकता का ऱ्हास हो रहा था। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ज्ञानवर्धक निबंधों का लेखन किया। समीक्षात्मक, विचारात्मक निबंध भी इन्होंने लिखे, जिसमें स्वतंत्र चिंतन भावप्रवणता और मधुरता को विशेष स्थान मिला है। अपने निबंधों में इन्होंने भाषा-शैली का परिष्कार किया है और बौद्धिकता को बढाने का कार्य किया है। भारतेन्दु युग में लिखे गये निबंधों की तुलना में द्विवेदी जी के निबंधों में परिपक्वता दिखायी देती है। उन्होंने निबंधों के सभी तत्त्वों का अच्छी तरह से विनियोग किया है।

निबंधकार महावीरप्रसाद द्विवेदी जी का ऐतिहासिक महत्त्व है। उन्होंने पाश्चात्य विचारकों का ज्ञान प्राप्त कर उसे अपने निबंधों के द्वारा हिंदी के पाठकों के सामने प्रस्तुत किया। उन्होंने हिंदी पाठकों के ज्ञान में वृद्धि की। 'साहित्य की महत्ता', 'कवि और कविता', 'नाटक', 'प्रतिभा', 'कवि कर्तव्य' आदि निबंध ज्ञान के संचित कोश है। उनके मौलिक चिंतन परक निबंधों की संख्या कम है लेकिन वे जितने भी है उनमें रोचकता एवं आत्मियता है। द्विवेदी जी ने अनेक अनूदित निबंध भी लिखे हैं। बेकन के निबंधों का उन्होंने 'बेकन विचार रत्नावली' नाम से अनुवाद किया है। इन्होंने निबंध में ज्ञान के अर्जन के साथ साथ रुचि परिष्करण पर अधिक ध्यान दिया है। अनेक विषयों को आधार बनाकर निबंध लेखन करनेवाले महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने अपने युग का नेतृत्व ही नहीं किया बल्कि युग-प्रवर्तन का मौलिक कार्य भी किया है ।

खडी बोली विकास में आ. महावीर प्रसाद का योगदान :

सन् 1930 ई. में आपने 'सरस्वती' के संपादन का दायित्व संभाला। सरस्वती के संपादक के रूप में हिंदी के उत्थान के लिए आपका जो कार्य है उस पर हिंदी साहित्य गर्व करता है। सन 1920 तक द्विवेदी ने यह कार्य बिना रुके किया है। इनकी साहित्यिक देन भी कुछ कम नहीं है लगभग अस्सी से अधिक ग्रंथ द्विवेदी के नाम पर हैं, जिनमें मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार हैं ।

तत्कालीन समय हिंदी के विकास का न होकर हिंदी के अभावों की पूर्ति का था। द्विवेदी ने ज्ञान कि विविध क्षेत्रों, विज्ञान, इतिहास, राजनीति, पुरातत्त्व, अर्थशास्त्र आदि से सामग्री लेकर हिंदी के अभावों की पूर्ति की। हिंदी गद्य को माँजने-सँवारने तथा परिष्कृत करने के लिए ही उनका जीवन था। हिंदी गद्य एवं पद्य की भाषा को एक करने के लिए प्रबल आंदोलन भी किया। इसके लिए इन्होंने अन्य भाषाओं में लिखित ग्रंथों का भी अध्ययन किया। संपादक के रूप में आपने निरंतर पाठकों की हित की ओर विशेष ध्यान दिया है। नवीन लेखकों और कवियों को सरस्वती के माध्यम से प्रोत्साहन दिया हैसाथ ही साथ पत्रिका को निर्दोष, सरस, पूर्ण उपयोगी और नियमित बनाया। इस प्रकार खडी बोली विकास में 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपना मौलिक योगदान दिया है।

2.3.3.3 जयशंकर प्रसाद :

जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रमुख आधार स्तंभों में से एक हैं। आधुनिक हिंदी कविता में छायावाद का समय सन 1918 से 1936 ई. तक निर्धारित किया गया है। यह समय आधुनिक हिंदी कविता का तीसरा चरण है। इसे हम दो विश्व-युद्ध के बीच का समय भी कह सकते हैं। प्रसाद जी ने काव्य के साथ-साथ उपन्यास, नाटक, कहानी आदि विधाओं में भी लेखन किया है।

जीवन परिचय :

जयशंकर प्रसाद का जन्म सन् 30 जनवरी, 1889 को काशी के सराय गोवर्धन मोहल्ले में हुआ। इनके पिता का नाम देवीप्रसाद था। इनके परिवार में एक विशेष प्रकार की सुगंधित तम्बाकू बनाई जाती थी जिसके कारण उनका परिवार 'सुँघनी साहु' के नाम से प्रसिद्ध था। प्रसाद जी के माता पिता शिवभक्त थे। शिवजी की कृपा से संतान प्राप्त होने के कारण उन्होंने पुत्र का नाम जयशंकर रखा था। प्रसाद जी ने अपने जीवन में तीन विवाह किये। इनकी तीसरी पत्नी से उत्पन्न संतान का नाम रत्नशंकर है।

प्रसाद जी नौ वर्ष के समय से ही अपने बडे भाई के साथ कविताएँ लिखने लगे। प्रारंभ में वे 'कलाधर' उपनाम से ब्रज भाषा में कविताएँ लिखने लगे। बाद में धीरे-धीरे खडी-बोली हिंदी में काव्य रचना करने लगे। प्रसाद जी गंभीर स्वभाव के व्यक्ति थे। शैव होते हुए भी बुद्ध की करूण भावना से प्रभावित रहे हैं। वैदिक धर्म में उनकी दृढ आस्था थी। इतिहास एवं पुरातत्त्व में उनकी विशेष रूचि थी। सन् 1909 ई. में प्रसाद जी की आर्थिक सहायता उनके भांजे अम्बिका प्रसाद ने 'इंदु' मासिक

पत्र निकाला, जिसमें प्रसाद जी की रचनाएँ प्रकाशित होती रही।

अंतिम दिनों प्रसाद जी की आर्थिक स्थिति कुछ खास नहीं थी। आर्थिक चिंताओं ने उन्हें घेर लिया, मानसिक तनाव को दूर करने के लिए वे पूरी यात्रा करने निकल गये। वापस आने के बाद नियमित रूप से अपना व्यवसाय देखने लगे। अपने घर के सामने उन्होंने एक छोटी सी वाटिका बनायी थी। कोई साहित्यकार जब उन्हें मिलने हेतु आता तो वहाँ बैठकर वे उनके आग्रह पर कविता का पाठ करते थे। सन् 15 नवम्बर, 1937 को राजयक्ष्मा से पीडित होकर उनकी मृत्यु हो गई।

जयशंकर प्रसाद का साहित्य :

काव्य-कृतियाँ : 'करुणालय', 'प्रेम-पथिक', 'महाराणा का महत्त्व', 'चित्रधारा', 'कानन-कुसुम', 'आँसू' 'झरना', 'लहर', 'कामायनी'

चम्पू काव्य : 'उर्वशी','प्रेमराज्य'

नाटक : 'सज्जन','कल्याणी परिणय', 'करुणालय', 'प्रायश्चित', 'राज्यश्री', 'विशाखा', 'अजात शत्रु', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'कामना', 'स्कंदगुप्त', 'चंद्रगुप्त', 'एक घूँट', 'ध्रुवस्वामिनी'।

कहानी संग्रह : 'छाया','प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'चित्रधारा', 'आँधी', 'इंद्रजाल'।

उपन्यास : कंकाल, तितली, इरावती (अपूर्ण)

बहुमुखी प्रतिभा के धनी : जयशंकर प्रसाद :

जयशंकर प्रसाद ने अनेक विधाओं में लेखन किया है जो उनकी प्रतिभा का परिचय देता है।

कवि : प्रसाद : जयशंकर प्रसाद छायावाद के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उनकी प्रतिभा इतनी जबरदस्त थी कि परवर्ती छायावादी कवियों में उतनी प्रौढता नहीं आ सकी, जितनी प्रसाद की कविता में मिलती है। प्रसाद के काव्य में प्रेम, विलास तथा सौंदर्य का सुंदर वर्णन हुआ है। उनकी कविता में प्रेम की पीडा अधिक दिखाई देती है जो लौकिकता से अलौकिकता की ओर संकेत करती है। प्रसाद के काव्य में जो प्रकृति प्रेम है वह उदात्त कल्पना को दिखाता है। विश्वसुंदरी प्रकृति में चेतना का आरोप प्रसाद के काव्य की एक विशेषता है। प्रसाद प्रकृति के वैभव और ऐश्वर्य के चित्रण से हमारी आँखों को चकाचौंध कर देते हैं।

प्रसाद जी को भारत की प्राचीन संस्कृति से बडा प्रेम था। उन्होंने अपनी कविताओं में जगह-जगह पर सांस्कृतिक प्रेम की बात कही है। कवि का ध्यान बार बार सौंदर्य की तरफ गया है। उन्होंने मुख्यतः दो प्रकार के सौंदर्य का वर्णन किया है- मानवीय सौंदर्य और भाव सौंदर्य। 'कामायनी' में मानवीय सौंदर्य का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं-

''कोमल किसलय के अंचल में नन्ही कलिका ज्यों छिपती सी।
गोधूली के धूमिल पट में दीपक के स्वर में दिपती सी।।''

X X X X X X X

''शशि मुख पर घूँघट डाले, अंचल में दीप छिपाये।
जीवन की गोधूली में कौतुहल से तुम आये।।''

(भाव सौंदर्य)

नाटककार : प्रसाद : प्रसाद जी ने ऐतिहासिक नाटकों का सृजन कर भारतवर्ष के अतीत का गौरव-गान किया है। इन नाटकों का लेखन करते समय प्रसाद के सामने यह उद्देश्य था कि तत्कालीन युवक राष्ट्रसेवा हेतु प्रेरित हो जाए । प्रसाद जी को युग-प्रवर्तक नाटककार कहा जाता है। नेमिचन्द्र जैन के शब्दों में 'भारतेन्दु के बाद जयशंकर प्रसाद ही हिंदी के पहले ऐसे महत्त्वपूर्ण नाटककार हैं जिन्होंने नाटक की विधा का गहरी सांस्कृतिक तलाश के लिए उपयोग किया।'

प्रसाद के नाटकों की महत्त्वपूर्ण विशेषतः यह है कि जहाँ एक ओर उन्होंने अपने ऐतिहासिक नाटकों द्वारा अतीत की गौरवगाथा को प्रस्तुत करते हुए सांस्कृतिक पक्ष को नयी गरिमा प्रदान की वहीं दूसरी ओर अपने युग की ऐतिहासिक अनुसंधान को आधार बनाया है। नारी महत्ता का भी वर्णन प्रसाद ने अपने नाटकों में किया है। हम आज जिस नारी स्वतंत्रता की दुहाई देते हैं वही बात प्रसाद अपने 'ध्रुवस्वामिनी' में कबके कह चुके हैं।

प्रसाद के सभी नाटक चरित्र-प्रधान हैं। इन चरित्रों का चयन इतिहास के पन्नों से किया गया है। नाटकीय संघर्ष एवं अन्तर्द्वन्द्व की दृष्टि से अनेक नाटक सफल हुए हैं । प्रसाद जी मूलतः कवि हैं, जिसका प्रभाव उनके नाटकों के वातावरण, संवाद एवं शैली पर पडा है। साथ ही उनके नाटकों में गीतों की सुंदर योजना हुई है। उनके नाटकों में दार्शनिकता एवं नियतिवाद की झलक तथा करुणा की धारा मिलती है। उनके नाटकों में पौर्वात्य एवं पाश्चात्य नाट्य शिल्प का सुखद सम्मिश्रण हुआ है। उनके नाटकों पर तत्कालीन राष्ट्रीय जागरण का व्यापक प्रभाव है। अतः उनके सभी नाटकों में सामाजिक-राजनीतिक समस्याएँ, राष्ट्रीयता, देशभक्ति और गांधीवाद की भावनाएँ मिलती हैं।

उपन्यासकार : प्रसाद : जयशंकर प्रसाद ने अपने साहित्यिक जीवन में तीन उपन्यासों का लेखन किया। उनका तीसरा उपन्यास 'इरावती' उनके निधन के बाद प्रकाशित हुआ। प्रसाद के उपन्यासों में 'कंकाल', 'तितली', और 'इरावती' इन उपन्यासों का समावेश है। इन उपन्यासों में उस समाज का वास्तविक चित्र है जो अनेक परंपरा एवं रुढियों को ढोता आ रहा है। 'कंकाल' उपन्यास में धार्मिक आडम्बरों पर प्रकाश डाला गया है। 'तितली' उपन्यास में जमींदार के कारिन्दों के अत्याचार का अंकन किया है। 'इरावती' का कथानक पहले दो उपन्यासों से अलग है। यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर शुंग

कालसे संबंधित है।

कहानीकार : प्रसाद : हिंदी कहानी क्षेत्र में प्रसाद जी की मौलिक शैली का विशेष महत्त्व है। उनकी सर्वप्रथम कहानी 'ग्राम' है जो 'इन्दु' पत्रिका में सन् 1911 में प्रकाशित हुई। प्रसाद जी की कहानियों का तीन वर्गों में विभाजन किया जाता है – ऐतिहासिक, प्रेममूलक और यथार्थोन्मुख। इनमें ऐतिहासिक कहानियाँ वातावरण चित्रण की दृष्टि से अत्यंत कलात्मक है। प्रेममूलक कहानियों में दुखान्त कहानियाँ मार्मिकता से भरी हैं। यथार्थोन्मुख कहानियाँ यथार्थवाद को प्रस्तुत करती है। प्रसाद की कहानियों का विभाजन तीन वर्गों में हैं। किन्तु उनका संसार भावात्मक है। इस भावात्मकता का भाव जगत मूलतः प्रेम जगत है।

2.3.3.4 अज्ञेय :

जीवन परिचय :

अज्ञेय प्रयोगवादी काव्य–धारा के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उनका पूरा नाम सच्चिदानंद हिरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' है। उनका जन्म सन् 7 मार्च, 1911 में हुआ। उनके पिताजी पुरातत्त्व विभाग में नौकरी करते थे। लाहौर से बी.एस्सी. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वहीं पर उन्होंने एम्.ए. अंग्रेजी में किया। उस समय क्रांतिकारी दल में भाग लेने के कारण उन्हें गिरफ्तार कर चार साल की सजा दी गई थी। गया था। रिहा होने के बाद वे अनेक पत्रिकाओं के संपादन से जुडे रहे। उन पत्रिकाओं में 'विशाल भारत', 'बिजली', 'सैनिक', 'प्रतीक' आदि पत्रिकाओं का समावेश है। सन् 1943 में सेना में कॅप्टन पदपर उनकी नियुक्ति हुई। सन् 1950 से सन् 1955 तक वे आकाशवाणी से जुडे रहे। सन् 1961 में वे कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति के आचार्य पद पर नियुक्त हुए।

अज्ञेय का साहित्य :

काव्य : 'भग्नदूत', 'चिन्ता', 'इत्यलम', 'हरि घास पर क्षणभर', 'बावरा–अहेरी', 'इन्द्रधनुष रौन्दे हुए थे', 'अरी ओ करूणा प्रभामय', 'आँगन के पार द्वार', 'सुनहरे शैवाल', 'कितनी नावों में कितनी बार', (ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त) 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ', 'सागर मुद्रा', 'पहले से सन्नाटा बुनता हूँ।'

कहानी संग्रह : 'विपथगा', 'परम्परा', 'कोठरी की बात', 'शरणार्थी', 'जयदोल', 'ये तेरे प्रतिरूप'

उपन्यास : 'शेखर : एक जीवनी', (दो भाग) 'नदी के द्वीप', 'अपने–अपने अजनबी'

यात्रा वृत्तांत : 'अरे यायावर रहेगा याद', 'एक बूँद सहसा उछली'

नाटक : 'उत्तर प्रियदर्शी'

समीक्षात्मक निबंध संग्रह : 'त्रिशंकु', 'आत्मनेपद', 'नवरंग और कुछ राग', 'हिंदी साहित्य : एक

आधुनिक परिदृश्य', 'आलवाल', 'लिखी कागज कोरे', 'भवंती'

अज्ञेय की कविता का भाव-पक्ष :

प्रयोगवादी काव्य-धारा के प्रवर्तक अज्ञेय हैं। अन्तमुर्खी प्रवृत्ति के कारण छायावादी कविता अपने ऱ्हास की ओर जा रही थी। प्रगतिवादी कविता में मार्क्सवाद का चिंतन होने के कारण उसमें साहित्यिक आंदोलन का अभाव दिखायी देने लगा। इसी समय काव्य के प्रति एक अन्वेषणात्मक दृष्टि लेकर अज्ञेय काव्य के क्षेत्र में आये। उनका काव्य सत्यान्वेषण का काव्य है। कुछ विद्वान अज्ञेय को मात्र शिल्पी मानते हैं, वास्तव में उन्होंने शब्दात्मा में छिपे अर्थ को पहचान कर ही सत्यान्वेषण किया है। उनकी काव्य-यात्रा को तीन सोपानों में विभाजित किया जाता है- १) निराशा, विद्रोह एवं भावुकता की कविताएँ २) सत्यान्वेषण से प्रेरित जिजीविषा परक कविताएँ ३) आत्मदान में सार्थकता पाने का प्रयास करनेवाली कविताएँ।

अज्ञेय ने अपने काव्य में विकासात्मक दृष्टि को अपनाया है, मगर हमें यह नहीं भूलना चाहिए की उनके काव्य विकास में छायावादी कल्पना का वैभव है, प्रगतिशील चिंतन का स्पर्श है और प्रयोगशील दृष्टि का प्रसार है। कवि अपनी कविताओं में स्त्री-पुरुष के संबंधों पर गहनता से विचार करता है। नारी और प्रकृति सौंदर्य को अज्ञेय जी ने यथार्थ धरातल पर उतारकर प्रस्तुत किया है। उन्होंने नारी संबंध की पुनर्व्याख्या की है और कहते है पुरुष और स्त्री का संबंध गतिशील संबंध है-

'तुम देवी ही नहीं, न ही मैं देवी का आराधक हूँ।

तुम हो केवल तुम, मै भी बस एक अकिंचन याचक हूँ।।'

उनकी प्रेमानुभूति में वेदना की अतिशयता परंपरागत प्रभाव के रूप में व्यक्त हुई है। प्रायोगिक कविताओं में प्रगतिशील कविता में पाई जानेवाली सामाजिक चेतना का विकास हुआ है। उन्होंने काव्य और जीवन को जोडने का प्रयास किया है और अनुभूति की ईमानदारी को महत्त्व दिया है। अज्ञेय की प्रायोगिक कविता में सूक्ष्म के स्थान पर स्थूल का आग्रह दिखायी देता है, राष्ट्रप्रेम की भावना परिलक्षित होती है। समाजबोध के साथ शोषितों के प्रति सहानुभूति दिखाई देती है। नास्तिकवाद और युग चेतना का अन्तर्राष्ट्रीय स्वर सुनाई देता है।

परिवेश के प्रति सतर्क रहते हुए अज्ञेय ने यथार्थ को पहचाना है। महानगरीय जीवन के प्रति वे अति जागरूक हैं। यांत्रिकता के दौरे में अपनापन सहानुभूति, आत्मियता कही खो गई है। प्रत्येक मनुष्य अपने स्वार्थ हेतु जी रहा है। इसी परिवेश के प्रति संपृक्ति दिखाते हुए कवि व्यंग्यशील हो उठते हैं-

'साप तुम सभ्य तो हुए नहीं

नगर में बसना भी तुम्हें आया नहीं

एक बात पुछूँ- (उत्तर दोगे?)

विष कहाँ पाया?'

इस प्रकार अज्ञेय की कविताएँ अनेक भावों को लेकर प्रवाहित रहती हैं। उन्होंने समय की माँग एवं परिस्थिति के अनुसार अपना काव्यलेखन किया।

अज्ञेय की कविता का शिल्प पक्ष :

अज्ञेय ने अपनी कविताओं में भाषा-प्रभुत्व का परिचय दिया है। उन्होंने कुछ शब्दों की ध्वनियों का कलात्मक प्रयोग किया है। क्रियाओं का कुशलता के साथ प्रयोग किया है। सशक्त भाषा के माध्यम से कवि ने चित्रात्मकता एवं जीवंतता प्रस्तुत की है। कहीं कोष्ठक में शब्द रखकर कवि अपना अभिलक्षित अर्थ व्यक्त करता है, तो कहीं क्रिया-विशेषणों का अर्थवाही है। यथास्थान पर तुकों और अनुप्रासों का प्रयोग हुआ है। अज्ञेय ने अपने काव्य में जो प्रतीक अपनाये हैं वह व्यक्ति और समाज से संबंधित हैं। लोकप्रचलित मुहावरों और किंवदन्तियों को उपयोग में लाया गया है। जिन बिम्बों का प्रयोग अज्ञेय ने किया है उससे कविता में एक प्रकार से संवेदना निर्माण होती है।

अज्ञेयः कहानीकार :

अज्ञेय ने हिंदी कहानी के परंपरागत शिल्प को तोडकर नवीन शिल्प को अपनाया है। उनकी कहानी का नायक कल्पना विलास में रमनेवाला नहीं है बल्कि अपने अनुभव और अनुभव की अभिव्यक्ति के संघर्ष में जुझनेवाला व्यक्ति है। इनकी प्रारंभिक कहानियों में नाटकीय स्थिति का निरूपण हुआ है। मूल रूप से व्यक्तिवादी कहानीकार कहलानेवाले अज्ञेय ने दो प्रकार की कहानियाँ लिखी हैं- एक रुमानियत भरी संवेदनात्मक कहानियाँ और दूसरी वर्तमान सभ्यता की असंगति एवं विषमताओं पर करारा व्यंग्य करती हैं। उनकी कुछ कहानियों में दोनों प्रकार की कहानियों का समन्वय दिखायी देती है। अज्ञेय की कहानी के साथ-साथ उपन्यासों में भी एक बात समानता के साथ दिखायी देती है और वह है प्रेम और कर्तव्य का द्वन्द्व। नारी वेदना को उन्होंने बडे ही कलात्मक ढंग से अपनी कहानियों में चित्रित किया है तो कुछ कहानियाँ प्रतीकों के सहारे मानसिक संघर्ष प्रस्तुत करती हैं । अज्ञेय जी की एक विशेषता है उन्हे मनोवैज्ञानिक कथाकार के रूप में भी पहचाना जाता है।

उपन्यासकार : अज्ञेय :

अपने साहित्यिक जीवन में अज्ञेय जी ने केवल तीन उपन्यासों का लेखन किया है। उन्हें मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के नाम से पहचाना जाता है। उनका सर्वप्रथम उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' है, जो (सन् 1940 में (प्रथम भाग) और सन् 1944 में (द्वितीय भाग) इस तरह) दो भागों में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास का आलोचकों ने नहीं बल्कि पाठकों ने बहुत तीखा विरोध किया। एक कलाकृति के रूप में स्वीकृति पाने के लिए इसे लंबी प्रतिक्षा करनी पडी। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी जी ने तो इसे

'मनोवैज्ञानिक प्रयोगों का पुतला कहा है।' प्रस्तुत उपन्यास में शेखर की जिज्ञासा का चित्रण हुआ है, साथ ही साथ उस जिज्ञरासा के परिणाम को दर्शाया है। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से वयःसंधि की मनःस्थितियों एवं भावात्मक विकास को सजगतापूर्वक अंकित किया है। 'नदी के द्वीप' उपन्यास में चार पात्र हैं- रेखा, भुवन, गौरा और चंद्रमाधव। इन चारों के माध्यम से चार संवेदनाएँ स्पष्ट की हैं। यह उपन्यास एक प्रेमकथा के रूप में लिखित है। यह प्रेम त्रिकोण प्रेम है, हम सामान्यतः जिस त्रिकोण को समझते हैं उससे यह त्रिकोण अलग है।

अज्ञेय जी हिन्दी साहित्य में आधुनिक भाव-बोध को प्रतिष्ठित करनेवाले रचनाकार रहे हैं। उनके साहित्य में परंपरा, आधुनिकता, भारतीयता एवं व्यक्ति स्वातंत्र्य की अवधारणायें प्रमुख स्थान रखती हैं। इन सभी के बीच निर्माण होनेवाले द्वन्द्व को उन्होंने झेला है। इसलिए उन्हें अस्तित्ववादी लेखक भी माना जाता है। उनका अंतिम उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' सन् १९६५ में प्रकाशित हुआ था जिसमें पाठकों ने अस्तित्ववादी स्थिति और विचार-दर्शन को ढूंढने की कोशिश की है। इस उपन्यास की कथा-भूमि को अज्ञेय अलक्षित रखते हैं। योके और सेल्मा नामक दो स्त्रियाँ हैं इन दोनों के संवादों में जीवन, आस्था, मृत्यु, स्वतंत्रता आदि की चर्चा हो रही है। ये दोनों महिलाएँ बर्फ के तूफान में धँसी हुई है जिसके कारण उनका बाहरी दुनिया से संपर्क टूटा हुआ है। सेल्मा बूढी और बीमार है और योके युवा है। योके को उसके प्रेमी सोरेन ने धोखा दिया था मजबूरन उसे वेश्या बनना पडा। वह चाहकर भी मर नहीं सकती । सेल्मा कैंसर से पीडित है वह जानती है कि कभी न कभी उसे मरना है। उपन्यास में सर्वत्र मृत्यु की गंध है जो उपन्यास को 'मृत्यु से साक्षात्कार' का आख्यान बनाती है।

यात्राकार : अज्ञेय :

अज्ञेय जी यात्रावृत्त को लेकर भी काफी जागरूक साहित्यकार रहे हैं। सन् 1953 में उन्होंने 'अरे यायावर रहेगा याद' यात्रा-साहित्य का प्रकाशन किया। इस रचना में स्वदेश की यात्राओं का वर्णन किया गया है। सन् 1960 में 'एक बूँद सहसा उछली' यात्रा साहित्य का प्रकाशन किया, जिसमे अज्ञेय जी की विदेश यात्राओं का समावेश है। अपने इन यात्रा साहित्य में रचनाकार ने सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों उल्लेख किया है।

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न 1 अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) आधुनिक काल का प्रारंभ संवत् 1900 से .....विद्वान मानते है।

अ) आ. शुल्क ब) आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी क) जयशंकर प्रसाद ड) रामकुमार वर्मा

2) भारतेन्दु जी को 'भारतेन्दु' यह उपाधि..... ने दी थी।

अ) श्रीनिवासनदास ब) रामेश्वरदत्त व्यास क) शिवप्रसाद सिंह ड) मोहन शुक्ल

3) निम्न में से .....को अमीचंद वंश का माना जाता है।

अ) अज्ञेय ब) आ. शुक्ल क) भारतेन्दु ड) हजारीप्रसाद द्विवेदी

4) 'भारत दुर्दशा' नाटक के नाटककार.....हैं।

अ) भारतेन्दु ब) विश्वनाथ प्रसाद क) महावीरप्रसाद ड) जयशंकर प्रसाद

5) आ. महावीरप्रसाद का जन्मस्थान.....हैं।

अ) रामपुर ब) दौलतपुर क) मैनपुरी ड) जबलपुर

6) 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक.....रहे हैं।

अ) आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ब) रामकुमार वर्मा क) अज्ञेय ड) शिवप्रसाद

7) ब्रजभाषा में जयशंकर प्रसाद.....उपनाम से रचना लिखते थे।

अ) जटाशंकर ब) नवरंग क) कलाधर ड) रसा

8) प्रसाद की.....को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा जाता है।

अ) आँसू ब) लहर क) झरना ड) कामायनी

9) अज्ञेय के.....काव्य-संग्रह को ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

अ) कितनी नावों में कितनी बार ब) इत्यलम क) भग्नदूत ड) सागर मुद्रा

10) .....उपन्यासकार के रूप में अज्ञेय को पहचाना जाता है।

अ) सामाजिक ब) ऐतिहासिक क) मनोवैज्ञानिक ड) राजनीतिक

प्रश्न 1 आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए।

(सूचना - परीक्षा में इस प्रकार के प्रश्न नहीं पूछे जाएँगे । यह केवल जानकारी हेतु दिया है।)

1) आधुनिक काल को 'गद्यकाल' किसने कहा है ?

2) भारतेन्दु की पत्नी का नाम क्या था?

3) भारतेन्दु ने कितने प्रकार के नाटक लिखे हैं?

4) 'बेकन विचार रत्नावली' के रचनाकार कौन है?

5) महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कौनसी भाषा का परिमार्जन किया है?

6) प्रसाद का परिवार किस नाम से परिचित था?

7) प्रसाद का अंतिम नाटक कौनसा है?

8) 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में कौनसी समस्या पर विचार हुआ है?

9) प्रसाद की प्रथम कहानी कौनसी है?

10) 'शेखर : एक जीवनी' उपन्यास कितने भागों में है?

11) 'अरे यायावर रहेगा याद' किस विधा की रचना है?

12) अज्ञेय कौनसी काव्यधारा के प्रवर्तक हैं?

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

आलंबन - सहारा, माध्यम

दर्पण - वह शीशा जिसमें प्रतिबिम्ब दिखायी देता है ।

महत्ता - महत्त्व

शिकंजा - दबाने, कसने आदि का यंत्र

उन्मेषशील - विकासशील-खिलना

मुखरित - शब्दों या ध्वनियों से युक्त बोलता हुआ।

वाटिका - बाग, बगीचा

अलौकिक - जो इस लोक में दिख न पडे, लोकोत्तर

किंवदन्ति - अफवाह, उडती खबर, जन-रव, दंतकथा

द्वन्द्व - दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओं का जोड

2.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1 अ)

1) आ. शुक्ल 2) रामेश्वरदत्त व्यास 3) भारतेन्दु 4) भारतेन्दु 5) दौलतपुर 6) आ. महावीरप्रसाद 7) कलाधर 8) कामायनी 9) कितनी नावों में कितनी बार 10) मनोवैज्ञानिक

प्रश्न 1 आ)

1) आधुनिक काल को गद्यकाल रामचंद्र शुक्ल ने कहा है।

2) भारतेन्दु की पत्नी का नाम मन्नादेवी था।

3) भारतेन्दु ने तीन प्रकार के नाटक लिखे हैं।

4) 'बेकन विचार रत्नावली' के रचनाकार आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं।

5) महावीरप्रसाद द्विवेदी ने खडी बोली का परिमार्जन किया है।

6) प्रसाद का परिवार 'सुँघनी साहु' नाम से परिचित था।

7) प्रसाद का अंतिम नाटक ध्रुवस्वामिनी है।

8) 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में नारी समस्या पर विचार हुआ है।

9) प्रसाद की प्रथम कहानी 'ग्राम' है।

10) 'शेखर : एक जीवनी' उपन्यास दो भागों में है।

11) 'अरे यायावर रहेगा याद' यात्रा विधा की रचना है।

12) अज्ञेय प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रवर्तक हैं।

2.7 सारांश :

1) भारतेन्दु युग प्रवर्तक साहित्यकार है। उनके नाम से ही आधुनिक काल का एक युग है 'भारतेन्दु युग'। अंग्रेजी हुकूमत से भारतीय जनता त्रस्त थी, उनके मन में स्वाधीनता की चेतना निर्माण करने कार्य भारतेन्दु ने अपने साहित्य के माध्यम से किया है। उनके नाटकों में ब्रिटिश व्यवस्था के प्रति आक्रोश का स्वर सुनाई देता है।

2) खडी बोली को परिमार्जित कर उसे एक नया आयाम देने का श्लाघनीय कार्य आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किया है और यह सारा कार्य ख्याति प्राप्त पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से हुआ है।

3) जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रवर्तक कवि हैं, उन्होंने लगभग सभी विद्याओं में अपनी कलम चलायी है, उनके साहित्य में ऐतिहासिकता, पौराणिकता एवं राष्ट्रीयता की झलक दिखायी देती है। अपने नाटकों में उन्होंने भारत वर्ष का गौरवगान किया है। प्रकृति पर मनुष्यता का आरोप करते हुए वे अपने काव्य को बडे अच्छे ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

4) अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रवर्तक साहित्यकार हैं । उनके साहित्य पर मनोविज्ञान का गहरा प्रभाव दिखायी देता है। कहानी के क्षेत्र में तो उन्होंने पूराने शिल्प को त्यागकर नये शिल्प को अपनाया है। उनके साहित्य में नास्तिकवाद दिखायी देता है। उनके काव्य में निराशा-विद्रोह और भावुकता अनेक स्थानों पर निहित है।

2.8 स्वाध्याय :

टिप्पणियाँ लिखिए.

1) आधुनिककालीन सामाजिक परिस्थिति।

2) आधुनिककालीन राजनीतिक परिस्थिति।

3) युगप्रवर्तक भारतेन्दु।

4) युगप्रवर्तक महावीरप्रसाद द्विवेदी।

5) नाटककार प्रसाद।

6) उपन्यासकार अज्ञेय।

2.9 क्षेत्रीय कार्य :

1) भारतेन्दु के साहित्य में भारतीयता की विशेषताओं की सूची बनाइए।

2) 'सरस्वती' पत्रिका के अंकों को प्राप्त कर पढिए।

3) भारतेन्दु के नाट्य साहित्य में व्यंग्य को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखिए।

4) 'प्रसाद के काव्य में प्रकृति' की विशेषताओं का संकलन कीजिए।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) हिन्दी साहित्य का इतिहास - आ. रामचंद्र शुक्ल

2) हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त

3) हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नागेन्द्र

4) हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा

5) हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

●●●

इकाई – 3 गद्य विधाओं का विकास
हिंदी गद्य की प्रमुख विधाओं–उपन्यास, नाटक, कहानी, आत्मकथा साहित्य का उद्‌भव और विकास।

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय विवेचन

3.3.1 हिंदी उपन्यास साहित्य : उद्‌भव और विकास

3.3.2 हिंदी नाटक साहित्य : उद्‌भव और विकास

3.3.3 हिंदी कहानी साहित्य : उद्‌भव और विकास

3.3.4 हिंदी आत्मकथा साहित्य : उद्‌भव और विकास

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

3.5 पारिभाषिक शब्द – शब्दार्थ

3.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्नों के उत्तर

3.7 सारांश

3.8 स्वाध्याय

3.9 क्षेत्रीय कार्य

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई को पढने के बाद आप –

1) हिंदी उपन्यास साहित्य के उद्‌भव और विकास को समझ सकेंगे।

2) हिंदी नाटक साहित्य के उद्‌भव और विकास को समझ सकेंगे।

3) हिंदी कहानी साहित्य के उद्‌भव और विकास को समझ सकेंगे।

4) हिंदी आत्मकथा साहित्य के उद्‌भव और विकास को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के इतिहास के सं. 1900 से आज तक के कालखंड को 'आधुनिक काल' कहा जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस युग को 'गद्य काल' कहा है। पूर्ववर्ती तीन कालखंडों- आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल में केवल पद्य-साहित्य लेखन होता रहा है। हिंदी गद्य साहित्य का उद्‌भव और विकास आधुनिक काल की महत्त्वपूर्ण घटना है। इसलिए इस युग को 'गद्यकाल' कहा जाता है। इस युग में गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में खडी बोली प्रतिष्ठित हुई।

भारतेन्दु युग आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रवेश द्‌वार है। भारतेन्दु ने स्वयं गद्य की लगभग सभी विधाओं का प्रारंभ किया। भारतेन्दु को आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य का 'जनक' कहा जाता है। भारतेन्दु काल से लेकर आज तक गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास होता रहा।

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हम उपन्यास, नाटक, कहानी, आत्मकथा आदि के उद्‌भव एवं विकास पर क्रमशः विस्तार से विवेचन करेंगे।

3.3 विषय विवेचन :

3.3.1 हिंदी उपन्यास साहित्य : उद्‌भव और विकास :

हिंदी गद्य साहित्य के अन्य अंगों के समान उपन्यासों का उद्‌भव आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रारंभ में भारतेन्दु काल में हुआ। उपन्यास आधुनिक युग की देन है। हिंदी में उपन्यास साहित्य का प्रारंभ बंगला और अंग्रेजी उपन्यासों के अनुकरण और संपर्क से हुआ है। कुछ विद्‌वान हिंदी उपन्यास का प्रारंभ संस्कृत से मानते हैं। वे संस्कृत के 'कादंबरी', 'दशकुमारचरित' आदि कथा-ग्रंथों को उपन्यास मानते हैं। वस्तुतः हिंदी उपन्यास का संबंध संस्कृत से नहीं है। अंग्रेजी भाषा के अनुकरण पर भारत में सबसे पहले बंगला में उपन्यास लिखे गए। फिर बंगला भाषा के अनुकरण पर हिंदी में उपन्यास लिखे गए। इस तरह अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी उपन्यासों के प्रभाव से हिंदी उपन्यास साहित्य का प्रारंभ हुआ है।

हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास :

इस विषय में विद्‌वानों में मतभेद है। कुछ आलोचक इशा अल्ला खाँ के 'रानी केतकी की कहानी' को प्रथम उपन्यास मानते हैं। कुछ विद्‌वान श्रद्धाराम फिलौरी के 'भाग्यवती' (1877 ई.) को पहला उपन्यास मानते हैं। आ. शुक्ल जी श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरू' को हिंदी का पहला उपन्यास मानते हैं। अधिकांश विद्‌वान 'परीक्षा गुरू' को ही हिंदी का प्रथम उपन्यास मानते हैं।

विकास परंपरा :

हिंदी उपन्यास साहित्य का वास्तविक प्रारंभ तो प्रेमचंद के उपन्यासों से माना जाता है। प्रेमचंद ने उपन्यास साहित्य को उत्कर्ष पर पहुँचाया। प्रेमचंद एक ऐसे केंद्रबिन्दु हैं, जिनके दोनों ओर उपन्यास साहित्य की भिन्न-भिन्न रेखाएँ दिखाई देती हैं। प्रेमचंद को केंद्र में मानकर उपन्यास-साहित्य के विकास के तीन कालखंड किए जाते हैं -

1) प्रेमचंद पूर्व युग (सन् 1882 - 1915)

2) प्रेमचंद युग - (सन् 1915 - 1936)

3) प्रेमचंदोत्तर युग - (सन् 1936 से आज तक)

1) प्रेमचंद पूर्व युग - :

प्रेमचंद के आगमन से पूर्व अनेक उपन्यास लिखे गए। ये सारे उपन्यास घटना प्रधान, कल्पना प्रधान और चमत्कार प्रधान हैं। इनका उद्देश्य केवल मनोरंजन था। मानव जीवन से इनका कोई संबंध नहीं था। केवल जासूसी, तिलस्मी, ऐय्यारी उपन्यास लिखे गए। प्रेमचंद से पहले कोई महत्त्वपूर्ण मौलिक उपन्यास नहीं लिखा गया।

प्रेमचंद पूर्व युग में अनेक प्रकार के उपन्यास लिखे गए।-

1) शुद्ध मनोरंजन - प्रधान उपन्यास

2) उपदेश प्रधान-सामाजिक उपन्यास

3) ऐतिहासिक उपन्यास

स्वरूप :

इस युग के उपन्यास घटना प्रधान है। इसमें चमत्कापूर्ण घटनाओं का जाल बिछा हुआ है। अमानवीय पात्रों की संख्या अधिक हैं। ऐतिहासिक उपन्यास नाममात्र ऐतिहासिक हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में रोमांचकारी घटनाएँ हैं। सामाजिक उपन्यास भी घटना-प्रधान और कल्पना प्रधान हैं। इस युग में उपन्यास रचना का कोई निश्चित रूप नहीं था।

अनुवाद कार्य :

इस काल के अनूदित उपन्यासों का स्तर उस समय के मौलिक उपन्यासों से कुछ ऊँचा है। इस युग के अन्य भाषाओं के उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद हुआ। विशेषतः बंगला भाषा के अनेक उपन्यासों का अनुवाद हुआ। बंकिमचंद्र, शरत्चंद्र के उपन्यासों का अनुवाद हुआ। इसके साथ ही उर्दू, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी के अनेक उपन्यासों का अनुवाद हुआ। इस युग में मौलिक उपन्यासों की अपेक्षा

अनूदित उपन्यासों की संख्या अधिक हैं।

प्रमुख उपन्यासकार :

इस युग के उपन्यासकारों में देवकीनंदन खत्री, गोपालराम गहमरी तथा किशोरीलाल गोस्वामी का प्रमुख स्थान रहा है। देवकीनंदन खत्री एवं गोपालराम गहमरी ने क्रमशः तिलस्मी, जासूसी उपन्यास लिखे हैं। देवकीनंदन खत्री जी के 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता संतती', तिलस्मी उपन्यास बहुत प्रसिद्ध हुए थे। 'सरकती लाश', 'खूनी कौन है?' गहमरी के जासूसी उपन्यास हैं। गहमरी ने लगभग दो दर्जन उपन्यास लिखे हैं। किशोरीलाल गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्णदास आदि लेखकों ने सामाजिक उपन्यास लिखे हैं। बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी' 'सौ अजान एक सूजान' सामाजिक उपन्यासों में सुधार, उपदेश की प्रवृत्ति है। राधाकृष्णदास का 'निस्सहाय हिंदू', किशोरीलाल गोस्वामी के 'त्रिवेणी', 'सौभाग्यश्रेणी' उल्लेखनीय उपन्यास है।

इस युग के उपन्यासों में वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, तथा संभाषण, तीन प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया गया है। भाषा के तीन रूप अपनाए गये हैं- संस्कृत मिश्रीत हिंदी, उर्दू मिश्रीत तथा सरल भाषा।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि इस काल के सामाजिक उपन्यासों में नैतिक शिक्षा, सुधार, भारतीय आदर्श, पाश्चात्य सभ्यता की कटु आलोचना है। इनमें मनोरंजन की प्रधानता है। जीवन की आलोचना का अभाव इनमें रहा है।

२) प्रेमचंद युग :

हिंदी उपन्यास-साहित्य का वास्तविक प्रारंभ प्रेमचंद के आगमन से होता है। प्रेमचंद उपन्यास साहित्य में युग प्रवर्तक के रूप में आए। उन्होंने हिंदी उपन्यास को जासूसी और ऐय्यारी उपन्यासों के माया जाल से निकालकर मानव जीवन की वास्तविक पृष्ठभूमि पर लाकर खडा किया। उन्होंने सामान्य जनता की समस्याओं को उपन्यासों का विषय बनाया। विषय और शैली दोनों दृष्टियों से हिंदी उपन्यास को समृद्ध बनाया। उनके 'सेवासदन' उपन्यास के प्रकाशन से हिंदी उपन्यास साहित्य को नई दिशा मिली, तथा उपन्यासों में जनजीवन का चित्रण होने लगा। यही कारण है कि प्रेमचंद को 'उपन्यास सम्राट' कहा जाता है।

प्रेमचंद ने बारह उपन्यास लिखे हैं- 'प्रेमा', 'प्रतिज्ञा', 'वरदान', 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रय', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'निर्मला', 'कायाकल्प', 'गोदान','गबन', 'मंगलसूत्र' आदि।

प्रेमचंद ने अपने युग और समाज को सच्चाई से देखा था। उन्होने अपने युग की सामाजिक समस्याओं को यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया है। विशेषतः भारतीय किसान और मध्यवर्ग की समस्याओं को प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद का युग राष्ट्रीय और सामाजिक उथल पुथल का युग था। पराधीन भारत अंग्रेजी सत्ता

से मुक्त होने का प्रयास कर रहा था। सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में विभिन्न वर्गों की आपस में टकराहट हो रही थी। प्रेमचंद के उपन्यासों में तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक भारत साकार हुआ है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में ग्रामजीवन की विविध समस्याओं का चित्रण है। किसानों की समस्याएँ, मध्यवर्ग की समस्याएँ, विधवाओं की समस्याएँ, वेश्याओं की समस्याएँ आदि विविध समस्याओं को उन्होंने उठाया है। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को सभी दृष्टियों से उत्कर्ष पर पहुँचाया। भाव और विषय की दृष्टि से समृद्ध बनाया। उपन्यास को शिल्प की दृष्टि से निश्चित रूप प्रदान किया। कथानक, चरित्र-चित्रण, संवाद, वातावरण, भाषा शैली आदि सभी दृष्टियों से संपन्न बनाया।

'गोदान' हिंदी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। गोदान और 'निर्मला' को छोडकर बाकी उपन्यासों में प्रेमचंद जी आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी रहे हैं। 'सेवासदन', 'रंगभूमि', 'प्रेमाश्रय', 'कर्मभूमि', आदि उपन्यासों में प्रेमचंद का गांधीवादी आदर्श, सत्य, अहिंसा, प्रेम लक्षित होता है। इनमें उन्होंने समस्याओं के समाधान भी प्रस्तुत किए हैं।

अन्य उपन्यासकार :

प्रेमचंद के साहित्यिक आदर्शों से प्रभावित होकर आदर्श सामाजिक उपन्यासों की रचना में प्रवृत्त हुए विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिश ने 'माँ' (१९२९), 'भिखारिणी', 'संघर्ष' में नारी हृदय की विशालता, ममता और पतिपरायणता को उभारणे का प्रयास किया। गांधीवादी दृष्टिकोण से अनेक उपन्यास प्रस्तुत किये जिसमें 'उलझन', 'जागरण', 'प्रजामण्डल' आदि प्रमुख हैं। सियारामशरण कृत 'गोद' और 'अन्तिम आकांक्षा' उल्लेखनीय उपन्यास है।

प्रेमचंद युग में जयशंकर प्रसाद और निराला भी चर्चा में रहे हैं। प्रसाद जी के 'कंकाल' और 'तितली' विशेष रूप से चर्चा में रहे हैं। निराला के 'अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती' तथा 'निरूपमा' आदि प्रकाशित हुए। इन कृतियों में कल्पना, रोमांस और आदर्शवादिता की प्रधानता के कारण जीवन्त यथार्थ मुखरित नहीं हो पाया है।

अतः कहा जा सकता है कि प्रेमचंद युग के उपन्यास साहित्य से आदर्शवाद, जीवन की आलोचना के साथ समस्याओं के समाधान के चित्रण से सामाजिक प्रेरणा अभिव्यक्त हुई है। इस युग में प्रतिभाशाली उपन्यासकार निर्माण हुए हैं।

3) प्रेमचंदोत्तर युग :

प्रेमचंद के बाद हिंदी उपन्यास साहित्य का विविधमुखी विकास हुआ। अनेक लेखकों ने प्रेमचंद के सामाजिक उपन्यासों की परंपरा को आगे बढाया। कुछ लेखकों ने मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, आँचिलक उपन्यास लिखें।

1) मनोवैज्ञानिक उपन्यास :

अनेक उपन्यासकारों ने मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर अपने पात्रों की यौन-वृत्तियों, दमित वासनाओं, ग्रंथिओं का विश्लेषण अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। मनोविश्लेषणवादी परंपरा में जैनेन्द्र कुमार, इलाचंद्र जोशी, अज्ञेय, देवराज आदि महत्त्वपूर्ण है। जैनेंद्र के उपन्यासों का प्रमुख तत्त्व मानसिक अन्तर्द्वद्व का विश्लेषण है। उनकी रचनाएँ 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', 'व्यतीत', 'सुखदा' आदि में नारी और पुरुष पात्रों की अपेक्षाओं एवं भ्रम का उद्घाटन हुआ है।

इलाचंद्र जोशी ने अपने 'संन्यासी', 'परदे की रानी', 'प्रेत की छाया' उपन्यासों में फ्रयड, एडलर, युंग आदि के सिद्धांतों के आधार पर काम, अहं एवं आत्महीनता आदि का सूक्ष्म अंकन किया है।

2) सामाजिक उपन्यास :

सामाजिक उपन्यासों में बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण है। समाज सुधार, निम्न-मध्यवर्ग के जीवन का यथार्थ चित्रण तथा समाज की रुढि-परंपराओं और पुराने मूल्यों के प्रति संघर्ष आदि का भी चित्रण है।

प्रसाद और कौशिश के बाद सामाजिक समस्याओं पर लिखने वाले उपन्यासकारों में उग्र, चतुरसेन शास्त्री, उपेन्द्रनाथ अश्क, आदि के नाम प्रमुख हैं। चतुरसेन शास्त्री ने अपने सामाजिक उपन्यासों में यह दिखाने का प्रयास किया है कि वासना मनुष्य को कहाँ तक पतित और नीच बना देती है। 'हृदय की प्यास' में उन्होंने विधवाश्रमों में छिपकर किये जानेवाले दुराचारों का नग्न चित्रण किया है। अश्क के 'गिरती दीवारें' में निम्न मध्यवर्ग के चित्रण का उल्लेखनीय यथार्थ है। इसमें उन्होंने आधुनिक समाज की वैवाहिक रुढियों के कारण युवक-युवतियों के प्रणय की असफलता का चित्रण किया है।

अन्य सामाजिक उपन्यासकारों में भगवतीचरण वर्मा (पतन, आखिरी दाँव, भूले बिसरे चित्र), अमृतलाल नागर (बूँद और समुद्र), विष्णु प्रभाकर (तट के बंधन) राजेंद्र यादव (सारा आकाश, उखडे हुए लोग) आदि उल्लेखनीय रहे हैं।

3) साम्यवादी उपन्यास :

साम्यवादी उपन्यासों में वर्ग विषमता, आर्थिक शोषण, जीवन संघर्ष आदि का चित्रण है। उसी तरह इन उपन्यासों में आर्थिक समस्याओं को साम्यवादी क्रांतिकारी दृष्टिकोन से परखा गया है। लगभग सभी लेखकों ने प्रेम, पाप-पुण्य, विवाह आदि सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति नवीन दृष्टिकोन अपनाने की चेष्टा भी की है। हिंदी के प्रमुख साम्यवादी उपन्यासकार हैं- यशपाल। यशपाल के सभी उपन्यासों में आर्थिक समस्याओं को साम्यवादी क्रांतिकारी दृष्टिकोन से परखा गया है। साथ ही समाज की जर्जर मान्यताओं के खोखलेपन को दिखाया है। यशपाल के प्रमुख उपन्यास हैं - 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही',

'पार्टी कामरेड', 'मनुष्य के रूप', 'झूठा सच', 'अप्सरा का शाप' आदि। अन्य साम्यवादी लेखकों में प्रमुख हैं - राहुल सांकृत्यायन (सिंह सेनापति, 'वोल्गा से गंगा तक') राघेय राघव (घरौंदा), नागार्जुन (रतिनाथ की चाची, दुःखमोचन) आदि।

४) ऐतिहासिक उपन्यास :

प्रेमचंद के उपरांत ऐतिहासिक उपन्यासों को परंपरा विकसित होती गई। इन उपन्यासों में ऐतिहासिक विस्मृत प्रसंगों को सजीव किया गया है। साथ ही इन उपन्यासों में कल्पना और इतिहास का मिश्रण, प्रेम की सरसता, पात्रों के आदर्श, ऐतिहासिक व्यक्तियों का परंपरानुकूल सजीव चरित्र-चित्रण आदि है। ऐतिहासिक उपन्यासों की धारा में नवीन युग आरंभ करनेवाले वृंदावनलाल वर्मा हैं। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और इतिहास का सही मिश्रण है। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्मा जी ने बुन्देलखंड, झांसी, ग्वालियर आदि स्थानों के ऐतिहासिक विस्मृत प्रसंगों को सजीव किया है। वर्माजी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं- 'गढकुण्डार', 'विराटा की पद्मिनी', 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई', 'कचनार', 'मृगनयनी' आदि

अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों में हजारी प्रसाद द्विवेदी (बाणभट्ट की आत्मकथा, चारू चन्द्रलेख) चतुरसेन शास्त्री (वैशाली की नगरवधु, सोमनाथ) रांगेय राघव (मुर्दों का टीला) आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

५) आँचलिक उपन्यास :

आँचलिक उपन्यासों में किसी अंचल या प्रदेश-विशेष के वातावरण को सजीव रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इनमें लोक-संस्कृति, लोक गीतों एवं लोकभाषा का भी चित्रण किया जाता है। इसके अलावा किसी आँचल विशेष के जन-जीवन, धार्मिक विश्वास, रीति-रिवाज, आचार-विचार, वेशभूषा, खान-पान, विधि-निषेध, विवाहादि संस्कार, सामाजिक मान्यताएँ, राजनीतिक जागृति आदि बातों को भी लेखक आँचलिक उपन्यासों में प्रस्तुत करता है। फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल', 'परती परिकथा' विशेष उल्लेखनीय आँचलिक उपन्यास हैं। इनमें बिहार की संस्कृति का सजीव चित्रण है। अन्य आँचलिक उपन्यासकार हैं- नागार्जुन (बलचनमा), उदयशंकर भट्ट (लोक परलोक), राजेंद्र अवस्थी (जंगल का फूल), राही मासूम रजा (आधा गाँव) आदि।

६) स्वातंत्र्योत्तर काल और प्रायोगिक परंपरा :

स्वातंत्रोत्तर काल में उपन्यास शिल्प में नए-नए प्रयोग हुए। धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोडा', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का (सोया हुआ जल) शिल्प विधान की दृष्टि से प्रयोगशील उपन्यास है।

औद्योगिकीकरण, पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव के कारण उत्पन्न आधुनिकता का चित्रण उपन्यासों में होने लगा। मोहन राकेश के 'अंधेरे बंद कमरे' में आस्थाहीन समाज का चित्रण है। राजकमल चौधरी के 'मछली मरी हुई' में समलैंगिक यौन सुख में लिप्त पढे-लिखे पति-पत्नी के झगडों का चित्रण है।

अन्य लेखकों में उषा प्रियंवदा (पचपन खंभे लाल दीवारें) श्रीलाल शुक्ल (राग दरबारी), कृष्णा सोबती (डार से बिछुडी), निर्मल वर्मा (वे दिन) कमलेश्वर (डाक बंगला) इन उपन्यासों में भी आधुनिकता और मध्यवर्गीय जीवन के विभिन्न पहलू हैं।

नारीवादी उपन्यासों में नारी समस्या केंद्रित है। इस दिशा में मृदुला गर्ग (कठगुलाब), मालती जोशी (सहचारिणी), मैत्रयी पुष्पा (स्मृतिदंश) नासिरा शर्मा (जिंदा मुहावरें) उल्लेखनीय हैं।

आगे चलकर उत्तर आधुनिक, पूँजीवाद, खुले बाजार, ग्लोबोलाइझेशन का रूप आदि का चित्रण उपन्यासों में होने लगा है। मनोहर शाम जोशी का 'कुरू कुरू स्वाहा', सुरेंद्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए' आदि उपन्यास महत्त्वपूर्ण हैं।

इस प्रकार हिंदी उपन्यास साहित्य में युग के अनुसार अनेक विषय, शैलिया आती रही, जिससे हिंदी उपन्यास साहित्य विकसित होता रहा। प्रति दिन नए उपन्यास, नए लेखक प्रकाश में आते रहें।

3.3.3.2 हिंदी नाटक : उद्‌भव और विकास :

नाटक एक समृद्ध साहित्यिक विधा है। रंगमंच पर अभिनय के द्‌वारा प्रस्तुत करने की दृष्टि से गद्य या गद्य-पद्य मिश्रित रचना को 'नाटक' कहा जाता है। डॉ. दशरथ ओझा के अनुसार नाटक का उद्‌भव १३ वी शती में हुआ है। उनके मतानुसार हिंदी का सर्व प्रथम नाटक 'गाय सुकुमार रास' है। किंतु इसमें नाटकीय तत्त्वों जैसे अभिनेयता का अभाव होने से इसे हिंदी का सर्व प्रथम नाटक नहीं माना जा सकता।

हिंदी साहित्य में नाटक का वास्तविक प्रारंभ भारतेन्दु काल से ही हुआ । नाटक के उद्‌भव को लेकर भरत के 'नाट्यशास्त्र' में एक घटना उल्लेखित की गयी है कि देवताओं के प्रार्थना करने पर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर पाँचवे वेद के रूप में 'नाट्यवेद' की रचना की। कुछ विद्‌वान भारतीय नाटक को यूनानी नाट्यकला की देन मानते हैं। आ. रामचंद्र शुक्ल के अनुसार रिवा नरेश विश्वनाथ सिंह कृत 'आनंद रघुनन्दन' हिंदी का पहला नाटक है। वस्तुतः खडी बोली के नाटकों के आरंभ का श्रेय भारतेन्दु को ही जाता है। हिंदी नाट्य साहित्य का समुचित विकास आधुनिक काल में ही हुआ। सन् 1850 ई. से अब तक के नाट्य साहित्य को मूलतः तीन भागों में विभक्त किया जाता है। उसमें प्रथम भारतेन्दु युग, प्रसाद युग और प्रसादोत्तर युग प्रमुख है।

हिंदी नाटक साहित्य में भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' नाटक-कला से संबंधित प्राचीन ग्रंथ है। प्राचीन नाटक साहित्य पद्यात्मक है. आधुनिक हिंदी नाटक गद्यात्मक है। हिंदी में नाटक साहित्य का प्रारंभ बंगला और संस्कृत नाटकों से प्रेरणा पाकर हुआ है। भारतेन्दु ने स्वयं अनेक नाटक लिखकर नाटक साहित्य का

प्रवर्तन किया। भारतेन्दु से लेकर आजतक हिंदी नाटक साहित्य का विकास निम्नानुसार हुआ है-

भारतेन्दु युग :

भारतेन्दु ने हिंदी में नाटक साहित्य का प्रवर्तन किया। पाश्चात्य और बंगला नाटकों से प्रेरणा लेकर हिंदी में नाटक लिखे गये। भारतेन्दु का युग प्राचीन और नवीन के संघर्ष का युग था। नवजागरण का युग था। युगीन विचारों को व्यक्त करने के लिए नाटक का माध्यम उपयुक्त था। भारतेन्दु ने संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला के नाटकों को ध्यान में रखकर नाटक लिखे। जीवन के विविध क्षेत्रों से कथानक लिए- समाज, धर्म, इतिहास, पुराण आदि।

भारतेन्दु ने दो प्रकार के नाटक लिखें-मौलिक और अनूदित। उनके प्रमुख नाटक हैं - 'सत्य हरिश्चंद्र', 'वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवती', 'चंद्रावली', 'भारत-दुर्दशा', 'सतीप्रताप', 'नीलदेवी', 'अंधेर नगरी', 'विद्या सुंदर', 'पाखंड-विडंबन', 'धनंजय विजय', 'मुद्राराक्षस' आदि।

भारतेन्दु ने तत्कालीन सामाजिक धार्मिक समस्याओं को उठाया है। नाटकों के माध्यम से सांस्कृतिक जागरण का प्रयास किया है। साथ ही उन्होंने भारतीय संस्कृति का महत्त्व समाज सुधार, देशभक्ति, आर्थिक दुर्दशा, आदि विषयों का नाटकों में उद्‌घाटन किया। बंगला के अनेक नाटकों का उन्होंने अनुवाद किया है। इस प्रकार भारतेन्दु ने नाटक साहित्य का प्रारंभ किया। नाटक के सभी अंगों का विकास करने का प्रयास किया।

भारतेन्दु से प्रेरणा लेकर अनेक लेखकों ने नाटक लिखे। इनमें दो नाटककार प्रभावी रहे हैं। १) प्रतापनारायण मिश्र एवं राधाकृष्णदास। राधाकृष्णदास के 'दुखिनी बाला' में बालविवाह कि समस्या है। मिश्र के 'गो-संकट' में गो हत्या संबंधि समस्याओं का उद्‌घाटन हुआ है। अन्य नाटककारों में बालकृष्ण भट्ट, किशोरीलाल गोस्वामी, अंबिकादास व्यास उल्लेखनीय है।

संक्षेप में भारतेन्दु कालीन हिंदी नाटक विषय और शैली की दृष्टि से बहुआयामी है।

2) द्‌विवेदी युग :

भारतेन्दु युग के नाटकों में जन-जीवन के जिस निकटता का परिचय मिलता है वह प्रस्तुत युग के नाटकों में नहीं। इस युग के नाटककारों को एक तो परंपरागत रंगमंच उपलब्ध नहीं हुआ और इस बीच लगातार मध्यवर्ग की वृद्धि के कारण लोक-जीवन से इनका सहज संबंध भी टूट गया। इस युग में नाटकों की परंपरा कुछ धीमी हो गई। संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला के नाटकों के अनुवाद की परंपरा इस युग में चलती रही। मौलिक नाटक बहुत कम लिखे गये। इस युग के प्रमुख आ. हजारी प्रसाद द्‌विवेदी थे। उन्होंने अन्य लेखकों की शैली और भाषा सभी क्षेत्रों में सुधार एवं संस्कार लाने के लिए योगदान दिया। इस युग के दो नाटककार उल्लेखनीय है। नारायण प्रसाद 'बेताब', जे.पी. श्रीवास्तव।

3) प्रसाद युग :

जयशंकर प्रसाद के आगमन से हिंदी नाटक साहित्य को नई दिशा मिल गई। हिंदी नाटक पूर्ण उत्कर्ष तक पहुँच गया। प्रसाद ने नाटक साहित्य में युगान्तरकारी परिवर्तन किए। पाश्चात्य और भारतीय कला का समन्वय करके श्रेष्ठ और मौलिक नाटक लिखे।

जयशंकर प्रसाद के अधिकांश नाटक ऐतिहासिक है। प्रसाद ने ऐतिहासिक नाटकों में भारत के प्राचीन गौरव, सभ्यता, संस्कृति, परंपरा के प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किए हैं। उनके नाटक देशभक्ति और राष्ट्रीयता का संदेश देते हैं। उन्होंने देशवासियों में आत्मगौरव, उत्साह और प्रेरणा का संचार करने हेतु अतित के गौरवपूर्ण चित्र प्रस्तुत किए हैं। प्रसाद जी के प्रमुख नाटक हैं- 'स्कंधगुप्त', 'चंद्रगुप्त', 'अजात शत्रु', 'राजश्री', 'ध्रुवस्वामिनी', 'विशाखा', 'कामना', 'जनमेजय का नागयज्ञ' आदि।

प्रसाद ने पात्रों के चारित्रिक विकास को अधिक महत्त्व दिया है। आदर्श नारी पात्रों की सृष्टि उनकी विशेषतः है। प्रत्येक नाटक में आदर्श नारी पात्र है। उन्होंने नारी शक्ति और स्वाभिमान का चित्रण किया है। उनके नाटकों का अंत मार्मिक और प्रभावशाली है, इसलिए कहा जाता है कि, 'प्रसाद के नाटक न तो दुखान्त है, न तो सुखांत, बल्कि प्रसादान्त है।' उनके नाटकों पर आरोप लगाये जाते हैं कि, उनके नाटकों में काव्यात्मकता और दार्शनिकता की छाप है। भाषा शैली कठीन है। सामान्य पाठक समझ नहीं पाते। लेकिन तत्कालीन संस्कृति और वातावरण को उपस्थित करने के लिए ऐसा आवश्यक था।

अतः जयशंकर प्रसाद हिंदी के प्रथम सर्वश्रेष्ठ नाटककार है। इस युग में बेचन शर्मा 'उग्र', गोविंदवल्लभ पंत, सेठ गोविंददास आदि महत्त्वपूर्ण नाटककार हैं।

4) प्रसादोत्तर युग :

इस युग में हिंदी नाटकों का तीव्र गति से विकास हुआ। इस युग में ऐतिहासिक, सामाजिक समस्यामूलक नाटक लिखे गये।

1) ऐतिहासिक नाटक :

ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास की घटनाएँ, सांस्कृतिक वातावरण, मुस्लिम-कालीन भारतीय इतिहास आदि को दिखाने का प्रयास किया गया। इतिहास का उपयोग आदर्शों की स्थापना के लिए किया है। वृंदावनलाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविंददास आदि प्रमुख ऐतिहासिक नाटककार हैं।

हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में राष्ट्रभक्ति, आत्मत्याग, बलिदान, हिंदू-मुस्लिम एकता आदि भावों का अंकन हुआ है। वृन्दावनलाल वर्मा मूर्धन्य ऐतिहासिक नाटककार हैं। उन्होंने अपने नाटकों में 'झाँसी की रानी' (1948), 'पूर्व की ओर' (1950), 'बीरबल' (1950), 'ललित विक्रम' आदि महत्त्वपूर्ण

ऐतिहासिक नाटकों को स्थान दिया है। चंद्रगुप्त विद्यालंकार कृत 'अशोक', उदयशंकर भट्ट कृत 'मुक्तिपथ', लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत 'वत्सराज', 'वितस्ता की लहरें', उपेन्द्रनाथ अश्क कृत 'जय-पराजय', चतुरसेन शास्त्री कृत 'छत्रसाल' आदि उल्लेखनीय ऐतिहासिक नाटक हैं।

2) समस्या-प्रधान नाटक :

इन नाटकों पर प्रमुख रूप से इब्शन, बर्नाड शाँ आदि पाश्चात्य नाटककारों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। रोमांटिक नाटकों की प्रतिक्रिया स्वरूप पाश्चात्य नाटक के क्षेत्र में यथार्थवादी नाटकों का प्रचलन हुआ जिनमें बाह्य द्वन्द्व की अपेक्षा आन्तरिक द्वन्द्व का उद्घाटन अधिकतर हुआ। इन नाटकोंने स्वगत कथन, गीत आदि का परित्याग कर दिया। इस वर्ग में मुख्यतः लक्ष्मीनारायण लाल के समस्याप्रधान नाटक आते हैं।

मनोवैज्ञानिक नाटक : लक्ष्मीनारायण मिश्र जी ने हिंदी में समस्या प्रधान नाटकों का सूत्रपात किया। मनोवैज्ञानिक नाटकों में नारी और पुरुष के संबंध, स्त्री शिक्षा, प्रेमविवाह तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं का कलात्मक विश्लेषण है। मिश्र जी के 'सिन्दूर की होली', 'राक्षस का मंदीर', 'संन्यासी' आदि महत्त्वपूर्ण नाटक हैं।

सामाजिक नाटक : इसमें मध्यवर्गीय समाज की समस्या सामाजिक रूढियाँ, बंधन, पारिवारिक जीवन, नारी स्वातंत्र्य, संयुक्त परिवार आदि का विवेचन है। उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविंददास आदि का सामाजिक समस्या प्रधान नाटकों के लेखन में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अश्क जी के नाटक हैं- 'अलग-अलग रास्ते', 'कैद', 'उडान', 'स्वर्ग की झलक'।

3) भाव-प्रधान नाटक : कल्पना के आधार पर रचित नाटकों में कुछ नाटक भाव प्रधान है। शैली की दृष्टि से इन्हें 'गीति नाटक' भी कहा जाता है। इसमें भाव की प्रधानता के साथ साथ पद्य का भी प्रयोग अपेक्षित है। आधुनिक युग में रचित हिंदी का पहला 'गीति नाटक' प्रसाद कृत 'करुणालय' (1912) है। इसमें राजा हरिश्चंद्र और शुनः शेप की बलिकथा प्रस्तुत हुई है। मैथिलीशरण गुप्त कृत 'अनघ', उदयशंकर भट्ट कृत 'मत्स्यगंधा' धर्मवीर भारती का 'अंधा युग' आदि उल्लेखनीय गीति नाटक हैं।

4) प्रतीकवादी नाटक : इस परंपरा का जन्म प्रसाद के 'कामना' (1927) नाटक से माना जाता है। सुमित्रानंदन पंत कृत 'ज्योत्स्ना', लक्ष्मीनारायण काल कृत 'मादा कॅकटस', 'सुन्दर रस', 'दर्पण' आदि प्रतीकात्मक नाटक हैं।

5) स्वातंत्र्योत्तर नाटक : इस युग में नाटक साहित्य का तेजी से विकास हुआ। नए लेखकों ने नई दृष्टि, वस्तु और नए शिल्प का प्रयोग करते हुए नाटक साहित्य को विकसित किया। नाटक की प्रमुख धाराएँ हैं -

1) सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना के नाटक

2) व्यक्तिवादी चेतना के नाटक

3) राजनीतिक चेतना के नाटक

आजादी के बाद देश में भ्रष्टाचार फैलता गया तथा नई समस्याओं को जन्म देता गया। इन बातों को नाटककारों ने चित्रित किया है। इस संदर्भ में चंद्रगुप्त विद्यालंकार के 'न्याय की रात', विनोद रस्तोगी के 'आजादी के बाद' नाटक में देश में व्याप्त भ्रष्टाचार अभिव्यक्त हुआ है।

स्वतंत्रता के बाद भारत में अनेक राज्यों में विविध हिंदी नाट्य रंगमंचों की स्थापना हुई। इसका हिंदी नाटकों के निर्माण पर अनुकूल प्रभाव पडा। इससे अनेक महत्त्वपूर्ण हिंदी रंगमंच उपयोगी नाटकों - 'मादा कॅक्टस', 'अंधायुग', 'लहरों के राजहंस','आषाढ का एक दिन','दर्पण' आदि का उदय हुआ। इन नाटकों में रंगमंच और साहित्य दोनों का समन्वय है। इसके उपरांत भारतीय समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करनेवाली कई नाट्य-कृतियाँ लिखी गई जिनमें 'आधे-अधूरे', 'शुतुरमुर्ग', 'त्रिशंकू', 'मिस्टर अभिमन्यू' आदि प्रमुख हैं।

इसके अलावा जन चेतना प्रधान नाटकों में सुरेंद्र वर्मा कृत 'द्रौपदी' सर्वेश्वरदयाल कृत 'बकरी' महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें आधुनिकता, अनास्था, विसंगतियाँ आदि को व्यंग्य के माध्यम से दिखाया है। श्रीलाल शुक्ल के 'राग दरबारी' तथा मन्नू भंडारी के 'महाभोज' उपन्यास के नाट्य रूपांतर प्रकाशित हुए हैं।

इन मौलिक नाटकों के अतिरिक्त अन्य भाषा के नाटकों के अनुवाद किये गए। इन अनूदित नाट्यकृतियों ने हिंदी रंगमंच की ओर दर्शकों को आकर्षित भी किया और हिंदी नाटक में विभिन्न शिल्प-शैलियाँ भी आ गई। श्रीमती केशवचंद वर्मा जी ने विजय तेंदुलकर का मराठी नाटक 'पंछी ऐसे आते हैं' का सफल अनुवाद किया। प्रतिभा अग्रवाल ने बादल सरकार के बंगाली नाटक 'पागल घोडा' का अनुवाद किया। अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद भी हुए। इस तरह अन्य भाषाओं के नाटकों के अनुवादों से हिंदी नाट्य-साहित्य समृद्ध बना है।

3.3.3 हिंदी कहानी : उद्‌भव और विकास :

मानव सभ्यता के आदिकाल से ही कहानी कहने की परंपरा किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद से यम-यमी, पुरूखा ऊर्वशी आदि के संवादात्मक आख्यान उपलब्ध होते हैं। आगे चलकर हमारे विभिन्न ब्राह्मणों, उपनिषदों, महाकाव्यों, पुराणों आदि में कहानियों का अगाध भंडार मिलता है। संस्कृत में रचित पंच-तंत्र का अनुवाद छठी शती में इराण के शाह खुशरो नौशेखाँ ने पहलवी भाषा में करवाया। उसके उपरांत सीरीयन भाषा, अरबी, लैटिन, ग्रीक, जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश और अंग्रेजी में इसके अनुवाद किये गये। भारतीय कथा-साहित्य के कुछ अन्य ग्रंथों का भी

पाश्चात्य देशों में पर्याप्त प्रचार हुआ है। इस प्रकार विश्व के कथा साहित्य के विकास में भारतीय कथा-साहित्य ने पर्याप्त योगदान दिया है।

आधुनिक कहानी साहित्य का आरंभ युरोप में विभिन्न लेखक समूहों द्वारा १९ वी शती में हुआ। जर्मनी के ई. टी. डब्ल्यू हौमफैन पो, चेखव ओ. हेनरी आदि के द्वारा विकसित कहानी का स्वरूप अंग्रेजी और बंगला के माध्यम से 20 वी शती के आरंभ में हिंदी में प्रविष्ट हुआ। वास्तव में प्राचीन कहानी में अलौकिकता, अस्वाभाविकता, आदर्शवादिता एवं काल्पनिकता के प्रति अधिक आग्रह था। प्राचीन कहानियाँ किसी राजा-रानी के रोमांटिक वृत्तों को उद्घाटीत करती थी, आधुनिक कहानियाँ आंतरिक अनुभूतियों सामान्य जन-जीवन एवं स्वाभाविक स्थितियों का चित्रांकन करती हैं। इन कहानियों में यथार्थवादिता, स्वाभाविकता एवं विचारात्मकता का उन्मेष दृष्टिगोचर होता है।

१) हिंदी कहानी का प्रारंभिक युग : 1930 ई. तक :

हिंदी कहानी साहित्य में इंशा अल्ला खाँ रचित 'रानी केतकी की कहानी' (1903) कहानी शीर्षक से प्रकाशित होने वाली प्रथम रचना मानी जाती है। इसके बाद राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद कृत 'राजा भोज का सपना' और भारतेन्दु कृत 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' को भी उल्लेखित किया जा सकता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक कहानियों का प्रारंभ 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन-काल से स्वीकार किया है। प्रारंभिक कहानियों का विवरण उन्होंने इस प्रकार दिया है- किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'इन्दुमती' (1903 ई.), 'गुलबहार' (1902), रामचंद्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903), गिरिराजदत्त वाजपेयी कृत 'पंडित और पंडितानी' (1903), बंग महिला कृत 'दुलाई वाली' (1907) इस प्रकार 'सरस्वती' में प्रकाशित इन सभी कहानियों में किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' प्रथम कहानी और लेखक प्रथम कहानीकार सिद्ध होता है।

सन् 1909 ई. से प्रकाशित 'इन्दू' पत्रिका के माध्यम से हिंदी कहानी के क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इसमें जयशंकर प्रसाद तथा अन्य अनेक कहानीकारों की रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं । मुंशी प्रेमचंद, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', सुदर्शन, पाण्डेय बेचेन शर्मा 'उग्र' आचार्य चतुरसेन शास्त्री आदि कहानीकारों ने हिंदी कहानी के प्रारंभिक युग में बडा योगदान दिया है।

जयशंकर प्रसाद :

जयशंकर प्रसाद जी की प्रथम कहानी 'ग्राम' सन् 1909 ई में प्रकाशित हुई थी। 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आँधी', 'इन्द्रजाल' आदि इनके कहानी संग्रह हैं। इन कहानियों में प्रसाद का कवि तथा नाटककार दोनों रूप सम्मिलित होते हैं। इनकी आरंभिक कहानियों पर बंगला का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इनकी कहानियाँ रहस्यवादी, अस्पष्टता एवं दार्शनिक जटिलता के कारण पर्याप्त मनोरंजन की न होकर विद्वानों के द्वारा चिंतनीय हो गयी है।

मुंशी प्रेमचंद :

मुंशी प्रेमचंद द्वारा लिखी गयी लगभग तीन सौ से अधिक कहानियाँ 'मानसरोवर' के आठ भागों में संकलित हैं। 'सप्तसरोज', 'नव-निधि', 'प्रेम-पचीसी', 'प्रेम-पूर्णिमा', 'प्रेम-द्वादशी', 'प्रेम-तीर्थ', 'सप्त-सुमन', आदि उनके कुछ स्फूट संग्रह हैं। उनकी प्रथम हिंदी कहानी 'पंच-परमेश्वर' सन् 1916 में प्रकाशित हुई थी। इसके पहले वे उर्दू में लिखते थे। उनका प्रसिद्ध कहानी संग्रह 'सोजे-वतन' सन 1907 में प्रकाशित हुआ है। राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत होने के कारण यह संग्रह सरकार द्वारा जप्त कर लिया गया था। 'पंच-परमेश्वर' के अतिरिक्त इनकी हिंदी कहानियों में 'आत्माराम', 'बडे घर की बेटी', 'शतरंज के खिलाडी', 'वज्रपात', 'रानी सारंधा', 'ईदगाह', 'पूस की रात', 'सुजान भगत', 'कफन', 'पं. मोटिराम' आदि विशेष प्रसिद्ध हैं।

प्रेमचंद जी अति सामान्य बात को अत्यंत मर्मस्पर्शी और विशिष्ट रूप में प्रस्तुत कर देने की कला से सिद्धहस्त थे। इनकी कहानियाँ रहस्यात्मकता, दार्शनिकता एवं जटिलता से बोझिल नहीं है। प्रेमचंद जी ने सर्व साधारण के जीवन की सामान्य परिस्तितियों एवं मनोवृत्तियों तथा समस्याओं को चित्रित करने का प्रयास किया है। वे इतिवृत्तात्मक, घटनाओं के माध्यम से पारिवारिक एवं सामाजिक आदर्शों को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास करते रहें। 'सौत', 'नमक का दरोगा' आदि कहानियाँ इसी तथ्य से संबंधित हैं। 'पूस की रात', 'कफन' आदि से सामाजिक विषमता की त्रासदी का साक्षात्कार होता है। इनकी सभी कहानियों में किसी न किसी विचार या समस्या का अंकन हुआ है।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी :

इन्होंने केवल तीन कहानियाँ लिखी और इन्हीं के बल पर हिंदी कहानी साहित्य में अपूर्व ख्याति अर्जित की। ये प्रेमचंद तथा प्रसाद के समकालीन कहानीकार हैं। इनकी प्रथम कहानी 'उसने कहा था' सन् 1915 में प्रकाशित हुई थी। कहानी का अंत गंभीर एवं शोकपूर्ण होते हुए भी हास्य एवं व्यंग्य से परिपूर्ण है। इनकी दूसरी कहानी 'सुखमय जीवन' भी रोचक है। 'बुद्धू का काँटा' इनकी तीसरी कहानी है।

उर्दू से हिंदी कहानी क्षेत्र में पदार्पण करनेवाले विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' (1891-1946) भी प्रेमचंद परंपरा के कहानीकार थे।

सुदर्शन :

घटनाप्रधान कहानी के सृजन में सुदर्शन का स्थान महत्त्वपूर्ण है। उनकी प्रथम और प्रसिद्ध कहानी 'हार की जीत' सन् 1920 में सरस्वती में प्रकाशित हुई। इनके कहानी संग्रहों में 'सुदर्शन-सुधा', 'सुदर्शन-सुमन', 'तीर्थ-यात्रा', 'पुष्पलता', 'गल्प-मंजरी', 'सुप्रभात', 'चार कहानियाँ', 'परिवर्तन', 'पनघट' आदि उल्लेखनीय है। इन्होंने तत्कालीन जीवन की ज्वलंत समस्याओं को अपनी कहानी का विषय बनाया है।

पांडेय बेचन शर्मा : 'उग्र'

उग्र ने हिंदी कहानी क्षेत्र में सन् 1922 में प्रवेश किया। उन्होंने अपनी कहानियों में राष्ट्र-समाज विरोधी प्रवृत्तियों के प्रति गहरा विरोध व्यक्त किया है। 'दोजख की आग', 'चिनगारियाँ', 'बलात्कार', 'सनकी अमीर' आदि इनकी कहानियाँ हैं।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री :

इनकी कहानियों में सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। किंतु उनकी शैली में उग्रजी की जैसी उग्रता नहीं है। यथार्थवादिता भी उनमें बहुत कम नजर आती है। इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ 'दुखवा मैं कासे कहूँ' मोरी सजनी', 'दे खुदा की राह पर', 'भिक्षुराज', 'ककडी की कीमत' आदि में संग्रहीत है।

ज्वालादत्त शर्मा :

शर्मा जी की कहानियाँ संख्या में कम किंतु कहानी साहित्य में बहुचर्चित रही हैं। उनके 'भाग्यचक्र', 'अनाथ बालिका' आदि कहानी संग्रह महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं।

गोविंद वल्लभ पंत, सियारामशरण गुप्त, राधिकारमण प्रसाद सिंह, रामकृष्णदास, विनोदशंकर व्यास, निराला, कृष्णकांत मालवीय ने भी अपनी विभिन्न कहानियों के द्वारा हिंदी कहानी के इस प्रारंभिक युग को समृद्ध करने का प्रयास किया है।

इस युग की कहानियों में सामाजिक समस्याओं को ही प्रमुख स्थान मिला है। एक ओर प्रेमचंद, विश्वंभरनाथ शर्मा, चण्डीप्रसाद, हृदयेश, सियाशरण गुप्त आदि कहानीकारों ने आदर्शवादी दृष्टिकोन के आधार पर समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, वहीं पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, चतुरसेनशास्त्री, गोविंदवल्लभ पंत आदि ने यथार्थवादी दृष्टि अपनायी है। प्रसाद जी ने अन्तर्द्वद्व प्रधान रोमांटिक कहानियों की परंपरा का सूत्रपात किया किंतु वह विकसित न हो सकी। अतः इस युग को सामाजिक कहानियों का युग कहा जा सकता है।

२) हिंदी कहानी परवर्ती युग : 1930 से आज तक :

सन् 1930 तक आते-आते हिंदी कहानी के क्षेत्र में आदर्शवादिता के स्थान पर यथार्थवादिता, सामाजिकता के स्थान पर वैयक्तिकता तथा राजनीति और धर्म के स्थान पर मनोविश्लेषण की प्रतिष्ठा का प्रयास दृष्टिगोचर होने लगा। वहीं पूर्ववर्ती परंपराओं के साथ अनेक नवीन परंपराओं का उद्भव एवं विकास होने लगा।

अ) मनोविश्लेषणवादी परंपरा :

इस परंपरा में प्रमुखतः जैनेंद्र कुमार, भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, अज्ञेय, इलाचन्द्र

जोशी आदि की कहानियाँ प्रमुखता से आती हैं। जैनेंद्र जी के कहानी संग्रहों में 'वातायन', 'स्पर्धा', 'फाँसी', 'पाजेब', 'जय-संधि', 'एक रात', 'दो चिडियाँ' आदि चर्चित रही हैं। जैनेंद्र जी ने स्थूल समस्याओं के स्थान पर सूक्ष्म मनोविज्ञान का चित्रण किया है। उनका दृष्टिकोन समाजवादी की अपेक्षा व्यक्तिवादी, भौतिकवादी की अपेक्षा अध्यात्मवादी अधिक है। घटनाओं की अपेक्षा उन्होंने चरित्र-चित्रण को ज्यादा महत्त्व दिया है। भगवती प्रसाद वाजपेयी जी ने अपनी कहानियों में जैनेंद्र की दृष्टि को आगे बढाया है। उनकी रचनाओं में 'हिलोर', 'पुष्करिणी', 'खाली बोतल' आदि चर्चित रही हैं। उनकी कहानियों में मार्मिकता और रोचकता के साथ विश्लेषण की गंभीरता भी दिखाई देती है।

अज्ञेय एवं इलाचंद्र जोशी आदि ने भी अपनी कहानियों में मनोविश्लेषणवाद का अंकन किया है। इस परंपरा की कहानियों में मानव मन की विभिन्न प्रवृत्तियों, गुत्थियों एवं कुंठाओं का विश्लेषण आधुनिक मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण के आधार पर हुआ हैं।

ब) सामाजिक परंपरा :

हिंदी के विभिन्न कहानीकारों ने आधुनिक समाज की विभिन्न परिस्थितियों एवं समस्याओं का उद्‌घाटन यथार्थपरक दृष्टिकोन से किया है। चंद्रगुप्त विद्यालंकार ने अपनी कहानियों में राष्ट्रीय एवं सामाजिक समस्याओं का चित्रण अत्यंत कलात्मक ढंग से किया है। 'चंद्रकला', 'भय का राज्य', 'अमावस' आदि उल्लेखनीय रचनाएँ उनकी हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क ने आधुनिक समाज की कुण्ठाओं एवं कुप्रवृत्तियों का चित्रण व्यंग्यात्मक शैली में किया है। इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं- 'निशानियाँ', 'दो धारा' आदि। इन्होंने मध्यवर्गीय समाज की ज्वलंत समस्याओं को संवेदनात्मक स्तर पर उद्‌घाटित करने में पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त की है।

रामप्रसाद जी की अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हुई है। जिसमें आधुनिक सामाजिक अनाचार एवं विकृतियों का दर्शन होता है। 'अधूरा चित्र', 'सडक पर', 'नया रास्ता', 'बया का घोंसला' आदि इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं। डॉ. सत्यप्रकाश सगर ने भी इन्हीं विषयों को 'नया मार्ग', 'कितना उँचा कितना नीचा', 'मुझे टिकट दो' आदि में उजागर किया है।

कमलादेवी चौधरी, उषादेवी मित्रा, होमवती देवी, उमा नेहरू, सुभद्राकुमारी चव्हाण, रजनी पनिक्कर आदि महिला कहानी लेखिकाओं ने भी दांपत्य एवं पारिवारिक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का एवं भारतीय नारी की सामाजिक स्थिति का अंकन किया है।

क) प्रगतिवादी परंपरा :

इस परंपर में मुख्यतः यशपाल, ख्वाजा अहमद अब्बास, अमृतराय, रंगेय राघव, श्री कृष्णदास आदि कहानिकारों ने आधुनिक समाज की विषमताओं का उद्‌घाटन किया है। यशपाल की साम्यवादी दृष्टि यहाँ उनकी कहानियों से झलकती है। 'पिंजरे की उडान', 'वो दुनिया', 'तर्क का तूफान', 'फूलों

का कुर्ता' आदि कहानियों के जरिए यशपाल ने शोषकों एवं शोषितों की जीवन गाथा उद्घाटित की है।

ड) ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परंपरा :

वृन्दावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, भगवतशरण उपाध्याय ने अपनी विभिन्न कहानियों में अतीत की घटनाओं, परिस्थितियों एवं वातावरण का यथार्थ चित्रण किया है।

इ) यौनवादी परंपरा :

हिंदी के अनेक कहानीकारों ने अपनी कहानियों में काम वासना, सौंदर्यलिप्सा एवं प्रणय आदि का स्वच्छंद रूप में चित्रण किया है। इनमें आरसी प्रसाद सिंह (टेस् का फूल), व्यथित हृदय (सुहागररात की कहानियाँ) नरेश (गो.धूली), मधुसूदन (उजाले से पहले), ब्रजेन्द्रनाथ गौड (बिखरी कलियाँ) आदि ने अपनी रचनाओं में प्रणय प्रसंग, यौन समस्याओं का अंकन किया है।

ई) हास्य रस की परंपरा :

कांतानाथ पांडेय (मौसेरे भाई), राधाकृष्ण (रामलीला), शिक्षार्थी (नई कला), बनारसी (गरम चाय) आदि अनेक कहानीकारों ने रोचक व्यंग्यात्मक कहानी लिखी हैं । इसका लक्ष्य सामान्यतः मनोरंजन रहा है। किंतु कही कही आधुनिक जीवन की आलोचना भी नजर आती है।

३) नयी कहानी :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिंदी कहानी के क्षेत्र में शैली और शिल्प से संबंधित अनेक परिवर्तन हुए हैं। सन् 1950 के बाद एक नव प्रवर्तित आंदोलन को 'नई कहानी' आंदोलन की संज्ञा दी गयी। सर्व प्रथम दुष्यंत कुमार ने इसका उल्लेख किया।

नयी कहानी के प्रवर्तक के रूप में राजेंद्र यादव, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, मोहन राकेश आदि का उल्लेख किया जाता है। उन्होंने उद्घोषित किया कि नयी कहानी नये भाव बोध पर आधारित जीवन की यथार्थता चित्रित करती है। नयी कहानी व्यक्तिवाद, यथार्थवाद, अनुभूतिवाद एवं आधुनिकतावाद की प्रतिष्ठा करती हुई जीवन एवं समाज के व्यापक परिवेश से कट जाती है। इसमें वैयक्तिक काम चेतना, अहं और यौनाचार की प्रमुखता होती है। नयी कहानी ने अपने विषयों को आधुनिक उच्च मध्यवर्ग से संबंध किया है।

नयी कहानीकारों में मोहन राकेश है जिन्होंने अनेक कहानियों में नगर जीवन की कृत्रिमता, नारी-पुरुष के आडंबरपूर्ण संबंध तथा दांपत्य जीवन के अनेक चित्र खींचे हैं। उनके 'इन्सान के खण्डर', 'नये बादल', 'जानवर और जानवर', 'एक और जिंदगी' आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हैं । राजेंद्र यादव ने भी 'देवताओं की मूर्तियाँ', 'अभिमन्यु की आत्महत्या', 'किनारे से किनारे तक', 'प्रतीक्षा' आदि

कहानी संग्रहों से उन्हीं विचारों का उद्‌घाटन किया है।

धर्मवीर भारती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा आदि कहानीकारों ने दांपत्य जीवन की अनेक समस्याओं, खोंखले शहरी जीवन की कृत्रिमता, घूटन, संत्रास पर प्रकाश डाला है।

सचेतन कहानी :

सचेतन कहानी का प्रवर्तन डॉ. महीपसिंह ने किया है। 'संचेतना' पत्रिका के माध्यम से यह इस आंदोलन को गति एवं शक्ति दी गई। सचेतन कहानी पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन की समस्याओं को भी चित्रित करती है क इससे जुडे हुए कहानीकारों में मनोहर चव्हाण, रामकुमार भगर, सुखवीर, बलराज पंडित, कुलभूषण, वेदराही मेहरूनिसा परवेज आदि प्रमुख हैं।

हिंदी कहानी जगत में सातवी-आठवी दशाब्दी में सहज कहानी, समकालीन कहानी, 'अकहानी', 'समांतर कहानी', 'सक्रिय कहानी' आदि उल्लेखनीय आंदोलनों का प्रवर्तन हुआ।

अमृतराय ने 'सहज कहानी' के माध्यम से व्यापक जीवन दृष्टि एवं सामाजिकता से अनुप्राणित दृष्टिकोन को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। जगदीश चतुर्वेदी, दूधनाथ सिंह, गंगा प्रसाद विमल आदि ने 'अकहानी' आंदोलन को उन्नत करने का प्रयास किया। समांतर कहानी का विकास 1971 ई. सन् में कमलेश्वर जी ने करने का प्रयास किया।

इस प्रकार हिंदी कहानी विधा की विकास परंपरा समृद्ध एवं प्रवाहमय रही हैं।

3.3.4 हिंदी आत्मकथा साहित्य : उद्‌भव और विकास :

हिंदी साहित्य में गद्य लेखन की विभिन्न विधाओं के पश्चात् ही आत्मकथा इस जीवनीपरक विधा का जन्म हुआ है। यह विधा साहित्य की अन्य सभी विधाओं से अधिक विश्वसनीय अर्थात सत्यश्रित मानी जाती है।

'आत्मकथा' विधा का उद्‌भव कब हुआ होगा इस संबंध में विद्वानों में मतभेद दिखाई देता है। कई विद्‌वानों का मानना है कि यह विधा भारतीय वाङ्‌मय में समाहित रूप में रही है। भारतीय प्राचीन वाङ्‌मय वैदिकसाहित्य में इस विधा की टिम-टिमाती हुई दीपरेखा परिलक्षित होती है। इस विधा के विकास क्रम को स्पष्ट करते हुए पालि साहित्य में पाये गए भिक्षुणियों के वर्णन को वैयक्तिक मानते हुए डॉ. कमलापति उपाध्याय इसे आत्मकथा विधा की कोटी में रखने का प्रयास करते हैं। आत्मकथा साहित्य का परिष्कृत रूप अपभ्रंश साहित्य में मिलता है। कवियों द्वारा ग्रंथ के प्रारंभ में आत्मपरिचय प्रस्तुत किया है। पासणाह चरित, बाहुबली चरित के रचेताओं ने अपना आत्मपरिचय दिया है।

जीवनी परख विधा का सूत्रपात आदिकाल के रासो साहित्य चरित्र काव्य के रूप में भी दृष्टिगोचर

होता है। इन चरितकाव्यों की प्रामाणिकता संदिग्ध होने से इस विधा की शुरुआत यहाँ से मानना तर्क संगत नहीं है।

भक्तिकाल में संत कवि गण अपने चरित के साथ अनुभूति को, जीवनसंघर्ष को तथा समाज की स्थिति के बारे में स्पष्ट रूप से कहते दिखाई देते हैं। संतों ने अपने जन्म, जाति, व्यवसाय, परिवार का उल्लेख अपने काव्य में किया है। साथ ही भक्तिपद्धति, दुःख पीडा तथा आत्मोन्नति को व्याख्यायित किया है। इन सब बातों का परिचय हमें उनकी काव्यकृतियों के माध्यम से हो जाता है। तात्पर्य उनके जीवन विषयक जानकारी या झाँकियाँ ही आत्मकथा का बीजरूप मानी जा सकती है।

हिंदी आत्मकथा इस विधा के उद्‌भव से पूर्व ही अन्य भारतीय भाषा में जीवनी परख लेखन की शुरआत हुई थी। बाबर द्‌वारा डायरी के रूप में लिखी आत्मकथा 'बाबरनामा' को हरिवंशराय बच्चन जी विधिवत आत्मकथा मानते हैं। वे मानते हैं कि भारतीय साहित्य में आत्मकथा विधा का विकास पाश्चात्य साहित्य चेतना का प्रभाव एवं अनुकरण ही कहा जा सकता है।

18 वी सदी में उर्दू के शायर मीरा तकी मीर ने अपनी आत्मकथा 'जिक्रेमीर' लिखी। इसका अनुवाद हिंदी में हुआ है। रीतिकाल के कवि बनारसीदास जैन द्‌वारा लिखी आत्मकथा 'अर्धकथानक' को हिंदी की प्रथम आत्मकथा माना गया है। यह पद्य में लिखी गई है। इसकी भाषा ब्रज है। लेखक ने इसमें अपने 55 वर्ष की घटनाओं को दिया है। इसका लेखन काल सन् 1641 ई. है।

हिंदी में आत्मकथा लेखन की शुरुआत के बाद विभिन्न क्षेत्र से जुडे अनेक व्यक्तियों ने आत्मकथाएँ लिखी। स्वतंत्र पूर्व कालखंड में देशभक्तों, स्वतंत्रता सेनानियों, समाज सुधारकों, साहित्यिकों, धार्मिक क्षेत्र से जुडे महानुभावों, पत्रकारों, कलाकारों आदि के द्‌वारा आत्मकथा लेखन समृद्ध हुआ। इस विधा के अंतर्गत हुए लेखन का स्वरूप भिन्न-भिन्न रहा है। कुछ लेखकों द्‌वारा संक्षिप्त आत्मकथाएँ लिखी गई तो कुछ लेखकोंने विस्तार से आत्मकथाएँ लिखी हैं। अन्य भाषा में लिखी आत्मकथाओं का हिंदी में अनुवाद भी हुआ है। आठवें दशक में प्रथमतः मराठी में दलित आत्मकथाएँ लिखना आरंभ हो गया। उसका हिंदी आत्मकथा साहित्य पर गहरा प्रभाव हुआ है।

हिंदी आत्मकथा की विकास यात्रा को निम्न कालखंडों में विभाजित किया जा सकता है।

1) आत्मकथा का आरंभिक दौर : (सन् 1850 - 1947)

2) आत्मकथा विकास यात्रा –उत्कर्ष युग : (1947 से अब तक)

इन दोनों कालखंडों के अध्ययन से आत्मकथा विधा का संपूर्ण विकास क्रम पर प्रकाश डाला जा सकता है –

1) आत्मकथा का आरंभिक दौर : (सन् 1850 - 1947)

अ) स्वतंत्रतापूर्व कालखंड की आत्मकथाएँ :

19 वी सदी में देशभक्तों तथा आर्यसमाजी संन्यासियों द्वारा लिखी आत्मकथाएँ अधिक प्राप्त होती हैं। इनमें से कई लेखकोंने स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु संघर्ष किया है। परिणामतः अंग्रेज सरकार ने उन्हें जेल में रखा। अपने कारावास के दिनों में इन देशभक्तों ने अपनी आत्मकथाएँ संक्षिप्त रूप में लिखी। आत्मकथा लेखन के इस दौर में अनेक आत्मकथाएँ विषय, आशय, शैली तथा आत्मकथा की दृष्टि से स्तरीय बन पडी है। इन तथ्यों को दृष्टि में रखकर आत्मकथाओं का विकासक्रम प्रस्तुत किया है।

महर्षि दयानंद सरस्वती :

सन् 1875 ई. में महर्षि दयानंद की आत्मकथा प्रकाशित हुई। स्वयं दयानंद सरस्वती ने पूजना प्रवचन में अपने जन्म से लेकर प्रवचन के दिन तक की घटनाओं का उल्लेख किया है। इसे उनके द्वारा 'स्वयं' कथित आत्मकथा कहा जा सकता है।

अम्बिका दत्त व्यास :

भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध लेखक व्यास ने अपने जीवन के 18 वर्षों (सन् 1878 से 1916 इ. तक) का प्रकाशन उसी कालखंड में किया था।

सत्यानंद अग्निहोत्री :

इस काल में सत्यानंद अग्निहोत्री का 'मुझ में देव जीवन का विकास' का प्रकाशन सन् 1909 तथा द्वितीय खंड का 1918 ई. में हुआ। इस आत्मकथा में स्वयं को चमत्कारिक एवं देवतातुल्य समझने का अहम् भाव होने से इसे स्तरीय नहीं माना गया।

भाई परमानंद :

सन् 1921 ई. में परमानंद की 'आप बीती' प्रकाशित हुई। इस आत्मकथा का शीर्षक है – 'काले पानी की, कारावास कहानी' यह सरल, सरस, रोचक, प्रवाहशील, प्रभावपूर्ण एवं ऐतिहासिक भाषा शैली में लिखी आत्मकथा है।

भवानी दयाल संन्यासी :

सन् 1921 ई. में 25 देशभक्तों की जेलकथाएँ प्रकाश में आई। 'भारतीय देशभक्तों की कारावास कहानी' उनमें भवानी दयाल संन्यासी तथा महात्मा गांधी की जेलकथाओं को सर्वप्रथम श्रेय दिया जाता है।

स्वामी श्रद्धानंद :

सन् 1924 ई. में स्वामी श्रद्धानंद की आत्मकथा 'कल्याण मार्ग का पथिक' ज्ञान मंडल कार्यालय काशी से प्रकाशित हुई। इसमें लेखक ने अपने जन्म (सं. 1913) सन् १८५६ से (सं. 1992) सन् 1949 ई. तक की घटनाओं का वर्णन किया है। उन्होंने आत्मकथा में अपने पतन और उत्थान की घटनाओं को निःसंकोच प्रस्तुत किया है।

लाला लजपतराय :

सन् 1924-25 ई. में जिनको पंजाब का केशरी कहा गया उनकी आत्मकथा धारावाहिक रूप में छपी। 1932 ई. में पंडित भीमसेन विद्यालंकार ने इस धारावाहिक आत्मकथा को पुस्तकाकार रूप प्रदान करते हुए। 'लाला लजपतराय की' 'सचित्र आत्मकथा' का प्रथम भाग नवयुग ग्रंथ माला लाहौर से प्रकाशित किया।

रामप्रसाद बिस्मिल :

सन् 1928 ई. में श्री गणेश विद्यार्थी द्वारा सर्वप्रथम 'काकोरी के शहीद' एक अंश के रूप में प्रकाशित हुई। अंग्रेज सरकार ने इसे जब्त कर लिया था। उन्होंने जेल की काल कोठरी में रहकर फाँसी के एक दिन पूर्व तक बहुत संयम से आत्मकथा लिखी। अपनी अंतिम घडियों में जीवन का रहस्योद्घाटन एवं पुनःपरीक्षण, कार्यों का विश्लेषण, मनोदशा का चित्रण, देश की स्थिति का समग्र विवेचन, भावी पीढियों का मार्गदर्शन इनमें उन्होंने किया है।

पृथ्वीसिंह आजाद :

'क्रांतिपथ का पथिक' शीर्षक से उन्होंने अपनी आत्मकथा लिखी। वह भी जेल में। इसमें बचपन से लेकर 1964 तक की कहानी दर्ज है।

आ) स्वतंत्रतापूर्व कालखंड में लिखी लघु आत्मकथाएँ :

आत्मकथा के प्रारंभ में भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, श्रीधर पाठक, राधाचरण गोस्वामी, जगन्नाथदास, रत्नाकर श्रीनिवास शास्त्री, बालमुकुंद गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि विख्यात लेखकों ने आत्मकथाएँ लिखी। पर आत्मकथा के संक्षिप्त या लघु स्वरूप के कारण पाठकों का समाधान नहीं हुआ। भारतेन्दु ने (1876 ई.) में कवि वचन सुधा में 'एक कहानी, एक आप बीती कुछ जगबीती' लेख के रूप में लिखी, जो दो पृष्ठ की थी। इसे विद्वान खींच तानकर आत्मकथा सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। इन्हीं के काल में प्रतापनारायण मिश्र केवल आत्मकथा लिखना चाहते थे पर भूमिका से आगे नहीं लिख पाए।

बालमुकुंद गुप्त ने सन् 1913 'आत्मकथात्मक निबंध' शीर्षक से गद्य शैली में संक्षिप्त आत्मकथा लिखी। दूसरे सत्यानंद अग्निहोत्री ने सन् 1921 ई. में 'मेरे छोटे भाई के प्रति मेरी सेवाएँ' शीर्षक से आत्मकथा लिखी।

सन् 1932 ई. में हंस का आत्मकथांक मुंशी प्रेमचंद के प्रयास से प्रकाशित हुआ। जनवरी-फरवरी संयुक्त अंक में 50 से ऊपर रचनाएँ थी। यद्यपि इस में प्रकाशित आत्मकथाएँ अत्यंत संक्षिप्त, लघु और प्रायः निबंधात्मक थी।

इस काल में लेखकों ने अपने जीवन संबंधी परिचयात्मक लेखन किया था, जो तत्कालीन पत्रिका में छपा। 'विशाल भारत' पत्रिका में जगन्नाथदास प्रसाद चतुर्वेदी, वृंदावनलाल वर्मा, तथा श्रीनिवास शास्त्री के संस्मरण थे। सन् 1927 ई. में महावीर प्रसाद द्विवेदी की आत्मकथा 'मेरी जीवन रेखा' पाँच पृष्ठों की प्रकाशित हुई।

इस प्रकार के प्रयासों से आत्मकथा लेखन की प्रेरणा मिलती रही।

इ) भारतीय लेखकों की अनूदित आत्मकथाएँ :

भारतीय लेखकों की अनूदित कृतियों में सर्वश्रेष्ठ आत्मकथाएँ प्रारंभिक काल में प्रकाशित हुई। जिसमें महात्मा गांधी की 'सत्य के प्रयोग' हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा अनूदित कृति सन् 1927 में प्रकाशित हुई।

इस युग की दूसरी श्रेष्ठ कृति- रवींद्रनाथ ठाकुर की 'जीवन स्मृति' है। सुरजमल जैन ने इसका अनुवाद करके सन् 1930 में प्रकाशित करवाया।

पं. जवाहरलाल नेहरू की मूलतः अंग्रेजी में लिखी आत्मकथा 'माई स्टोरी' का अनुवाद हरिभाऊ उपाध्याय ने कृष्णदत्त पालीवाल तथा वियोगी हरि आदि के सहयोग से किया।

प्रसिद्ध क्रांतिकारी शचींद्र सान्याल की आत्मकथा बंगला भाषा में प्रकाशित हुई थी, जिसका 'हिंदी अनुवाद', 'बंदी जीवन' 1938 ई. में तीन भागों में हुआ। आत्माराम अँड सन्स, दिल्ली से इसका प्रकाशन हुआ। इसके अलावा 1947 ई. में कृष्णा हठी सिंह की आत्मकथा का अनुवाद मुहम्मद हैरिस ने 'कोई शिकायत नहीं' शीर्षक से कर दिया।

ई) स्वातंत्र्यपूर्व कालखंड की मौलिक आत्मकथाएँ :

प्रेमचंद द्वारा 'हंस' आत्मकथांक का संपादन एवं आत्मकथा लेखन की अभिरूचि ने आत्मकथा के लघु रूप को बृहदाकार की ओर प्रवृत्त किया। अर्थात लघु से पूर्णत्व की ओर आत्मकथा लेखकों की प्रवृत्ति गतिमान रही। जिससे निम्न मौलिक आत्मकथाओं का लेखन संभव हुआ।

डॉ. श्यामसुंदरदास की 'मेरी आत्म कहानी ' शीर्षक से सन 1941 में प्रकाशित हुई। बाबू गुलाबराय की आत्मकथा 'मेरी असफलताएँ' शीर्षक से विश्रृंखल आत्मकथा के रूप में सन् १९४२ में प्रकाशित हुई। महापंडित राहुल सांकृत्यायन की आत्मकथा 'मेरी जीवन यात्रा' पाँच खंडों में प्रकाशित हुई।

डॉ. राजेंद्र यादव की आत्मकथा का प्रकाशन सन् 1947 में हुआ। इस प्रकार स्वतंत्रतापूर्व आत्मकथा लेखन की समृद्ध परंपरा रही है।

आत्मकथा विकास यात्रा : उत्कर्ष युग (सन् 1947 से अब तक) :

अ) स्वातंत्र्योत्तर कालखंड की आत्मकथाएँ :

स्वातंत्र्योत्तर युग में आत्मकथा लेखन प्रचुर मात्रा में हुआ। इस क्षेत्र में शैलीगत भिन्नता, विविधता, व्यापकता, विश्लेषणात्मकता इस युग में दिखाई देती है। इस युग में जनसाधारण के आत्मकथा लेखन में पदार्पण से आत्मकथा की बाढ सी आ गयी। तथा पत्र पत्रिकाओं में लघु-आत्मकथाएँ, अनूदित आत्मकथाओं की प्रकाशित संख्या में बढोत्तरी हुई।

निम्न आत्मकथाओं का उल्लेख मौलिक रचना के रूप में किया जाता रहा है।

वियोग हरि की 'मेरी जीवन प्रवाह' आत्मकथा 1948 ई. प्रकाशित हुई। यशपाल जी की आत्मकथा तीन खंडो में प्रकाशित हुई जिसका नाम था 'सिंहावलोकन'। भगवानदास केला जी ख्यातनाम समीक्षक और साहित्यिक है। इनकी खण्ड आत्मकथा 'मेरा साहित्यिक जीवन' 1943 ई. में प्रकाशित हुई। इसी वर्ष किशोरीदास वाजपेयी की आत्मकथा 'साहित्यिक जीवन के अनुभव' प्रकाशित हुई।

जानकीदेवी बजाज :

'मेरी जीवन यात्रा' की लेखिका बजाज अशिक्षित महिला थी। रिषभदेव रांका ने इस कृति को लिपिबद्ध किया। सन् 1956 ई. में. इसका प्रकाशन हुआ।

सेठ गोविंददास :

इनकी आत्मकथा तीन खंडों में है। प्रयत्न, प्रत्यशा, नियताप्ति उपशीर्षकों सहित 'आत्मनिरीक्षण' शीर्षक से 1957 ई. में प्रकाशित हुई। 1963 में उनकी दूसरी आत्मकथा 'उथल-पुथल का युग' प्रकाशित हुई ।

देवराज उपाध्याय :

उपाध्याय की आत्मकथा 'बचपन के वे दो दिन' शीर्षक से सन् 1958 में प्रकाशित हुई। 12 वर्ष पश्चात् सन १९७० में अन्य खंड आत्मकथा 'यौवन के द्वारपर' प्राप्त हुई।

गुरू गोविंद सिंह :

गुरू गोविंदसिंह कृत 'विचित्र नाटक' मूलतः ब्रज भाषा में सन् 1698 में लिखी गई थी। सन् 1961 ई. में श्रीमती लाजवंती रामकृष्ण के प्रयास से हिंदी को एक अमूल्य आत्मकथा की उपलब्धि हुई।

म. भगवानदीन :

म. भगवानदीन की संक्षिप्त और विश्रृंखल आत्मकथा 'जीवन झाँकी' सन् 1962 ई. में प्रकाशित हुई। सन् 1963 ई. में. सन्तराम बी.ए. की आत्मकथा 'मेरे जीवन के अनुभव' का प्रकाशन हुआ। सन् 1967 ई. में प. गिरधर शर्मा की 'आत्मकथा और संस्मरण' की पुस्तक प्रकाशित हुई। भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र की 'जीवन के चार अध्याय' और एम्. विश्वेश्वरया की खंड आत्मकथा 'मेरे कामकाजी जीवन संस्मरण' शीर्षक से प्रकाशित हुई।

हरिवंशराय बच्चन :

हिंदी के अत्यधिक लोकप्रिय कवि हरिवंशराय बच्चन ने अपनी आत्मकथा चार खंडों में विभाजित कर लिखी है। सन् 1963 से 1963 ई. तक लिखित प्रथम खंड 'क्या भूँलू क्या याद करूँ' का प्रकाशन 1969 में द्वितीय खंड 'नीड का निर्माण फिर' सन् 1970 ई. में तृतीय खंड 'बसेरे से दूर' 1977 में और चतुर्थ खंड 'दसद्वार से सोपान तक' का प्रकाशन ई. सन् 1985 में हुआ।

सुमित्रानंदन पंत :

पंत की आत्मकथा का उल्लेख नहीं मिलता, परंतु उनकी रचना 'साठ वर्ष और रेखांकन' के माध्यम से इस कवि का जीवन उजागर हुआ है।

लघु आत्मकथाएँ :

इस युग में हिंदी की पत्र पत्रिकाओं में लघु आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई- बनारसीदास चतुर्वेदी- 'प्रयाग के वे दिन', विवेकी राय के 'संसद में बारह वर्ष', प्रतापचंद्र गंगोपाध्याय की 'स्मृतिकथा', आलोक कुमार की 'यादों की दोपहरी', मन्मथनाथ गुप्त की 'अपने ही बारे में', श्रीधर पाठक की 'आत्मकथा' नारायण उपाध्याय की 'मेरा बचपन' आदि लघु आत्मकथाएँ उल्लेखनीय हैं ।

इ) भारतीय लेखकों की अनूदित आत्मकथाएँ :

स्वातंत्र्योत्तर काल में अन्य भाषाओं में प्रकाशित श्रेष्ठ आत्मकथा साहित्य के अनुवाद हिंदी में तत्काल प्राप्त होते गये। कुछ आत्मकथाओं के हिंदी अनुवाद धारावाहिक रूप में पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित होते रहें।

सन् 1953 में काका कालेलकर की 'स्मरण यात्रा' का अनुवाद खुशालसिंह चौहान ने गुजराती से हिंदी में किया। विनायक दामोदर सावरकर की आत्मकथा 'कालापानी' शीर्षक से अनुवाद सन् 1956 में हुआ। स्त्री लेखिका-श्रीवास्तव सहगल की कृति 'प्रीजन एण्ड चॉकलेट केक' का अनुवाद मुकुंदीलाल ने 'मेरे बचपन की कहानी' शीर्षक से किया। इसके बाद वेद मेहता की आत्मकथा 'फेस टू फेस' का अनुवाद 'मेरा जीवन संघर्ष' से हुआ।

महाकवि मीर की आत्मकथा का हिंदी अनुवाद सन् 1961 ई. में अजमल अजमली ने 'जिक्रेमीर' शीर्षक से किया।

जहरूदीन मुहम्मद बाबर की फारसी में लिखी आत्मकथा का हिंदी में 'तुजक-ए-बाबरी' के शीर्षक अनुवाद हुआ।

अमृता प्रीतम के 'रसीदी टिकट' का अनुवाद बटूक शंकर भटनागर ने किया। जो सन् 1977 में प्रकाशित हुआ।

इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में मौलिक आत्मकथाओं के साथ अनूदित आत्मकथाओं ने इस विधा को समृद्ध बनाया।

ई) हिंदी साहित्यिकों की मौलिक आत्मकथाएँ :

सन् 1980 के बाद हिंदी साहित्य जगत में जिन महत्त्वपूर्ण आत्मकथाओं का उल्लेख आता है उनके अधिकतर साहित्यिकों की आत्मकथाएँ हैं।

कमलेश्वर ने अपनी आत्मकथा को तीन शीर्षकों के अंतर्गत लिखा - 'जो मैंने जिया', 'यादों के चिराग', 'जलती हुई नदी'।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के सहयोगी रहे नानकचंद सू ने 'जीवन के अंतिम वर्ष' शीर्षक से अपनी आत्मकथा लिखी। मोहन राकेश की 'समय सारथी', भगवती चरण वर्मा की 'ये सात और हम', बजगोपालदास अग्रवाल की 'नदिया से सागर तक' रेणु की 'ऋणजल-धनजल', 'श्रूत-अश्रूत पूर्व', 'समय की शिला पर' आदि।

भीष्म साहनी की 'आज के अतीत', कृष्णा सोबती की 'हम हशमत', राजेंद्र यादव की 'मुड मुड के देखता हूँ' आदि अनेक आत्मकथाओं से यह विधा उत्कर्ष तक पहुँच पाई है।

3) हिंदी दलित आत्मकथा : विकास यात्रा :

हिंदी साहित्य में दलित आत्मकथाओं की संख्या बहुत कम है। सर्वप्रथम हिंदी में भगवानदास की आत्मकथा 'मैं भंगी हूँ' 1981 में प्रकाशित हुई। किंतु साहित्य जगत् में इसकी चर्चा आत्मकथा से ज्यादा उपन्यास के रूप में हुई। इसके बाद लंबे समय की प्रतिक्षा के उपरांत बीसवी सदी के अंतिम

दशक में दलित लेखकों की आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई। उनमें मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने अपने पिंजरे' भाग-1, सन् 1995 में प्रकाशित हुई। तथा दूसरा भाग सन् 2000 में। सन् 1997 में ओमप्रकाश वाल्मिकी की आत्मकथा 'जूठन' का पहला संस्करण आया। इसके उपरांत कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' प्रकाशित हुई। सन् २००० में प्रकाशित सूरजपाल चौहान की आत्मकथा 'तिरस्कृत' दलितों की नारकीय वेदनाओं का जिवंत दस्तावेज है।

भूतपूर्व राज्यपाल ममता प्रसाद की आत्मकथा 'झोपडी से राजभवन' दलितों की व्यथा गाथा है। दलित आत्मकथाएँ दलित वर्ग की वेदना, शोषण, उत्पीडन, लैंगिक अत्याचार, छुआ-छूत भावना, गरीबी भूखमरी आदि का पर्दापाश करने में सफल रही है। दलित साहित्य को समृद्ध करने मे इस विधा का योगदान है।

अतः भारतीय साहित्य परंपरा में आत्मकथा विधा विकसशील अवस्था में रही है। आत्मकथा अपने विविध रूपों में हिंदी साहित्य जगत को सुशोभित करती रही है। इस कार्य में हिंदी की पहली आत्मकथा बनारसीदास जैन कृत 'अर्द्ध कथानक' से स्वातंत्र्यपूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर युग की मौलिक एवं अनूदित आत्मकथाओं ने इस विधा को समृद्ध किया है। आज दलित आत्मकथाएँ दलित विमर्श की केंद्रबिंदु बना रही है। निश्चित रूप में आत्मकथा विधा उत्कर्ष तक पहुँचने में सफलता हासिल कर पायेगी।

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न – 1) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रवेशद्वार.....युग को माना जाता है।

क) द्विवेदी ख) शुक्ल ग) प्रेमचंद घ) भारतेन्दु

2) 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक ..... थे।

क) भारतेन्दु हरिश्चंद्र ख) महावीर प्रसाद द्विवेदी

ग) हजारी प्रसाद द्विवेदी घ) प्रतापनारायण मिश्र

3) .....को हिंदी उपन्यासों का सम्राट कहा जाता है।

क) उपेन्द्रनाथ अश्क ख) प्रेमचंद ग) यशपाल घ) अज्ञेय

4) आ. शुक्ल.....उपन्यास को हिंदी का पहला उपन्यास मानते हैं।

क) परीक्षा-गुरू ख) भाग्यवती

ग) रानी केतकी की कहानीघ) पूर्ण प्रकाश

5) 'शेखर एक जीवनी' उपन्यास के लेखक.....है।

क) यशपाल ख) प्रेमचंद ग) अज्ञेय घ) जैनेंद्र

6) हिंदी के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार.....है।

क) जयशंकर प्रसाद ख) चतुरसेन शास्त्री

ग) वृंदावनलाल वर्मा ग) हजारीप्रसाद द्विवेदी

7) 'उसने कहा था'.....की प्रसिद्ध कहानी है।

क) प्रेमचंद ख) प्रसाद ग) गुलेरी घ) सुदर्शन

8) 'मान सरोवर' कहानी संग्रह के रचनाकार ..... है।

क) बेचन शर्मा ख) शुक्ल ग) भारतेन्दु घ) प्रेमचंद

9) हिंदी साहित्य में साम्यवादी कहानीकार के रूप में .....चर्चा में रहे हैं।

क) यशपाल ख) सुमित्रानंद पंत ग) प्रेमचंद घ) भारतेन्दु

10) प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम'.....पत्रिका में प्रकाशित हुई थी।

क) सरस्वती ख) इंदू ग) छाया घ) हंस

11) 'भारत दुर्दशा' नाटक के रचयिता.....है।

क) भारतेन्दु ख) प्रसाद ग) बालकृष्ण भट्ट घ)निराला

12) 'अंधायुग' के नाटककार.....है।

क) धर्मवीर भारती ख) मोहन राकेश ग) मिश्र घ) प्रसाद

13) .....यह प्रसाद जी की प्रसिद्ध नाट्य कृति है।

क) भूख आग है ख) चंद्रगुप्त ग) मेघना घ) शपथ

14) 'गो संकट' नाटक के नाटककार है.....।

क) प्रतापनारायण मिश्र ख) प्रसाद ग) भारतेन्दु घ) शुक्ल

15) 'करुणालय'.....माना जाता है।

क) गीतिनाट्य ख) पौराणिक नाटक ग) प्रतीक-प्रधान घ) व्यक्तिवादी नाटक।

16) नाट्यशास्त्र.....की कृति है।

क) राजेंद्र यादव ख) भारतेन्दु ग) भरतमुनि घ) प्रसाद

17) .....युग में हिंदी नाटकों की परंपरा धीमी पड गयी।

क) प्रसाद युग ख) भारतेन्दु युग ग) शुक्ल युग घ) द्विवेदी युग

18) राधाकृष्णदास के.....नाटक में बालविवाह की समस्या है।

क) दुखिनी बाला ख) गो संकट ग) चंद्रगुप्त घ) कामना

19) बनारसीदास जैन कृत.....रचना हिंदी की पहली आत्मकथा मानी जाती है।

क) स्वकथित ख) अर्द्धकथानक ग) जब में क्रांतिकारी बना घ) रसीदी टिकट

20) 'मेरी जीवन यात्रा'.....की आत्मकथा है।

क) राहुल सांकृत्यायन ख) डॉ. राजेंद्र प्रसाद ग) राजेंद्र यादव घ) अमृता प्रीतम

21) डॉ. भगवानदास की आत्मकथा का नाम.....है।

क) जूठन ख) उथल-पुथल का युग ग) मैं भंगी हूँ घ) स्वतंत्र जीवन

22) बनारसीदास चतुर्वेदी की रचना 'प्रयाग के वे दिन'.....है।

क) लघु आत्मकथा ख) दलित आत्मकथा ग) अनूदित घ) कहानी

23) कमलेश्वर की आत्मकथा.....खंडो में प्रकाशित है।

क) दो ख) चार ग) पाँच घ) तीन

24) म. गांधी की आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग'.....द्वारा अनूदित हुई है।

क) अरविंद घोष ख) हरिभाऊ उपाध्याय ग) कृष्णदत्त पालीवाल घ) म. गांधी

25) 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' .....जी की आत्मकथा है।

क) पं. जवाहरलाल नेहरू ख) म. गांधी ग) हरिवंशराय बच्चन ग) प्रसाद

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1) आधुनिक - आज का, नये जमाने का।

2) समस्त - सब, समग्र।

3) उन्नयन - विकास।

4) पूर्ववर्ती – पहले का।

5) परवर्ती – बाद का।

6) सम्यक – परिपूर्ण।

7) अंकन – चित्रण।

8) सृजन – रचना करना।, निर्माण करना।

9) परिवेश – वातावरण।

10) अनुप्रणित – प्रेरित, पोषित।

11) करारा – तीव्र, तीखा।

12) योगदान – कार्यों में सहयोग।

13) संपादकीय : दैनिक पत्र का वह स्तंभ जिसे संपादक लिखता है।

14) जासूसी – गुप्त रूप से किसी बात का पता लगाना।

15) तिलस्मी – जादू, इंद्रजाल, अलौकिक व्यापार।

16) यथार्थोन्मुख – यथार्थ की दिशा में उन्मुख।

17) परिमार्जित – धोया हुआ, साफ किया हुआ।

18) परिष्कृत – संस्कारों से शुद्ध किया हुआ।

19) विधा – साहित्य के रूप या प्रकार ।

20) व्यक्तिवाद – समाज की अपेक्षा व्यक्ति को सबसे श्रेष्ठ।

21) आँचलिक उपन्यास – क्षेत्र-विशेष के जीवन पर आधारित उपनन्यास।

22) आत्मकथा – आपबीती

3.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1) भारतेन्दु।

2) महावीरप्रसाद द्विवेदी।

3) प्रेमचंद।

4) परीक्षा गुरू।

5) अज्ञेय।

6) वृंदावनलाल वर्मा।

7) गुलेरी।

8) प्रेमचंद ।

9) यशपाल

10) इंदू।

11) भारतेन्दु।

12) मोहन राकेश।

13) चंद्रगुप्त।

14) प्रतापनारायण मिश्रा।

15) गीतिनाट्य।

16) भरतमुनि।

17) द्विवेदी।

18) दुखिनी बाला।

19) अर्द्धकथानक।

20) राहुल सांकृत्यायन।

21) मैं भंगी हूँ।

22) लघु आत्मकथा

23) तीन

24) हरिभाऊ उपाध्याय

25) हरिवंशराय बच्चन।

3.7 सारांश :

1) हिंदी साहित्य के इतिहास के सं. 1900 से आजतक के कालखंड को 'आधुनिक काल' कहा जाता है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने इसे 'गद्यकाल' के नाम से अभिहित किया है।

2) भारतेन्दु युग आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रवेशद्वार है। गद्य साहित्य की सभी विधाओं का प्रारंभ भारतेन्दु युग से हुआ है। भारतेन्दु ने स्वयं गद्य की विभिन्न विधाओं का प्रारंभ किया है।

3) उपन्यास साहित्य का प्रारंभ आधुनिक काल में भारतेन्दु युग में माना जाता है। अधिकांश विद्वान लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरू' को हिंदी का पहला उपन्यास मानते हैं। प्रेमचंद को केंद्र में रखकर उपन्यास साहित्य विकास के तीन कालखंड माने गये हैं- प्रेमचंद पूर्व युग, प्रेमचंद युग, प्रेमचंदोत्तर युग। प्रेमचंद को हिंदी का 'उपन्यास सम्राट' माना जाता है। प्रेमचंद के बाद उपन्यास साहित्य का विविधमुखी विकास हुआ।

4) हिंदी नाटक साहित्य का प्रारंभ भारतेन्दु युग से हुआ। भारतेन्दु ने सबसे पहले नाटक लिखकर नाटक-साहित्य का प्रवर्तन किया। उन्होंने अनेक मौलिक और अनूदित नाटकों की रचना की। भारतेन्दु से लेकर आजतक के नाटक-साहित्य के विकास क्रम को चार कालखंडों में विभाजित किया जाता है- भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, प्रसाद युग और प्रसादोत्तर युग। जयशंकर प्रसाद ने हिंदी नाटक को उत्कर्ष पर पहुँचाया। उन्हें हिंदी का सर्वश्रेष्ठ नाटककार माना जाता है। प्रसादोत्तर काल में अनेक नये प्रकार के नाटक लिखे गये।

5) हिंदी कहानी-साहित्य का प्रारंभ सन् 1900 ई. से 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन के साथ हुआ। 'सरस्वती' में अनेक मौलिक कहानियाँ प्रकाशित होती रहीं। हिंदी कहानी की विकास-यात्रा को अध्ययन की सुविधा हेतु निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- प्रारंभिक युग (1930 तक) परवर्ती युग (1930 से आज तक), नई कहानी, सचेतन कहानी आदि। जयशंकर प्रसाद तथा प्रेमचंद जी ने हिंदी कहानी को उत्कर्ष पर पहुँचाया।

6) भारतीय हिंदी साहित्य परंपरा में आत्मकथा विधा विकसनशील अवस्था में रही है। आत्मकथा का उद्भव आदिकाल से माना जा सकता है किंतु इस विधा का विकास आधुनिक काल में ही पाया गया है। बनारसीदास जैन कृत 'अर्द्धकथानक' से इस विधा की शुरूआत रही है जो स्वातंत्र्यपूर्व तथा स्वातंत्र्योत्तर काल में उत्कर्ष तक पहूँच पाई है। आज दलित आत्मकथाओं ने गति प्राप्त कर इस विधा को दलित विमर्श का केंद्रबिंदू बनाया है।

3.8 स्वाध्याय :

प्रश्न 1 : दीर्घोत्तरी प्रश्न

1) हिंदी उपन्यास साहित्य का परिचय दीजिए।

2) हिंदी नाटक साहित्य के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

3) हिंदी कहानी साहित्य के उद्भव एवं विकास का विवेचन कीजिए।

4) हिंदी आत्मकथा की विकास-यात्रा को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2 : टिप्पणियाँ लिखिए।

1) नाटककार जयशंकर प्रसाद ।

2) उपन्यास सम्राट प्रेमचंद ।

3) नयी कहानी।

4) आँचलिक उपन्यास।

5) समस्यामूलक नाटक।

6) दलित आत्मकथा।

3.9 क्षेत्रीय कार्य

1) हिंदी के प्रमुख उपन्यासकारों, नाटककारों एवं कहानीकारों की सूची बनाइए ।

2) किसी एक आत्मकथा लेखक से साक्षात्कार प्राप्त कीजिए ।

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1) हिंदी साहित्य का प्रवृत्ति परक इतिहास : डॉ. सभापति मिश्रा।

2) हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : शिवकुमार शर्मा।

3) हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त।

4) आत्मकथा साहित्य, सिद्धांत और समीक्षा : डॉ. आनंद सिन्दल।

●●●

इकाई – 4 : आधुनिक काल
काव्य की विभिन्न धाराओं की विशेषताएं –
छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, साठोत्तरी कविता

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विषय विवेचन

4.3.1 छायावाद की विशेषताएँ

4.3.2 प्रगतिवाद की विशेषताएँ

4.3.3 प्रयोगवाद की विशेषताएँ

4.3.4 साठोत्तरी कविता की विशेषताएँ

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

4.5 पारिभाषिक शब्द – शब्दार्थ

4.6 स्वयं अथ्ययन के लिए प्रश्नों के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 स्वाध्याय

4.9 क्षेत्रीय कार्य

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.1 उद्देश्य :

इस इकाई को पढने के बाद आप –

1) छायावादी काव्यधारा की विशेषताओं /प्रवृत्तियों को समझ सकेंगे।

2) प्रगतिवादी काव्यधारा की विशेषताओं /प्रवृत्तियों से परिचित होंगे ।

3) प्रयोगवादी काव्यधारा की विशेषताओं /प्रवृत्तियों को स्पष्ट कर सकेंगे ।

4) साठोत्तरी कविता की विशेषताओं /प्रवृत्तियों से परिचित होंगे।

4.2 प्रस्तावना :

सन् 1900 ई. से अबतक के कालखंड को 'आधुनिक काल' कहा जाता है। भारतेन्दु युग से आधुनिक हिंदी कविता का आरंभ हुआ और क्रमशः द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, हालावाद, प्रयोगवाद, नई कविता, समकालीन कविता, साठोत्तरी कविता आदि नामों के साथ उसका विकास हुआ। आधुनिक काल की हिंदी कविता भारतीय समाज के नवीन वर्ग की वाणी को अभिव्यक्त करती है। इस कविता में आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं, समस्याओं और महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का विवेचन हुआ है। इस काल की कविता में भाव और शिल्प दोनों स्तर पर परिवर्तन होते रहें। इस काल के कवियो नें कविता को सर्वसामान्य से जोडने का प्रयत्न किया। इसके पूर्व का काव्य 'दरबारी काव्य' था। इन कवियों ने कविता को दरबार से बाहर निकालकर उसे मुक्त कर दिया। इसी कारण आधुनिक काल की कविता में लोकतत्त्व की प्रधानता है। विषय और अभिव्यक्ति इन दोनों स्तरों पर यह लोकतत्त्व मिलता है। इस इकाई के अंतर्गत छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवादी और साठोत्तरी कविता की विशेषताओं पर प्रकाश डालेंगे।

4.3 विषय विवेचन :

4.3.1 छायावाद की विशेषताएं :

जिस समय द्विवेदी युग समाप्त हो रहा था उसी समय हिंदी में एक नई काव्यधारा जन्म ले रही थी। इसी काव्यधारा को 'छायावादी काव्य' के नाम से पहचाना जाता है। दो महायुद्धों के बीच जो स्वच्छंदवादी कविता लिखी गई उसे ही 'छायावाद' कहा जाता है। छायावाद की बुनावट में अंग्रेजी का रोमांटिक काव्य, रवींद्र की कविता, अद्वैत दर्शन, मानवतावादी भूमिका आदि काव्य आंदोलन तथा दर्शन कारणीभूत रहें। आरंभ में छायावाद को लेकर विभिन्न अनुकूल-प्रतिकूल मत थे लेकिन अब इस काव्य की विशिष्ठता तथा महत्ता को सभी ने स्वीकार कर लिया है। छायावाद ने आधुनिक हिंदी साहित्य को अत्यंत महत्त्वपूर्ण कवि दिए। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियों ने छायावादी काव्य में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। छायावाद एक काव्य आंदोलन है। इस काव्य की विभिन्न काव्य प्रवृत्तियाँ उभरकर आती हैं उनका संक्षेप में अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा।

1) वैयक्तिकता :

पूरे छायावादी काव्य में वैयक्तिकता का प्राधान्य है। छायावादी कवियों की प्रवृत्तियाँ अंतर्मुखी होने के कारण यह कवि अपने ही सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि भावों की अभिव्यक्ति में लगे रहें। समाज की ओर उनकी दृष्टि कम गई। इन कवियों ने वैयक्कि सुख-दुःख खुल कर अभिव्यक्ति किया।

अपनी घनीभूत वेदना को इन कवियों ने निःसंकोच भाव से वाणी प्रदान की। वैयक्तिकता के कारण ही छायावादी कवियों ने परम्परागत काव्य से विद्रोह किया था। आगे चलकर छायावादी कवियों की वैयक्तिकता धीरे-धीरे विशालता की ओर मुडने लगती है। निराला लिखते हैं -

'मैंने 'मैं' शैली अपनाई,
देखा एक दुःखी निज भाई
दुःख की छाया पडी हृदय में
झट उमड वेदना आई।'

इस उदाहरण से हम कह सकते हैं कि छायावादी कविता वैयक्तिकता अंततः सामाजिक रूप धारण कर लेती है। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा इन चारों कवियों का काव्य इस का प्रमाण है।

2) प्रेम और सौंदर्य :

सभी छायावादी कवि प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं। सौंदर्य का चित्रण दो प्रकार का होता है बाह्य सौंदर्य और अंतःसौंदर्य। छायावादी कवि अंतःसौंदर्य के उपासक हैं। छायावादी कवियों की प्रवृत्तियाँ आंतरिक सौंदर्य के उद्‌घाटन में विशेष रूप से रमी है। इन कवियों ने नारी के सौंदर्य को नाना रंगों का अवरण पहनाकर अभिव्यक्त किया है। सभी कवि नारी को मानवीय दृष्टि से देखते हैं। और उसके आंतरिक सौंदर्य का चित्रण करते हैं। जयशंकर प्रसाद लिखते हैं -

'नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अध खुला अंग।
खिला हो जो बिजली का फूल
मेघबन बीच गुलाबी रंग।।'

नारी सौंदर्य के साथ इन कवियों ने प्रकृति के निखिल सौंदर्य का भी चित्रण किया। सौंदर्य का अर्थ अब तक हमने स्त्री सौंदर्य से लिया था। परंतु इन कवियों ने बाह्य जीवन में व्याप्त अनेक छोटी-मोटी वस्तुओं का कलात्मक सौंदर्य से भरपूर चित्रण किया। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी जी की अनेक कविताओं में इसके अनेक प्रमाण दिखाई देते हैं। इन कवियों ने सौंदर्य को उदात्तता, भव्यता और दिव्यता प्रदान की।

3) प्रकृति चित्रण :

प्रकृति का सूक्ष्म चित्रण छायावादी कवियों की प्रमुख विशेषता है। सभी छायावादी कवियों ने अपनी कविताओं में प्रकृति का चित्रण बडे ही आग्रह के साथ किया है । इन कवियों ने स्वच्छंद प्रेम और प्रकृति-चित्रण को काव्य-विषय के रूप में स्वीकार किया। प्रकृति का और काव्य का अनादि

काल से संबंध है, लेकिन प्रकृति अपने सर्वांग रूप को लेकर हिंदी काव्य में पहली बार छायावादी काल में ही प्रकट हुई है। इन कवियों ने प्रकृति के माध्यम से ही अपनी अनुभूतियों को व्यक्त किया है । इन कवियों के लिए प्रकृति साध्य भी है और साधन भी। प्रकृति का मानवीकरण सभी छायावादी कवियों के काव्य दिखाई देता है। प्रकृति का नारी रूप में चित्रण लगभग सभी कवियों ने किया है-

'पगली हाँ संभाल ले कैसे छूटा पड तेरा अँचल।
देख बिखरती है मणिराजी अरी उठा। बेसूध चंचल।'

प्रकृति का आलंबन उद्दीपन मानवीकरण एवं रहस्यमयी चित्रण यह छायावादी कवियों की प्रमुख विशेषता है। इन कवियों ने प्रकृति के हर ध्वनि का अत्यंत मनमोहक चित्रण किया है । प्रकृति के अत्यंत कोमल रूप का चित्रण इन कवियों के काव्य में देखा जाता सकता है।

3) रहस्यवादी :

'रहस्यवाद' छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। - अधिकतर आलोचकों ने छायावाद को रहस्यवाद के अर्थ में ही स्वीकारा है। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा जी के काव्य में रहस्यवाद की प्रवृत्ति दिखाई देती है। छायावादी इन कवियों के काव्य में रहस्यवाद की तीन स्थितियाँ अज्ञात के प्रति जिज्ञासा, मिलन के किए प्रयत्न, अद्वैतावस्था प्रकट हुई है। प्रसाद तथा महादेवी उस अज्ञात के प्रति माधुर्य भाव से अपनी अनुभूतियाँ व्यक्त करते हैं। महादेवी जी लिखती हैं -

'प्रिय चिरन्तन है रजनी
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं,
तुम मुझ में फिर परिचय क्या।'

छायावादी कविता का सबसे अधिक समृद्ध अंग रहस्यवाद ही है। अज्ञात सत्ता के प्रति मनुष्य के मन में जो जिज्ञासा, आकांक्षा, प्रयत्न और मिलन की तडप है वही रहस्यवाद इन कवियों के काव्य में जगह-जगह पर दिखाई देता है।

5) स्वतंत्रता प्रेम :

छायावाद का समय भारतीय स्वतंत्रता का समय है। इसी कारण इन कवियों के काव्य में भी भारतीय स्वतंत्रता के गीत दिखाई देते हैं। भारतीय समाज को इन कवियों ने प्रेरित करने का बडा कार्य किया। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा और मखनलाल चतुर्वेदी जैसे कवियों के काव्य में राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान है। राष्ट्रप्रेम की कविता लिखने, के कारण ही इन कवियों की कविताओं में सामाजिक तत्त्व दिखाई देते हैं। मखनलाल चतुर्वेदी जी लिखते हैं-

''मुझे तोड लेना वनमाली
उस पथ पर देना तुम फेंक।

मातृभूमि पर शीश चढाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक।''

इस प्रकार राष्ट्रप्रेम की भावनाएं प्रायः छायावादी हर कवि के काव्य में दिखाई देती है।

6) मानवतावाद :

मानवतावाद यह छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति है। धर्म, राष्ट्र आदि के बंधनों को त्यागकर इन कवियों के काव्य में अखंड मानव जाति के प्रति मानवतावादी स्वर दिखाई देता है। इन कवियों का स्वर अधिक व्यापक है। महादेवी जी अपनी करुणा में अखंड मानव जाति को समा लेना चाहती हैं तो प्रसाद जी की 'कामायनी' अखंड मानव की चिंता को लेकर चलती है। पंत और निराला में दीन-दलितों के प्रति करुणा और सहानुभूति व्यक्त हुई है। नारी के प्रति मानवतावादी स्वर अभिव्यक्त करते हुए छायावादी कवि कहता है -

''मुक्त करो नारी को,
युग युग की कारा से बंदिनी नारी को।''

छायावादी कवियों के समस्त काव्य में मानवता का गुण विद्यमान है। मानव जाति को स्वतंत्र कर यह कवि उसके कल्याण की कामना करते हैं।

7) वेदना और निराशा :

वेदना और निराशा छायावाद की प्रमुख विशेषतः रही है। मानव जीवन की अनेक विषमताओं को देखकर छायावादी कवियों के हृदय में वेदना और करुणा उभर आती है। छायावादी कवि सौंदर्य प्रेमी है लेकिन सौंदर्य की क्षणभंगुरता को देखकर उसका हृदय आकुल हो उठता है। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी जी के गीतों में वेदना की अभिव्यक्ति सर्वाधिक हुई है। महादेवी जी का संपूर्ण काव्य ही वेदनामय है। वह लिखती हैं-

''मैं नीर भरी दुःख की बदली
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमडी कल थी, मिट आज चली
मैं नीर भरी दुःख बदली''

छायावादी कवियों के काव्य में अभिव्यक्त वेदना के बीज तत्कालीन स्थितियों में देखे जा सकते हैं। इन कवियों की वेदना वैयक्तिकता को भेदकर आगे चली है।

8) स्वच्छंदतावाद :

छायावादी कवियों ने सभी क्षेत्रों में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति को अपनाया। छायावादी कवियों को अपने काव्यकर्म के लिए किसी प्रकार का शास्त्रीय बंधन और रुढियाँ स्वीकार नहीं है। इन कवियों पर पाश्चात्य साहित्य की रोमांटिक काव्यधारा का प्रभाव है। इस काव्य में प्रेम-चित्रण, प्रकृति-चित्रण, राष्ट्रप्रेम, रहस्यात्मकता, वेदना और निराशा, वैयक्तिक सुख-दुःख आदि सभी प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है। इन कवियों ने पुराने बंधनों को छोडकर नया रास्ता अपनाया है।

9) नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोन :

नारी के प्रति छायावाद ने सर्वथा एक नवीन दृष्टिकोन अपनाया। इन कवियों ने नारी को वासना की पूर्ति का साधन नहीं माना बल्कि उसे यह कवि प्रेयसी, जीवन-साथी, माँ आदि विविध रूपों में अभिव्यक्त करते हैं। प्रसाद जी द्वारा चित्रित इस भावमयी नारी का रूप अत्यंत मनमोहक बन पडा है -

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास-रजत नग पगतल में।
पीयूष-स्रोत-सी बहा करो,
जीवन के सुंदर समतल में।''

स्पष्ट है छायावादी कवियों ने नारी के भव्य एवं उदात्त रूप को अभिव्यक्ति दी है। रीतिकालीन भोगवादी दृष्टि अथवा द्विवेदीकालीन आदर्शवादी दृष्टि के स्थान पर इन कवियों ने नारी को एक स्वतंत्र व्यक्ति चेतना के रूप में देखा। उसके मातृत्व रूप को उभारा। नारी अपने व्यक्तित्व की सभी विशेषताओं को लेकर छायावादी काव्य में प्रकट हुई है।

10) कलागत विशेषताएं :

विषयगत विशेषताओं को देखने के उपरांत अब हम छायावाद की कलागत विशेषताओं को देखेंगे।

1) प्रतीकात्मकता :

प्रतीकात्मकता छायावादी कविता की प्रमुख कलागत विशेषता है। इन्होंने अपने सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के लिए लाक्षणिक प्रतीकात्मक शैली को अपनाया है। प्रकृति चित्रण में इन कवियों ने अनेक प्रतीकों को चुना है, प्रकृति छायावादी कवि के वैयक्तिक जीवन का प्रतीक बन गई है।

2) चित्रात्मक भाषा :

छायावादी कवियों की भाषा अत्यंत कोमलकांत, सुंदर बन पडी है। भाषा में बिम्ब अत्यंत सुंदर

बनकर आते हैं। यही वह कारण है कि छायावादी कवियों की भाषा चित्रात्मक रूप धारण करती है। कविता पढते समय मानों चित्र खडा हो जाता है। सभी कवि शब्दों के मानों शिल्पी हैं। इन्होंने न जाने कितने नूतन शब्द हिंदी को दिए हैं।

3) गेयता :

छायावादी कवियों की अभिव्यक्ति की शैली बेजोड है। इन्होंने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए प्रायः गीति शैली को चुना है। भावनात्मकता, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता, कोमलता आदि सभी गीति-तत्त्वों का समावेश छायावादी काव्य में मिलता है। अतः गेयता यह छायावादी कवियों की प्रमुख कलागत विशेषतः रही है।

4) अलंकार :

छायावादी कवियों ने लगभग सभी सुंदर अलंकारों का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक आदि परम्परागत अलंकारों का प्रयोग हुआ है साथ ही मानवीकरण, विरोधाभास, विशेषण-विपर्यय आदि पाश्चात्य ढंग के अलंकारों का प्रयोग भी इन कवियों ने खुलकर किया है।

4.3.2 प्रगतिवाद की विशेषताएं :

प्रगतिवाद का मूल आधार कार्लमार्क्स की विचार-धारा है। मार्क्स ने राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र में जो विचार अभिव्यक्त किए वैसे ही साहित्य में भी अपने विचारों को अभिव्यक्त किया। मार्क्स ने समाज के दो वर्गों को स्वीकार किया-शोषक वर्ग और शोषित वर्ग। मार्क्स के अनुसार साहित्य में भी इन्हीं वर्गों पर अपनी अभिव्यक्ति होनी चाहिए। आगे चलकर मार्क्स ने यहाँ तक कहा कि वही साहित्य है जो शोषितों के पक्ष में लिखा जाए और शोषकों के विरोध में लिखा जाए। सन् 1936 में प्रेमचंद की अध्यक्षता में 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। पूरे भारतीय भाषाओं के अनेक लेखक इस में सक्रिय हुए। हिंदी के प्रमुख कवि निराला, सुमित्रानंदन पंत, शिवमंगलसिंह शर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, रामधारीसिंह दिनकर आदि ने प्रगतिवादी काव्य लेखन में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। प्रगतिवाद यह एक व्यापक विचारधारा है। इस काव्य की विभिन्न काव्य प्रवृत्तियाँ उभरकर आती हैं वह निम्नलिखित हैं -

1) रूढियों का विरोध :

प्रगतिवादी कविता में रूढियों तथा परंपराओं, धर्म तथा ईश्वर का घोर विरोध हुआ है। इनके लिए मंदिर-मस्जिद, गीता-कुराण महत्त्व नहीं रखते। वर्तमान के वैज्ञानिक युग में शिक्षित लोगों का विश्वास धर्म की पूरानी रूढि तथा परंपरा से उठ चुका है। मार्क्सवादी विचारधारा में भी इन सब का प्रबल विरोध हुआ है। इन कवियों ने अंधविश्वास, मिथ्या-परंपराओं और रुढियों का विरोध किया और

मानव को मानव बन कर चलने का आग्रह किया –

''भ्रांत यह अतिरंजित इतिहास?
व्यर्थ के गौरव गान
दर्प से एक महान
अपर मुख म्लान
किसी को आर्य,अनार्य,
किसी को यवन
.....
मनुज को मनुज न कहना आह।''

मनुष्य को मनुष्य न कहकर उसे उसके जाति के आधार पर परखा जाता है इसका प्रगतिवादी कवि विरोध करते हैं।

2) शोषितों के प्रति करुण–गान :

प्रगतिवादी कवियों ने शोषितों के प्रति अपनी गहरी सहानुभूति अभिव्यक्त की है । वर्तमान समाज के किसान, किसान–मजदूर, मिल मजदूर एवं पीडितों की यथार्थ स्थिति का चित्रण इन कवियों की कविताओं में हुआ है। शोषितों की करुण दशा का चित्रण करते हुए निराला लिखते हैं–

''ओ मजदूर! ओ मजदूर!!
तू सब चीजों का करता, तू ही सब चीजों से दूर
ओ मजदूर! ओ मजदूर!!''

इस प्रकार प्रगतिवादी कवियों ने समाज के शोषितों पीडितों का करूण–गान किया है।

3) शोषकों के प्रति घृणा तथा रोष :

समग्र प्रगतिवादी काव्य में शोषकों के प्रति घृणा एवं रोष का भाव प्रकट हुआ है। प्रगतिवादी कवियों को यह विश्वास है कि जब तक पूँजीवाद रहेगा तब तक समाज का शोषण होता रहेगा। यह कवि पूँजीवाद के पोषकों–व्यापारियों, जमीदारों के प्रति घृणात्मक भाव प्रकट करते हैं। दिनकर लिखते हैं –

''श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं।
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाडों की रात बिताते हैं।
युवती की लज्जा वसन बेच, जब ब्याज चुकाए जाते हैं।
मालिक जब तेल फुलेलों पर, पानी सा द्रव्य बहाते हैं।
पापी महलों का अहंकार, देता मुझे तब आमंत्रण।''

इस प्रकार पूँजीवादी वर्ग के प्रति इन कवियों के मन में स्वाभाविक घृणा और रोष है। परंतु

प्रगतिवादी कवि दृढता के साथ यह विचार भी व्यक्त करता है कि यह शोषण और अत्याचार अधिक दिनों तक नहीं चल सकेगा एक दिन उसका अंत अवश्य होगा।

4) क्रांति की भावना :

प्रगतिवादी कवियों में शोषकों के प्रति घृणा तथा शोषितों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण भावनाओं की अभिव्यक्ति के साथ-साथ क्रांति की भावना को भी दिखाया गया है। यह कवि वर्गहीन समाज की स्थापना चाहते हैं। आर्थिक विषमता को समाप्त करने के लिए यह कवि पूँजीवादी व्यवस्था को खत्म करना चाहते हैं। इसके लिए वह 'क्रांति' के मार्ग को अपनाने का आग्रह करते हैं। सुमित्रानंदन पंत लिखते हैं -

''आ कोकिल बरसा पावक कण
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण-पुरातन''

स्पष्ट है प्रगतिवादी अधिकतर कवियों ने क्रांति की इस चिनगारी को फैलाने का अवहान किया। इन कवियों ने समूह को एकत्रित कर शोषकों के विरोध में क्रांति करने का आग्रह किया है ।

5) मार्क्स तथा रूस का गुणगान :

प्रगतिवादी कवियों ने कार्ल मार्क्स के प्रति श्रद्धा प्रकट की है साथ ही रूस और लाल सेना की स्तुति की है। मार्क्स की विचारधारा का इन कवियों को गर्व है। मार्क्स ने जिस समाजवादी विचारधारा को प्रस्तुत किया और उस विचारधारा से प्रेरित होकर रूस में राजकारोबार चला उसका गुण-गान प्रगतिवादी कवियों की अनेक कविताओं में दिखाई देता है। कवि नरेंद्र शर्मा लिखते हैं-

''लाल रूस है ढाल साथियों! सब मजदूर किसानों का
वहाँ राज है पंचायत का, वहाँ नहीं है बेकारी।
लाल रूस का दुश्मन साथी, दुश्मन सब इन्सानों का।
दुश्मन है सब मजदूरों का दुश्मन सभी किसानों का।''

इस प्रकार प्रगतिवादी कवि मार्क्स तथा रूस का गुणगान कर पूरी दुनिया में मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार समाजवादी व्यवस्था निर्माण करने के पक्ष में हैं।

6) मानवतावाद :

प्रगतिवादी कवियों का मूल स्वर मानवतावादी है। इन कवियों की मानवता अपने देश तक सीमित न होकर वह विश्वव्यापी है। इन कवियों ने किसानों, मजदूरों, वेश्याओं, भिखमंगों पर अपनी कविता लिखकर आम आदमी के प्रति अपनी संवेदना को अभिव्यक्त किया है। नरेन्द्र शर्मा लिखते हैं-

''जाने कबतक घाव भरेंगे इस घायल मानवता के ?
जाने कबतक सच्चे होंगे, सपने सबकी समता के?''

इस प्रकार प्रगतिवादी कविता में व्यापक मानवतावाद को अभिव्यक्ति मिली है।

7) नारी विषयक नवीन दृष्टिकोण :

प्रगतिवादी कवियों ने नारी विषयक नवीन दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया। अबतक नारी केवल उपभोग की वस्तु या कल्पनालोक की सुंदर रूपवती थी, इन कवियों ने नारी का यथार्थवादी रूप प्रकट किया। प्रगतिवादी कवि स्त्री-पुरुष को समान मानते हैं। लिंग-भेद के आधार पर अंतर करना इन्हें मान्य नहीं है। नारी को एक सजग व्यक्तित्व के रूप में इन कवियों ने स्वीकार किया। सुमित्रानंदन पंत लिखते हैं -

''योनी नहीं है रे नारी वह भी मानवी प्रतिष्ठित।
उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह रहे न नर पर अवसित।''

नारी पुरुष की जीवन-साथी है, वह पुरुष के साथ कंधे से कंधा लगाकर चलनेवाली सहचरणी है, वह मानवी है उसका सम्मान होना चाहिए इस का स्वीकार इन कवियों ने किया।

8) सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण :

वर्तमान जीवन में दैन्य, दुःख, शोषण, कठोरता और कुरुपता अधिक है, प्रगतिवादी कवियों ने समाज के इन पहलुओं का यथार्थ चित्रांकन अपनी कविताओं के माध्यम से किया है। इन कवियों को ऐश्वर्य, विलास, भव्यता, भौतिक सुख इन सब से अत्याचार, भूख से पीडित लोग, नारी जीवन की दर्दनाक कथाएँ, रोटी के कारण तडपते बच्चे आदि महत्त्वपूर्ण लगते हैं। सुमित्रानंदन पंत लिखते हैं -

''यह तो मानव लोक नहीं है, यह है नरक अपरिचित।
यह भारत का ग्राम सभ्यता संस्कृति से निर्वासित।''

इस प्रकार प्रगतिवादी कविता में भव्य, महान और आदर्श की अपेक्षा कुरूप, कुत्सित, पतित एवं यथार्थ जीवन का चित्रण हुआ है।

9) सामायिक समस्याओं का चित्रण :

प्रगतिवादी कवियों में सम-समायिक समस्याओं का चित्रण हुआ है। वर्तमान जीवन की वास्तविकता को यह कवि रेखांकित करते हैं। अकाल की समस्या, महँगाई, दरिद्रता, बेकारी, नारी की दर्दनाक स्थिति आदि को प्रगतीवादी कविता में अभिव्यक्ति मिली है। नागार्जुन आजादी का व्यंग्य से वर्णन करते हुए लिखते हैं -

''कागज की आजादी मिलती
ले लो दो-दो आने में ''

सम-सामायिक सभी समस्याओं का चित्रण प्रगतिवादी हर कवि ने अपनी कविताओं में किया है।

10) कलागत विशेषता :

प्रगतिवादी कवियों ने कला की अपेक्षा विषय को महत्त्व दिया। इन कवियों के अनुसार विचार एवं भाव महत्त्वपूर्ण हैं। इन कवियों ने सीधी-साधी सरल भाषा को अपनाया। यह कविता जन-जीवन से जुडी होने के कारण इस में जन-जीवन से जुडे यथार्थवादी शब्द प्रचूर मात्रा में पाए जाते हैं। साथ ही भाषा में व्यंग्यात्मकता भी दिखाई देती है। प्रगतिवादी कवियों ने प्रतीक, रूपक और उपमानों में भी बदलाव लाया। बनी-बनाई काव्यात्मक भाषा को त्यागकर उन्होंने जन-सामान्य में प्रयुक्त शब्दों-मुहावरों का सीधा प्रयोग किया। अलंकारों की अपेक्षा इन्होंने वाणी को महत्त्व दिया। सुमित्रानंदन पंत लिखते हैं -

''तुम वहन कर सको, जन-मन में मेरे विचार
वाणी मेरी चाहिए क्या तुम्हें अलंकार।''

इस प्रकार प्रगतिवादी कवियों की कला संबंधी मान्यताएं अत्यंत स्पष्ट है, वे अलंकारों से अधिक विचारों को महत्त्व देते हैं।

4.3.3 प्रयोगवादी की विशेषताएं :

सन् 1943 ई. से जिस नयी काव्यधारा का विकास हिंदी कविता में हुआ, उसे प्रयोगवाद कहा जाता है। प्रयोगवाद के जन्म का कारण तत्कालीन सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियाँ रही। 1940 तक आते-आते भारत में मध्यवर्ग की संख्या बढने लगी। पढा-लिखा यह मध्यवर्ग अपने आस-पास के वातावरण को अधिक सजगता से देखने लगा। यह पढा-लिखा युवक अंग्रेजी साहित्य से परिचित था इसका परिणाम भी प्रयोगवादी कविता पर हुआ। इस कविता पर ईलियड, पाउण्ड तथा फ्रायड का प्रभाव स्पष्ट है, साथ ही युरोप के साहित्य के अनेक वादों का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। 1943 में अज्ञेय जी के संपादन में कुछ कवियों की कविताओं का संग्रह 'तार-सप्तक' (प्रथम) प्रकाशित हुआ। आगे 1951 ई. में अज्ञेय जी ने ही और कुछ कवियों को एकत्रित कर दूसरा संग्रह 'तार सप्तक' (द्वितीय) प्रकाशित किया। इन तार-सप्तकों के प्रमुख कवि अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा, भवानीशंकर मिश्र, शकुंतला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती आदि रहें। इन कवियों में से कुछ कवि प्रयोगवादी धारा को ही बढावा देते रहें तो कुछ कवि आगे 'नयी कविता' आंदोलन के प्रतिष्ठित हस्तक्षर बन गए। स्पष्ट है प्रयोगवाद एक व्यापक आंदोलन की प्रक्रिया है। इस

काव्य की विभिन्न काव्य प्रवृत्तियाँ उभरकर आती हैं, वे निम्नलिखित हैं-

1) घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद :

प्रयोगवादी काव्य में घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद दिखाई देता है। इन कवियों का 'व्यक्तिवाद' यथार्थ के साथ जुडा हुआ है। वे व्यक्तिमन की गहराई तक जाना चाहते हैं। ये कवि अपनी व्यक्तिनिष्ठा को सुरक्षित रखना चाहते हैं। प्रयोगवादी काव्य में वैयक्तिकता आत्मविश्वास एवं प्रख्यापन बनकर रह गई है। भारतभूषण अग्रवाल लिखते हैं -

''साधारण नगर के
एक साधारण घर में
मेरा जन्म हुआ,
बचपन बीता, अतिसाधारण''

इस प्रकार प्रयोगवादी कवियों के काव्य में घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद अभिव्यक्त हुआ है, लेकिन यह व्यक्तिवाद अलौकिक एवं रहस्यवादी स्तर पर नहीं पहुंचता जैसे छायावादी काव्य में हमें दिखाई देता है।

2) अति नग्न यथार्थवाद :

प्रयोगवादी कविता यथार्थवादी कविता है और कहीं-कहीं पर तो यह अतिनग्न यथार्थवाद तक पहुँचती है। इस कविता में दमित वासनाओं एवं कुठाओं का चित्रण हुआ दिखाई देता है। अश्लिलता, नग्नता, काम भावना आदि का खुलकर चित्रण इस कविता का अंग बन गया है। काम वासना जीवन का अंग जरूर है लेकिन वह साधन न रहकर जब साध्य बन जाती है तब वह विकृत लगने लगती है। इन कवियों की कविता अति नग्न यथार्थ के कारण विकृति तक पहुँच जाती है। एक कवि लिखते हैं -

''मेरी मन की अंधियारी कोठरी में,
अतृप्त आकांक्षाओं की वेश्या बुरी तरह खांस रही थी।''

अति नग्न यथार्थ के नाम पर प्रयोगवादी कविता में विकृति जगह-जगह दिखाई देती है। प्रेम का उदात्त रूप इस कविता में अंकित नहीं हुआ है, उसके स्थान पर वासना आ गई है। इस कविता में नारी को केवल वासना के रूप में अभिव्यक्ति मिली है।

3) निराशावाद :

प्रयोगवादी कवि जीवन से निराश है। यह कवि जीवन में विफलता का अनुभव करते हैं। छायावादी काव्य में निराशा है लेकिन इस निराशा को मिटाने के लिए छायावादी कवि प्रकृति के सौंदर्य का चित्रण करते हैं या अध्यात्म की ओर मुड जाते हैं, लेकिन प्रयोगवादी कवि निराशा के कारण जीवन

से पलायन नहीं करते, निराशा के विविध स्तरों की अभिव्यक्ति करते हैं। प्रयोगवादी कवियों की निराशा उनके व्यक्तिगत जीवन से निर्माण हुई है। प्रयोगवादी कवियों की दृष्टि केवल वर्तमान पर टिकी है, यह उनकी निराशा का प्रमुख कारण है। यह कवि वर्तमान को ही सबकुछ मान रहे हैं। एक कवि लिखते हैं-

''आओ हम उस अतीत को भूलें,
और आज की अपनी रग रग के अंतर को छू ले।
छू ले इसी क्षण,
क्योंकि कल के वे नहीं रहें,
क्योंकि कल हम भी नहीं रहेंगे।''

प्रयोगवादी कवि निराशा में डूब गये हैं। वह इस की भयावहता को स्पष्ट करते हैं। बाह्य जगत की निराशा के कारण इनकी कविता में भी निराशा का स्वर मुखरित हुआ है।

4) अति बौद्धिकता :

प्रयोगवादी कविता में अतिबौद्धिकता के दर्शन होते हैं। बौद्धिकता के कारण कविता की रागात्मकता कम हो गई है। यह कवि पाठक के हृदय तक न पहुँचकर उसके मस्तिष्क को कुरेदने का कार्य करता है। यह कविता विचार-प्रधान कविता है। यही कारण है कि इस में साधारणीकरण की मात्रा कम दिखाई देती है। इन कवियों का मानना यह रहा है कि आज के वैज्ञानिक युग में कविता का बौद्धिक होना आवश्यक है। एक कवि लिखते हैं-

''अंतरंग की इन घडियों पर छाया डाल दूँ।
अपने व्यक्तित्व को एक निश्चित सांचे में ढाल दूँ।
निजी जो कुछ है अस्वीकृत कर दूँ।
आत्म को न मानूं।
तुम्हें न पहचानूं।
तुम्हारी त्वदीयता को स्थिर शून्य में उछाल दूं।

तभी,

हाँ

शायद तभी.....।''

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है बौद्धिकता के आग्रह के कारण 'भावनात्मकता' का लोप-सा हो गया है। अति-बौद्धिकता कविता को अ-कविता बनाती है। प्रयोगवादी कविता अति-बौद्धिकता के कारण जन-सामान्य तक नहीं पहुँच सकी।

5) वैज्ञानिकता एवं नए मूल्य :

प्रयोगवादी कवि वैज्ञानिक कवि है साथ ही इन कवियों ने नए मूल्यों को जन्म दिया। इन कवियों ने यातना, घुटन, द्वन्द्व, निराशा, अनास्था, जीवन की क्षणिकता, संदेह आदि को खुलकर अभिव्यक्त किया है। साथ ही इन कवियों ने परस्पर सहयोग, विश्व मानवता, विश्व-शांति, आंतराष्ट्रीयता आदि को अपनी कविता में स्थान दिया है। कवि को अपनी आस्था पर पूरा विश्वास है। वह पूर्ण आस्था के साथ अपनी अभिव्यक्ति देते हैं। अज्ञेय लिखते हैं -

''मैं आस्था हूँ
तो मैं निरंतर उठते रहने की शक्ति हूँ.....
जो मेरा कर्म है, उसमें मुझे संशय का नाम नहीं,
वह मेरी अपनी सांस-सा पहचाना है।''

आस्था के इस रूप में कर्म-निष्ठा की भावना आती है। इसप्रकार वैज्ञानिकता एवं नए मूल्यों की स्थापना इस कविता में दिखाई देती है।

6) समाज के कल्याण की भावना :

प्रयोगवादी कवि व्यक्ति के सुख की अपेक्षा समाज के कल्याण को अधिक महत्त्व देता है। अज्ञेय, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती आदि कवि समष्टि को सुखमय बनाने की बात करते हैं। रघुवीर सहाय लिखते हैं-

''आओ स्वीकार निमंत्रण यह करो,
ताकि, ओ सूर्य, ओ पिता जीवन के,
तुम उसे प्यार से वरदान कोई दे जाओ,
जिससे भर जाए दूध से पृथ्वी का आंचल,
जिससे इस दिन उनके पुत्रों के लिए मंगल हो।''

इस प्रकार समाज के कल्याण की कामना यह कवि करता है। यह कविता समाज के विचार करने के लिए मजबूर करती है। समष्टि के सामने अपने विचारों को रख उन्हें सोचने पर बाध्य कराती है।

7) व्यंग्य की प्रखरता :

प्रयोगवादी कवियों में व्यंग्य की प्रधानता दिखाई देती है। इन कवियों ने व्यंग्य को अधिक तीखा, गहरा एवं वैविध्यपूर्ण बना दिया है। समाज-जीवन तथा व्यक्ति-जीवन की विसंगतियों को इन कवियों ने व्यंग्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। नरेश मेहता लिखते हैं-

''ई से ईश्वर
उ से उल्लू

माँ जी ?
नहीं जी
वह पंछी

जो देखता है रात भर''

व्यंग्य आधुनिक काव्य की सब से बडी शक्ति है, प्रयोगवादी कवियों ने इसे अपना हाथियार बनाया है। इन कवियों ने व्यंग्य को प्रतिष्ठित कर दिया है।

8) विद्रोही स्वर :

प्रयोगवादी कविता की महत्त्वपूर्ण विशेषता विद्रोहात्मक स्वर है। इन कवियों का विद्रोही स्वर समाज और परंपरा से अलग होने के रूप में मिलता है। यह कवि रूढि एवं परंपरा से मुक्ति पाने के लिए अपनी कविताओं के माध्यम से विद्रोह प्रकट करते हैं। भवानी प्रसाद मिश्र लिखते हैं-

''ये किसी निश्चित नियम, क्रम की सरासर सीढियाँ हैं,
पाव रखकर बढ रही जिस पर कि अपनी पीढियाँ हैं,
बिना सिढी के बढेंगे तीर के जैसे बढेंगे।''

इन कवियों ने चुनौती के रूप में विद्रोह को अभिव्यक्त किया है। यह कवि मनुष्य को संघर्ष करने के लिए प्रेरित करते हैं। मनुष्य को संघर्ष की चुनौती देते हैं, यही इसका विद्रोहात्मक स्वर है। लगभग प्रयोगवादी सभी कवियों में यह प्रवृत्ति दिखाई देती है। भारतभूषण अग्रवाल लिखते हैं -

''मैं छोडकर पूजा
क्योंकि पूजा है पराजय का विनत स्वीकार
बांधकर मुट्ठी तुझे ललकारता हूँ,
सुन रही है तू ?
मैं खडा तुमको यहाँ पुकारता हूँ।''

इस प्रकार प्रयोगवादी कवि रूढि-परंपरा के विरोध में तथा मानव को संघर्ष करने की प्रेरणा देने के लिए अपनी कविताओं में विद्रोही स्वर भरते हुए दिखाई देते हैं।

9) लघु मानव की प्रतिष्ठा :

प्रयोगवादी कविता में लघु मानव की धारणा को स्थान मिला है। इस कविता में उपेक्षित एवं सामान्य मनुष्य को स्थान मिला है। सामान्य मनुष्य की लघुता को दिखाकर यह कवि साधारण मनुष्य की समस्या को रेखांकित करते हैं। धर्मवीर भारती एक कविता में लिखते हैं -

''मैं रथ का टूटा पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत
इतिहासों की सामूहिक गति
सहका झूठी पड जाने पर
क्या जाने
सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले।''

इन कवियों ने लघुता को समग्रता के साथ स्वीकार किया है। मानव की दमित वासना को, उसके सुख-दुःखों को, उसके अस्तित्व को अभिव्यक्त किया है। मानव के लघु व्यक्तित्व पर भी इन्होंने अभिमान जताया है।

10) कलागत विशेषताएं :

विषयगत विशेषताओं को देखने के उपरांत अब हम प्रयोगवादी कवियों की कलागत विशेषताओं को देखेंगे-

1) भाषा :

प्रयोगवादी कविता में खडीबोली भाषा का सीधा रूप दिखाई देता है। भाषा और शैली के अभिनव प्रयोग इस कविता में देखने को मिलते हैं। खडीबोली के व्याकरण की अवहेलना अनेक जगहों पर हुई है। गिरिजाकुमार माथुर लिखते हैं-

''आज अचानक सूनी सी संध्या में
जब मैं यों ही मैले कपडे देख रहा था
किसी काम में जी बहलाने
एक सिल्क के कुर्ते की सिलवट में लिपटा
गिरा रेशमी चूडी का
छोटा सा टुकडा
उन गोरी कलाइयों में जो तुम पहने थी
रंगभरी उस मिलन रात में।''

इस प्रकार इन कवियों ने भाषा व्याकरण को मानो तोड-मरोड कर प्रस्तुत किया है। भाषा में नवीन शब्दों के भी प्रयोग किए हैं। भाषा, भाव, शैली और छंद आदि में अभिनव प्रयोग किये हैं।

2) उपमानों की नवीनता :

प्रयोगवादी कवियों ने पुराने उपमानों को त्यागकर नवीन उपमानों का प्रयोग किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त उपमान एकदम नए हैं। इन कवियों ने इन उपमानों को जीवन से संबंधित चुना है। उपमानों को

चुनने के लिए इन कवियों ने कल्पना का सहारा नहीं लिया है। प्रभाकर माचवे जी लिखते हैं –

''नोन–तेल लकडी की फ्रिक में लगे घुने से,
मकडी की जाल से, कोल्हु बैल से।''

यहाँ मकडी का जाल और कोल्हु का बैल यह अत्यंत सजीव नए उपमानों का प्रयोग कवि करते हैं तो एक कवि इस प्रकार भी लिखते हैं –

''प्यार का बल्ब फ्युज हो गया
आपरेशन थियेटर सी जो हर काम करते हुए भी चुप है
बिजली के स्टोव सी जो एकदम सूर्ख हो जाती है
पहले दरजे में लोग कफन की भांति उजले वस्त्र पहने
पूर्व दिशी में हड्डी के रंगवाला बादल लेटा है
मेरे सपने इस तरह टूट गए जैसे भुंजा हुआ पापड।''

इन पंक्तियों में 'प्यार का बल्ब फ्युज', 'ऑपरेशन थियेटर', 'बिजली का स्टोव', 'भुंजा हुआ पापड' आदि बिलकुल नए उपमानों का प्रयोग हुआ है। अलंकारों का काव्य में प्रयोग काव्य के सौंदर्य को बढाना होता है लेकिन प्रयोगवादी कवि काव्य के सौंदर्य को बढाने की अपेक्षा पाठकों को अलग प्रकार के उपमानों से परिचित कराते हैं जो काव्य की दृष्टि से ठीक नही हैं।

3) प्रतीकात्मकता :

प्रयोगवादी कवियों ने नाना प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया है। इन्होंने प्रतीकों का अत्यंत सांकेतिक वर्णन किया है। उपमानों की तरह ही नए प्रतीकों को चुनकर पाठकों को चौंका दिया है। अज्ञेय जी के 'नदी के द्वीप' का प्रतीक बडा ही सुंदर बन पडा है। अनेक कविताओं में मार्मिक प्रतीकों और बिम्बों को भी देखा जा सकता है। मानसिक उलझनों को अभिव्यक्त करने के लिए यह नए प्रतीक आवश्यक थे। स्वप्न प्रतीकों का अधिक प्रयोग इन कवियों ने किया है।

4) छंद :

इन कवियों ने छंदों में आमूलाग्र बदल किए हैं । इन्होंने अंग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओं के छंदो को अपनाया है। मुक्त छंदों का प्रयोग इन कवियों ने अधिक मात्रा में किया है। नए इन छंदों के कारण कविता शुष्क बन पडी है तथा गद्य सी नीरसता उस में आ गई है। एक कवि लिखते हैं –

''सरग था ऊपर
नीचे पाताल था

अपच के मारे बहुत बुरा हाल था।

दिल दिमाग भुस का खद्दर का खाल था।''

इस प्रकार प्रयोगवादी कवियों ने परंपरागत छंदों को त्यागकर मुक्त छंदों का प्रयोग किया है।

4.3.4 साठोत्तरी कविता की विशेषताएं :

सन् 1960 के पश्चात् हिंदी कविता का एक नया रूप उभरा जिसे साठोत्तरी कविता कहा जाता है। इस कविता में आधुनिक जीवन बोध, वर्तमान जीवन की असंगतियाँ, मानवतावादी दृष्टिकोन, अजनबीपन, अकेलापन, घूटन, नए जीवन का सौंदर्य आदि प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय आम आदमी ने खुशहाली के सपने देखे थे लेकिन वह पूरे न हो सके। भारतीय आम आदमी का मोहभंग हो गया, जिस ईमानदार शासनकर्ता की उसने उम्मीद की वह टूटती रही। एक पंचवर्षीय योजना के बाद दूसरी पंचवर्षीय योजना बनी जरूर लेकिन उसका लाभ आम परिवारों तक नहीं पहुँच सका। भारतीय जीवन में गरीब और अधिक गरीब और अमीर और अधिक अमीर होता चला गया। स्वतंत्रता के लाभ चंद मुठ्ठीभर लोग उठाते रहें और एक वर्ग तो शताब्दियों से पीसता रहा था वह वैसा ही बना रहा। साठोत्तरी कविता में इन सभी घटनाओं के प्रतिबिंब पाए जाते हैं। इस कविता में समाज की दरिद्रता, बेकारी, प्रशासन में चल रही रिश्वतखोरी, भाई-भतीजावाद, सांप्रदायिकता आदि के विरोध में आक्रोश प्रकट हुआ है। मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की स्थिति में किसी भी प्रकार का बदलाव न आना यह साठोत्तरी कविता में आक्रोश को उत्पन्न करने का प्रमुख कारण रहा। इस कविता में असंतोष, अस्वीकृति और विद्रोह का स्वर साफ तौर पर उभरा है। यह स्वर व्यंग्य के रूप में अधिक व्यक्त किया है। उसे व्यक्त करते समय उन्होंने राजनेता, जनतंत्र, व्यवस्था आदि के बदलाव की मांग की। वर्तमान व्यवस्था में इन कवियों को किसी भी प्रकार की आस्था नहीं थी इसीकारण इन्होंने इसे बदलने की मांग की। स्पष्ट है साठोत्तरी कविता एक नई मनःस्थिति का परिणाम है। इस कविता के प्रमुख कवि हैं- रघुवीर सहाय, विजयदेव नारायण साही, कुंवर नारायण, केदारनाथ सिंह, दुष्यंतकुमार, गिरिजाकुमार माथुर, कीर्ति चौधरी, शकुंतला माथुर, प्रभाकर माचवे, धूमिल, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भवानी प्रसाद मिश्र, कैलाश वाजपेयी, अशोक वाजपेयी आदि। इस काव्य की विभिन्न काव्य प्रवृत्तियाँ उभर कर आती हैं, वह निम्नलिखित हैं -

1) आम आदमी का चित्रण :

साठोत्तरी कविता में प्रमुखतः देश के आम आदमी का चित्रण अधिक हुआ है। आम आदमी की सभी समस्याओं को इस कविता में अभिव्यक्त किया है। स्वातंत्र्योत्तर काल के मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के जीवन को इन कवियों ने अपनी कविताओं में यथार्थता के साथ अभिव्यक्त किया है। रघुवीर सहाय लिखते हैं -

''और जिन्दगी के अंतिम दिनों में
काम करते हुए बाप
कांपती साइकिलों पर

भीड से रास्ता निकाल कर ले जाते हैं।
तब मेरी देखती हुई आँखें प्रार्थना करती हैं
और जब वापस आती हैं अपने शरीर में
तब दे दिया जा चुका होता हूँ।''

इस प्रकार साठोत्तरी कविता में आम आदमी की समस्याओं का चित्रण हुआ है। यह कविता सामान्य मनुष्य की उलझी हुई अनुभूतियों से जुडी है। आम आदमी के जीवन की समग्रता को इन कवियों ने दिखाया है।

2) समाज का यथार्थ चित्रण :

साठोत्तरी कविता में समाज-जीवन का यथार्थ चित्रांकन पाया जाता है। मनुष्य आज जिस अवस्था में जी रहा है, उसे जिस आर्थिक, मानसिक और सामाजिक तत्त्वों से गुजरना पड रहा है उसका यथार्थ चित्रण इस कविता में मिलता है। यह कवि सामाजिक यथार्थ के प्रति जागरूक रहना चाहते हैं, उनकी दृष्टि भविष्य पर बनी हुई है, वह वर्तमान सामाजिक यथार्थ को दिखाकर मनुष्य का भविष्य ठीक करना चाहते हैं। 'खेवली' नामक कविता में भारतीय ग्रामीण परिवेश का चित्रण करते हुए धूमिल लिखते हैं -

''वहाँ कोई सपना नहीं है। न भेडिये का डर।
बच्चों को सुलाकर औरतें खेत पर चली गई हैं।
खाये जाने लायक कुछ भी शेष नहीं है।
वहाँ सब कुछ सदाचार की तरह सपाट।
और ईमानदारी की तरह असफल है।''

ग्रामीण भारतीय समाज का वास्तविक चित्रण धूमिल ने यहाँ किया है। इस प्रकार साठोत्तरी कविता में सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण अंकित हुआ है।

3) आजादी से मोहभंग का चित्रण :

भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् आम भारतीय आदमी ने देश की खुशहाली की कामना की थी लेकिन वह अधूरी रही। आम आदमी की बुनियादी समस्याएँ भी पूरी न हो सकी। रोटी, कपडा और मकान की समस्या वैसी ही बनी रही जैसे आजादी के पहले थी। साठोत्तरी कवियों ने आजादी के मोहभंग का चित्रण अपनी कविताओं में किया -

''बीस साल बाद और इस शरीर में
सुनसान गलियों से,
चोरों की तरह गुजरते हुए
अपने-आप से सवाल करता हूँ-
क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है?''

आजादी के बीस सालों बाद भी देश की गलियाँ वैसे ही सुनसान रही जैसे आजादी के पहले थी। इन कवियों ने आजादी के मोहभंग का चित्रण करते हुए आम आदमी के सुखी होने की कामना की।

4) व्यवस्था एवं प्रजातंत्र का विरोध :

आजादी के पश्चात भी भारतीय आम आदमी के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया तब इन कवियों ने वर्तमान व्यवस्था एवं प्रजातंत्र को ही दोषी ठहराया। इन कवियों का काव्य लोकचेतना एवं यथार्थानुभव से प्रेरित है। स्वाधीन भारत के शोषित किसान और निर्धन वर्ग की पीडाओं को अपनी कविताओं का विषय बनाकर इन कवियों ने वर्तमान व्यवस्था एवं प्रजातंत्र का खुला विरोध किया-

''सिर कटे मुर्ग की तरह फडकते हुए
जनतंत्र में
सुबह सिर्फ,
चमकते हुए रंगों की चालबाजी है।''

इन कवियों ने जनतंत्र का खुला विरोध कर व्यवस्था में बुनियादी तौर पर परिवर्तन लाने की मांग की । लीलाधर जगूडी लिखते हैं-

''नौकरी, गरीबी, कुर्सी, कानून सब अस्त-व्यस्त।
वास्तविकता तो यह है कि
इस व्यवस्था में
हर आदमी कहीं न कहीं चोर है।''

जिस प्रजातंत्र और व्यवस्था को लोगों के लिए बनाया गया था वही प्रजातंत्र और व्यवस्था के कारण आम आदमी के जीवन में कोई बदलाव नहीं तब तक इन कवियों ने उसे बदलने का मांग की।

5) गलत राजनीति एवं राजनेता का विरोध :

साठोत्तरी कविता में गलत राजनीति एवं राजनेताओं का खुलकर विरोध हुआ है। गांधी और नेहरू की नियतों पर शक करना गलत होगा लेकिन देश में उनके पश्चात् जो राजनेता उभरे उनपर शक

करने की गुंजाईश थी। क्योंकि उनमें दमन, भ्रष्टाचार, दलबदलू प्रवृत्ति आदि दुर्गुण विद्यमान थे। इन कवियों ने इस प्रकार की प्रवृत्ति का अपनी कविताओं की माध्यम से विरोध किया–

''मैंने राष्ट्र के कर्णधारों को
सडकों पर
किश्तियों की खोज में
भटकते देखा है।''

राजनेता जहाँ जो उपलब्ध है वहाँ उसे नहीं ढूंढ रहे हैं। इन राजनेताओं का लक्ष्य राष्ट्र निर्माण न हो कर अपने खुद का विकास है। राजनेताओं के साथ इन कवियों ने गलत राजनीति का भी खुल कर विरोध किया। श्रीकान्त वर्मा लिखते हैं –

''सवाल यह है कि तुम कहाँ जा रहे हो?
अश्वारोही, यह रास्ता किधर जाता है?
कपिलवस्तु और नालंदा कोई नहीं जाता।
कोसल अधिक दिन नहीं टिक सकता,
कोसल में विचारों की कमी है।''

राजनीति में विचारों की कमी होने के कारण गलत राजनीति के कारण ही आजादी के पश्चात् भी देश का विकास न हो सका। इन कवियों ने इसे अभिव्यक्त किया है।

6) व्यंग्य की प्रधानता :

साठोत्तरी कविता का प्रधान शस्त्र व्यंग्य है। व्यंग्य के मूल सुधारवादी दृष्टिकोन है। व्यंग्य का लक्ष्य पढनेवाला पाठक खीज उठे और अपने आप में बदलाव के लिए मजबूर हो जाए यह होता है। व्यंग्य के माध्यम से साठोत्तरी कवियों ने सामाजिक तथा राजनीतिक बदलाव की कामना की है। केदारनाथ सिंह लिखते हैं –

''मैंने जब भी सोचा
मुझे रामचंद्र शुक्ल की मूंछे याद आई।
मूंछों में दबी बारीक-सी हंसी,
हँसी के पीछे कविता का राज,
कविता के राज पर हँसती हुई मूंछें।''

इस प्रकार इन कवियों ने व्यंग्य के माध्यम से अपने विचारों को पाठक तक पहुँचाया। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना राजनीतिक व्यंग्य लिखते हैं–

''उसके खुरदुरे हाथों में
रख दी गई एक चिकनी किताब,
उसने उसे सिर से लगाया,
और सारा घर खोज आया
पर उसे रखने के योग्य स्थान उसने नहीं पाया।''

सामाजिक और राजनीतिक व्यंग्य कर इन कवियों ने सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन की मांग की है।

7) विद्रोही स्वर :

साठोत्तरी कविता में विद्रोही स्वर प्रखरता से अभिव्यक्त हुआ है। नेताओं का भ्रष्टाचार, छल-कपट, स्वार्थ, पाखंड, लोभ, ईर्ष्या आदि को इन कवियों ने अपनी अनोखी शैली में फटकारा है। इन कवियों का विद्रोही स्वर उनके समकालीन परिवेश से ही बना है। अपने आस-पास की जनता का अभावग्रस्त जीवन ही उनके विद्रोह का मूल कारण रहा है। सामाजिक विषमता, राजनीतिक अस्थिरता, प्रशासनिक दूरवस्था ही इन कवियों को अपनी कविताओं में विद्रोह करने के लिए मजबूर करती रही। धूमिल लिखते हैं

''इसीलिए मैं फिर कहता हूँ कि हर हाथ में
गीली मिट्टी की तरह हाँ-हाँ मत करो
तने
अकडो
अमरबेली की तरह मत जियो
जड पकडो
बदलो-अपने-आपको बदलो
यह दुनिया बदल रही है।''

इन कवियों ने साधारण जनता से विद्रोह की मांग की। समूह को एकत्रित कर उन्हें विद्रोह के लिए उकसाते रहें। यह कवि जनता के मन में शोषकों के प्रति नफरत पैदा करते रहें -

''हे भाई हे !अगर चाहते हो
कि हवा का रूख बदले
तो एक काम करो
हे भाई हे!!
संसद जाम करने से बेहतर है
सडक जाम करो।''

इन कवियों को जनता की अपार शक्ति पर विश्वास है इसीकारण वे व्यवस्था के विरोध में जनता को आंदोलन करने के लिए कहते हैं। साठोत्तरी कवियों का विद्रोह अपने अंतरंग से अभिव्यक्त हुआ है। वे व्यवस्था, राजनेता, प्रशासन, राजनीति आदि के विरोध में जनता से विद्रोह मांग करते हैं।

8) मानवतावाद :

'मानवतावाद' कविता की प्रमुख विशेषता है। साठोत्तरी कविता में भी यह दिखाई देता है। इन कवियों का मानवतावाद स्वप्निल, आदर्श अथवा किसी विशिष्ठ राजनीतिक विचारधारा से प्रेरित मानवतावाद नहीं है। वह शुद्ध यथार्थवादी मानवतावाद है। इन कविताओं में दीन-दलितों के प्रति करुणा और सहानुभूति है। इन कवियों का मानवतावाद विश्वव्याप्त मानवतावाद है। चंद्रकांत देवताळे लिखते हैं -

''मैं तिरकती हुई धरती पर,
खिलते हुए वसंत के साथ
उस साबूत घर के सपने की
कविता सौंपना चाहता हूँ।''

'मानवतावाद' किसी गांव, नगर, राज्य, देश तक सीमित नहीं है, बल्कि विश्वभर में रहनेवाले हर एक मानव के सुख की वह कामना करता है। यहाँ जब कवि 'धरती' शब्द का प्रयोग करते हैं तब वह विश्व के सभी मानव की बात करते हैं।

9) पुलिस एवं न्याय व्यवस्था का चित्रण :

आजाद भारत में पुलिस एवं न्याय व्यवस्था यहाँ आम जनता की रक्षा के लिए बनाई गई लेकिन वह रक्षक से भक्षक बन गई। पुलिस के अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार एवं कर्तव्य के प्रति उदासीनता से आम जनता त्रस्त हो गई है। साठोत्तरी कवियों ने पुलिस द्वारा आम जनता पर हो रहे अन्याय एवं अत्याचारों को अभिव्यक्त किया-

''इसके बाद आए थे अपराध के कानूनी दलाल
एडियाँ बजाते हुए। किरचों की मुहर ने
चेहरों को दागी किया था। लाशों की गिनती
फिर आगजनी लूट। लेकिन क्या लगा था
आतताइयों के हाथ? नफरत की आंच ने
चंद खाली झोपडों को राख किया था।''

इन कवियों ने पुलिस को 'कानूनी दलाल' कहा है जिस से इनकी पुलिस और शासनकर्ता विषयक धारणा स्पष्ट होती है। पुलिस की इस एकाधिकारशाही के कारण साधारण जनता का जीना कठिन हो गया है। पुलिस के साथ न्याय व्यवस्था में हो रहे भ्रष्टाचार को भी इन कवियों ने अभिव्यक्त किया

है। धूमिल लिखते हैं –

''और यह वजह है कि बात
फैसले की हद तक
आते आते रूक जाती है
क्योंकि हर बार
चंद टुच्ची सुविधाओं की लालच के सामने
अभियोग की भाषा चूक जाती है।''

आज–कल कानून भी धन के बल पर खरीदा जा रहा है। पैसों और गलत राजनीति के कारण फैसले बदले जाते हैं। आम जनता का न्याय व्यवस्था से विश्वास ही उड गया है।

10) सांप्रदायिकता :

धार्मिक आडम्बर एवं विसंगति इस देश की सनातन समस्याओं में से एक है। प्राचीन काल से यहाँ धर्म के नाम पर कुकृत्य एवं अनाचार का बोलबाला रहा है। इस से जनता में सांप्रदायिकता बढती है, सांप्रदायिकता धर्म का सब से घिनौना रूप है। एक कवि लिखते हैं –

''फन फटकारता हुआ
एक दोमुँहा विषधर
रेंग रहा है
रोजी के नाम पर
रोटी के नाम पर
जगह–जगह जहर
फेंक रहा है।'

जहर की तरह सांप्रदायिकता पूरे समाज में फैल रही है। धर्म को कुछ लोगों ने अपनी रोजी–रोटी का साधन बना लिया है। साठोत्तरी कवियों ने सांप्रदयिकता के विरोध में लिखे शब्दों में रोष प्रकट किया है। इन कवियों का मानना रहा कि जब तक मनुष्य धर्म के सही रूप को नहीं पहचानता तब–तक वह सांप्रदायिकता के इसी वातावरण में जीने के लिए अभिशप्त है।

11) नारी विषयक यथार्थवादी दृष्टिकोण :

साठोत्तरी कविता में पुरुष और नारी को समान महत्त्व दिया है। इन कवियों ने नारी के विविध रूपों का चित्रण किया है। इन्होंने नारी के यथार्थ स्थिति को रेखांकित किया। एक कवि लिखते हैं –

''चौंके में खोई हुई औरत के हाथ
कुछ भी नहीं देखते
वह केवल रोटी बेलते हैं और बेलते रहते हैं।''

इन कवियों ने नारी के शोषित रूप को अधिक मात्रा में अभिव्यक्त किया है। नारी को सदियों से आज-तक केवल उपभोग की वस्तु या घर में काम करनेवाली ही माना गया है। नारी अपना अस्तित्व खुद नहीं जानती। चंद्रकांत देवताळे लिखते हैं -

''एक औरत का धड
भीड में भटक रहा है
उसके हाथ अपना चेहरा ढूँढ रहे हैं
उसके पांव
जाने कब से
सब से। अपना पता पूछ रहे हैं।''

श्रमजीवी, साधनहीन, शोषित, अपने अस्तित्व को ही न समझनेवाली नारी का चित्रण इन कवियों ने किया है। इन्होंने नारी विषयक जिन मुद्दों पर चर्चा की है उसके पीछे उनकी धारणा अत्यंत साफ थी। बल्कि नारी विषयक दृष्टिकोण में बदलाव लाना इन कवियों का प्रमुख उद्देश्य था।

12) कलागत विशेषताएं :

विषयगत विशेषताओं को देखने के उपरांत अब हम साठोत्तरी कविता की कलागत विशेषाओं को देखेंगे-

1) भाषा :

साठोत्तरी कविता की पहचान उनकी विशिष्ठ भाषा के कारण हुई। इन कवियों ने भाषा का अलग मुँहावरा गढा और अपने तीखे व्यंग्य के माध्यम से उसे और अधिक प्रौढ बनाया। छायावादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कवियों की भाषा को इन कवियों ने बदला और अपनी एक अलग पहचान बनाई। साठोत्तरी कवियों की भाषा के संबंध में धूमिल लिखते हैं -

''छायावाद के कवि शब्दों को तोल कर रखते थे,
प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोलकर रखते थे,
नयी कविता के कवि शब्दों को गोल कर रखते थे,
सन् साठ के बाद के कवि शब्दों को खोल कर रखते हैं।''

साठोत्तरी कवियों ने अपने शब्दों को बेझिजक खोलकर रखा है। इन्होंने अपने युग को यथार्थ का जामा पहनाने के लिए भाषा के शब्दों को यथार्थपर रखा। भाषा को अधिक सूक्ष्म, ध्वन्यात्मक बनाने का प्रयत्न इन्होंने किया।

2) बिम्ब :

साठोत्तरी कवियों ने नये बिम्ब विधान की योजना की है। बिम्ब विधान को इन्होंने आधुनिक

जीवन से चुना है। इन आधुनिक बिम्ब-विधान के कारण काव्य भाषा को एक नई शक्ति प्रदान हुई है। बिम्बों से सजी साठोत्तरी कविता पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करती है। केदारनाथ सिंह 'बनारस' शहर का बिम्ब इस प्रकार दिखाते हैं-

''किसी अलक्षित सूर्य को
देता हुआ अर्घ्य
शताब्दियों से इसी तरह गंगा के जल में
अपनी एक टांग पर खडा है यह शहर
अपनी दूसरी टांग से बेखबर।''

इस प्रकार बिम्बों को इन्होंने अत्यंत सहजता से अभिव्यक्त किया है। किसी भाषिक चमत्कार को दिखाने के लिए इन्होंने बिम्ब नहीं बल्कि वह स्वाभाविक रूप से कविता में आ गए हैं। स्पष्ट है साठोत्तरी कविता में अभिव्यक्त बिम्ब विषय के अनुरूप प्रयुक्त हुए हैं, जो पाठक पर अपना गहरा प्रभाव छोडते हैं।

3) प्रतीकात्मकता :

आधुनिक बिम्बों के साथ साठोत्तरी कवियों ने आधुनिक और नए प्रतीकों को भी चुना है। जनसामान्य में प्रचलित आधुनिक प्रतीकों इन कवियों ने अपनी कविता में स्थान दिया है। कुत्ता, भेडिया, जूता आदि अनेक प्रतीक इनकी कविताओं में मिलते हैं। एक कवि लिखते हैं -

''जिसका आधे से ज्यादा शरीर
भेडिये ने खा लिया है
वे इस जंगल की सराहना करते हैं।''

यहाँ 'भेडिये' सत्ताधारियों को और 'जंगल' अव्यवस्था का प्रतीक है। इस प्रकार इन कवियों ने प्रतीकों को अभिव्यक्त किया है।

4) छंद :

साठोत्तरी कवियों में प्रमुखतः मुक्त-छंद पाया जाता है। मुक्तक शैली का प्रयोग ही अधिक हुआ है। राजेश जोशी लिखते हैं-

''जिससे वे
अपने कमरे के गलीचों, दीवारों, गैलरियों
और आँगन के नाप की धूप
काह कर ले गए।''

मुक्त छंद के कारण कविता की गेयता, संगीतात्मकता, लयबद्धता खत्म हो गई है। कविता गद्य की तरह लगने लगी है। इन बातों की परवाह न करते हुए इन कवियों ने मुक्त छंद का ही प्रयोग किया है।

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न 1 : निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) दो महायुद्धों के बीच की स्वच्छंदवादी कविता को.....कहा जाता है।

क) छायावाद ख) प्रगतिवाद ग) प्रयोगवाद घ) साठोत्तरी कविता

2) छायावाद के प्रमुख प्रवर्तक कवि ..... को माना जाता है।

क) निराला ख) पंत ग) महादेवी घ) प्रसाद

3) छायावाद की प्रमुख कवयित्री ..... हैं।

क) सुभद्राकुमारी चव्हाण ख) कीर्ति चौधरी ग) महादेवी वर्मा ग) मन्नू भंडारी

4) 'पल्लव' काव्य संग्रह के कवि.....हैं।

क) प्रसाद ख) पंत ग) निराला घ) महादेवी वर्मा

5) 'प्रकृति चित्रण' ..... की प्रमुख विशेषता है।

क) साठोत्तरी कविता ख) प्रगतिवाद ग) हालावाद घ) छायावाद

6) 'प्रगतिवाद' के मूल में .....विचारधारा है।

क) अस्तिवादी ख) मार्क्सवादी ग) मनोवैज्ञानिक घ) वैज्ञानिक

7) 'दास कैपिटल' ग्रंथ के लेखक ..... हैं।

क) टी.एस्. ईलियट ख) कार्ल मार्क्स ग) प्लेटो घ) अरस्तु

8) 'शोषितों' के प्रति करुण-गान ..... काव्य की प्रमुख विशेषता है।

क) छायावाद ख) प्रगतिवाद ग) प्रयोगवाद घ) साठोत्तरी कविता

9) सन् 1936 ई. में ..... की अध्यक्षता में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई।

क) निराला ख) जयशंकर प्रसाद ग) प्रेमचंद घ) अज्ञेय

10) प्रयोगवाद के प्रमुख प्रवर्तक कवि .....हैं।

क) पंत ख) दिनकर ग) नागार्जुन घ) अज्ञेय

11) प्रयोगवादी कविता का प्रथम 'तार-सप्तक' सन् ..... में प्रकाशित हुआ।

क) 1940 ख) 1936 ग) 1943 घ) 1951

12) 'अति बौद्धिकता' यह ..... काव्य की प्रमुख विशेषता है।

क) छायावाद ख) प्रगतिवाद ग) हालावाद घ) प्रयोगवाद

13) 'साठोत्तरी कविता' के प्रमुख कवि ..... हैं।

क) जयशंकर प्रसाद ख) धूमिल ग) दिनकर घ) बच्चन

14) 'साठोत्तरी कविता' में ..... का चित्रण हुआ है।

क) प्रकृति ख) वर्ग संघर्ष ग) आम आदमी घ) प्रेम

15) 'बोलचाल की भाषा' ..... कविता की प्रमुख विशेषता है।

क) हालावाद ख) छायावाद ग) प्रयोगवाद घ) साठोत्तरी कविता

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

छायावाद - वह सिद्धांत जिसके अनुसार, अव्यक्त, अज्ञात को विषय बना कर उसके प्रति प्रणय, विरह के भाव प्रकट करना।

स्वच्छंदतावाद - अपनी इच्छा के अनुसार लिखनेवाला।

रहस्यवाद - वह धार्मिक वृत्ति जिसमें मनुष्य प्रत्यक्ष रूप में ईश्वर के साथ संबंध स्थापित करने का प्रयत्न करता है।

मानवतावाद - मनुष्यत्व, आदमीयता।

प्रगतिवाद - वह सिद्धांत जिस के अनुसार समाज, साहित्य आदि को आगे की ओर बढाते रहना ही हितकर माना जाता है।

मार्क्सवाद - कार्ल मार्क्स के विचारों पर आधारित सिद्धांत

प्रयोगवाद - नये प्रयोग करने वाला सिद्धांत

अजनबीपन - अज्ञात, अपरिचित, नया आया हुआ।

मोहभंग - जो मोह किया था व पूरा न होना।

पंचवर्षीय योजना – हर पांच वर्षों बाद बनाई जानेवाली शासन योजना।

सांप्रदायिकता – केवल अपने संप्रदाय की श्रेष्ठता और हितों का विशेष ध्यान रखना और दूसरे संप्रदाय से द्वेष रखना।

4.6 स्वयं अध्ययन के उत्तर

1) छायावाद
2) प्रसाद
3) महादेवी वर्मा
4) पंत
5) छायावाद
6) मार्क्सवाद
7) कार्ल मार्क्स
8) प्रगतिवाद
9) प्रेमचंद
10) अज्ञेय
11) 1943
12) प्रयोगवाद
13) धूमिल
14) आम आदमी
15) साठोत्तरी कविता

4.7 सारांश

1) आधुनिक काल में गद्य और पद्य साहित्य का साथ-साथ विकास हुआ। आधुनिक गद्य और पद्य का आरंभ भारतेन्दु युग ही माना जाता है। सन् 1900 ई. के पाश्चात् छायावाद, प्रगतिवाद, हालावाद, प्रयोगवाद, नई कविता, समकालीन कविता, साठोत्तरी कविता आदि का क्रमशः विकास हुआ। आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल से भी आधुनिक काल की कविता भारतीय सामाजिक विचारधारा को बढावा देने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

2) द्विवेदी युग के समाप्त होने पश्चात् दो महायुद्ध के बीच जो स्वच्छंदवादी कविता लिखी गई उसे छायावाद कहा जाता है। छायावाद ने आधुनिक हिंदी साहित्य को अत्यंत महत्त्वपूर्ण कवि दिए। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी, निराला, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, माखनलाल

चतुर्वेदी आदि बहुमूल्य कवियों ने छायावादी काव्य लिखा। छायावाद यह एक आन्दोलन है। इस काव्य की विभिन्न काव्य प्रवृत्तियाँ हैं - वैयक्तिकता, प्रेम और सौंदर्य, प्रकृति-चित्रण रहस्यवाद, स्वतंत्रता प्रेम, मानवतावाद, वेदना और निराशा, स्वच्छन्दतां आदि। छायावादी कविता एक आन्दोलन का रूप लेकर उभरी और वक्त के साथ खत्म हो गई।

3) 'छायावाद' के लुप्त होने के पश्चात् कार्ल मार्क्स के साम्यवादी विचार-धारा के आधार पर जो कविता लिखी गई उसे 'प्रगतिवादी' कविता कहा जाता है। कार्ल मार्क्स के अनुसार समाज में दो वर्ग हैं इन दोनों वर्गों पर साहित्य लिखने की आवश्यकता है। निराला, सुमित्रानंदन पंत, शिवमंगलसिंह सुमन, नरेंद्र शर्मा, अंचल, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, दिनकर आदि प्रमुख कवियों ने प्रगतिवादी काव्य लिखा। रूढियों का विरोध, शोषितों का करुण-गान, शोषकों के प्रति घृणा, क्रांति की भावना, मार्क्स तथा रूस का गुणगान, मानवतावाद आदि प्रगतिवादी कविता की प्रमुख विशेषताएँ हैं। प्रगतिवाद एक व्यापक विचारधारा है जो आज भी साहित्य में दिखाई देती है।

4) सन् 1943 ई. से जिस नवीन काव्यधारा का विकास हिंदी कविता में हुआ उसे 'प्रयोगवाद' कहा जाता है। 1943 ई. में अज्ञेय जी के संपादन में कुछ कवियों की कविताओं का संग्रह तार-सप्तक (प्रथम) प्रकाशित हुआ, 1951 ई. में तार-सप्तक (द्वितीय) प्रकाशित हुआ। प्रयोगवादी कविता पर ईलियड, पाउण्ड तथा फ्रायड का प्रभाव है। अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारतभूषण अग्रवल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, नरेश मेहता आदि प्रयोगवादी कविता के प्रमुख कवि रहें। घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद, अति नग्न यथार्थवाद निराशवाद, अति बौद्धिकता, वैज्ञानिकता, व्यंग्य, विद्रोह आदि प्रयोगवाद की प्रमुख विशेषताएँ रही। प्रयोगवाद एक व्यापक आंदोलन की प्रक्रिया है, आगे समकालीन कविता, नई कविता, साठोत्तरी कविता का जो विकास हुआ उसके मूल में प्रयोगवादी कविता ही रही।

5) सन् साठ के पश्चात् की कविता को साठोत्तरी कहा जाता है। स्वतंत्रता के पश्चात् के भारतीय आम आदमी की समस्याओं का चित्रण इस कविता में मिलता है। इस कविता में आम आदमी की दरिद्रता, बेकारी, प्रशासनिक रिश्वतखोरी, भाई-भतीजावाद आदि के विरोध में आक्रोश प्रकट हुआ है। मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की स्थिति में किसी भी प्रकार के बदलाव का न आना यह साठोत्तरी कविता में आक्रोश को उत्पन्न करने का प्रमुख कारण रहा। धूमिल, केदारनाथ सिंह, रघुवीर सहाय, दुष्यंतकुमार, गिरिजाकुमार माथुर, कीर्ति चौधरी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, लिलाधर जगुडी, चंद्रकांत देवताळे आदि साठोत्तरी कविता के प्रमुख कवि हैं। आम आदमी का चित्रण, आजादी से मोहभंग, प्रजातंत्र एवं व्यवस्था का विरोध, राजनीति एवं राजनेता का विरोध, व्यंग्य, विद्रोह, मानवतावाद, सांप्रदायिकता आदि साठोत्तरी कविता की प्रमुख विशेषताएँ हैं। साठोत्तरी कविता नए कवियों की नई मनःस्थिति का परिणाम है।

4.8 स्वाध्याय :

1) छायावाद की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

2) प्रगतिवाद की विशेषताओं का परिचय दीजिए।

3) प्रयोगवाद की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

4) साठोत्तरी कविता की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

4.9 क्षेत्रीय कार्य :

1) छायावाद के प्रमुख कवि प्रसाद, पंत, निराला, और महादेवी वर्मा के प्रमुख काव्य-संग्रहों की सूची तैयार कीजिए।

2) प्रगतिवाद के प्रमुख कवि दिनकर, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, भारतभूषण अग्रवाल आदि के फोटो का संग्रह कीजिए।

3) प्रयोगवाद के प्रमुख कवि अज्ञेय, मुक्तिबोध, समशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता आदि के प्रमुख काव्यसंग्रह प्राप्त कर उनका अध्ययन कीजिए।

4) साठोत्तरी कविता के प्रमुख कवि धूमिल, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, चंद्रकांत देवताळे आदि के काव्य-संग्रह प्राप्त कर उनका अध्ययन करें।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचंद्र शुक्ल

2) हिंदी साहित्य का इतिहास : डॉ. नागेंद्र

3) हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ. रामकुमार वर्मा

4) हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास : बच्चन सिंह

5) हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ : डॉ. शिवकुमार शर्मा

6) आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास : डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

7) साहित्यिक निबंध : डॉ. विजयपाल सिंह

8) साहित्यिक निबंध : डॉ. शांति स्वरूप गुप्त

9) आधुनिक हिंदी कविता में काव्य चिंतन : डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय

10) हिंदी साहित्य उद्‌भव और विकास : हजारीप्रसाद द्विवेदी

●●●